जैन सिद्धांत सूत्र

प्र. कु. कौशल

श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज ट्रस्ट
दिल्ली–११०००६

प्राप्ति स्थान
श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज ट्रस्ट (पंजीकृत)
सरदारीमल रतनलाल जैन अतिथि भवन,
४१७, कूंचा बुलाकी बेगम
दिल्ली ११०००६

वीर निर्वाण सम्वत् २५०३

मूल्य—दस रुपये मात्र

मुद्रक :
नव युगान्तर प्रेस, निकट दिल्ली चुंगी, मेरठ-२

पूज्य आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज

'मंगलं भगवो वीरो, मंगलं गोयमो गणी।
मंगलं कुण्डकुण्डाइ, जेण्ह धम्मोत्थु मंगलं ।।

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर मंगलस्वरूप हैं। गणधर गौतम (दिव्य ध्वनि के संदेशवाहक) मंगलात्मक हैं। कुंदकुंदादि आचार्य-कुल (परम्परा) मंगलमय हैं एवं विश्व के समस्त भव्य जीवों को जैन धर्म मंगलकारक हैं।

प्रकाशकीय

परमपूज्य आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज की आध्यात्मिक ज्योत्स्ना के महातेज से अभिभूत होकर श्रावक समुदाय ने अनेक रचनात्मक कार्यों द्वारा श्रमण संस्कृति एवं सभ्यता के उन्नयन में श्रद्धापूर्वक योगदान दिया है। आचार्य श्री के पावन संस्पर्श से ही अविजित अयोध्या, वैभवमंडित जयपुर, साधनास्थली कोथली इत्यादि को नई शक्ति प्राप्त हुई है। आचार्य श्री के चरणयुगल वस्तुतः आस्था एवं निर्माण के स्मरणीय प्रतीक हैं। आपकी प्रेरणा एवं आज्ञा से ही अनेक मन्दिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हो सका है। वस्तुतः आचार्य श्री को बीसवीं शताब्दी में दिगम्बरत्व की जय-ध्वजा का प्रमुख पुरुष कहा जाता है।

आपकी अद्वितीय मेधा एवं समर्पित जीवन के कारण ही अनेक दुर्लभ एवं लुप्त ग्रन्थों का सार्वजनिक प्रकाशन सम्भव हो गया है। आपके दर्शन मात्र से ही साधना एवं स्वाध्याय साकार रूप में परिलक्षित होने लगते हैं। साहित्य के क्षेत्र में आपके ठोस एवं रचनात्मक कार्यों की सर्वत्र स्तुति की गई है।

आचार्य श्री की राजधानी पर विशेष अनुकम्पा रही है। अतः आपके महिमा मंडित आचारण एवं व्यवहार को स्थायी रूप देने के लिये ही दिगम्बर जैन समुदाय ने दिल्ली में 'श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज ट्रस्ट' की स्थापना की है।

ट्रस्ट अपने पावन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। जिनागम के शाश्वत सत्यों को विश्वव्यापी बनाने के लिये न्यास के सभासदों ने आदर्श साध्वी, तपोमूर्ति, साधनारत ब्रह्मचारिणी कु० कौशल जी की स्वरचित कृति 'जैन सिद्धान्त सूत्र' के प्रकाशन का सहर्ष निर्णय लिया है। आशा है, उपरोक्त कृति जैन सिद्धान्त के जिज्ञासु महानुभावों के लिये प्रकाशस्तम्भ रूप में कार्य करती रहेगी।

संस्था को सजीव एवं मूर्त रूप देने में, परम पूज्य उपाध्याय मुनि श्री विद्यानन्द जी का विशिष्ट योगदान रहा है। वास्तव में, आपके ही द्वारा ट्रस्ट की प्राण प्रतिष्ठा की गई है। आपकी सदय दृष्टि, सक्रिय रुचि एवं प्राणवान मन्त्रणा से ही ट्रस्ट 'केवली प्रणीत धर्म' के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न हो सका है।

आशा है, ट्रस्ट के प्रथम प्रकाशन को आप सबका सहज स्नेह प्राप्त हो सकेगा।

सादर,

सुमत प्रसाद जैन एम० ए०
महामन्त्री
श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण जी
महाराज ट्रस्ट (पंजीकृत), दिल्ली

वीर निर्वाण दिवस
वीर निर्वाण सम्वत् २५०३

एकं सत्

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह कुटुम्ब बनाकर रहता है। स्त्री, पुत्र, पौत्र और सजातीय बन्धु-बान्धवों एवं सम्बन्धियों से भरा पूरा एक विशाल मानव समाज उसकी जीवनचर्या का अभिन्न एवं अनिवार्य अंग है। मनुष्य कुटुम्ब में आँखें खोलता है और कुटुम्ब के कन्धों पर महायात्रा करता है। कुटुम्ब शब्द का व्यवहार परिवार के अर्थ में किया जाता है। 'परिवार' का शाब्दिक अर्थ 'घेरा' है और मानव-जीवन अपने रहन-सहन, वेशभूषा, चाल-चलन, आहार-पानी और अन्य सांस्कृतिक व विविध चर्याओं में अपने को परिवार की परम्परागत स्वीकृत प्रथाओं के घेरे में (सीमा, दायरा, परिधि में) जन्म से ही पाता है। धर्म और आहार भेद उसे अपने कुलोत्पन्न अधिकार से ही मिलता है। इन्हीं मान्यताओं के कारण संसार में नाना धर्म, नाना जातियां और नाना प्रकार की बहुलताएं, विविधताएं देखने में आती हैं। समान आचार-विचार वाले बहुत से परिवारों के संगठन से समाज और जाति की रचना होती है। किसी विशिष्ट देश-काल में उत्पन्न हुए विचारकों, क्रान्तिकारियों और धर्म के रहस्यवेत्ताओं के कारण अलग-अलग देशों में, अलग-अलग समयों में और विभिन्न परिस्थितियों में धर्म विविध रूप में प्रचारित होता है और उस धर्मानुबन्ध से भी कुटुम्ब तथा जातियों का संगठन प्रवर्तित होता है। अस्तु

एगं सद्[1]

विश्व में एक सत् है और सत् विश्व का मूलभूत तत्व है। एक शब्द भी थीसिस (अन्वेषण) का विषय बन जाता है। विश्व अनादि अनंत एवं स्वयं सिद्ध सत् है और यह छह द्रव्यों का समुच्चय है। वह तत्व सामान्य से एक प्रकार का है। जीव, अजीव के भेद से दो प्रकार का है। संसारी, मुक्त और अजीव के भेद से तीन प्रकार का है। भव्य, अभव्य, मुक्त और अजीव के भेद से चार प्रकार का है। अथवा संसारी जीव मुक्त जीव अजीव अमूर्तिक और मूर्तिक अजीव के भेद से चार प्रकार

१ — आचार्य कुन्द कुन्द प्रवचनसार २।६७
'एकं सत्' — ऋषि (ऋग्वेद, ४६)

का है। पाँच अस्तिकाय के भेदों से तत्व पांच प्रकार का है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल के भेद से छह प्रकार का है। इसी प्रकार तत्व के भेदों को विस्तार से जानने वालों के लिये इस तत्व के अनन्त भेद हो जाते हैं। जीव का लक्षण चेतना है और उसकी स्थिति अनादि निधन है, वह ज्ञाता-दृष्टा, कर्ता-भोक्ता, देह प्रमाण है।

जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पांच द्रव्य अमूर्तिक हैं। पुद्गल द्रव्य मूर्तिमान है। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह पुद्गल है। पूरण और गलन रूप स्वभाव होने से 'पुद्गल' यह सार्थक नाम है। परमाणुओं का संयोग पूरण और वियुक्ति गलन कहलाता है। स्कन्ध और परमाणुभेद से पुद्गल दो प्रकारों में व्यवस्थित है। स्निग्ध और रुक्ष अणुसमुदाय स्कन्ध कहलाता है। यह स्कन्ध-विस्तार द्रव्यणुक स्कन्ध से लेकर अनन्तानन्त परमाणु वाले महास्कन्ध पर्यन्त होता है। छाया, आतप, तम, चांदनी, मेघ (धूम) आदि पुद्गल के पर्याय हैं। समस्त कार्यों से ही अणु की सिद्धि होती है। दो स्पर्शवाला, परिमण्डलवाला[1] एक वर्ण और एक रस गुण युक्त अणु गुणों की अपेक्षा से नित्य है और पर्यायों की अपेक्षा से अनित्य है। पुद्गल भी छह प्रकार के होते हैं—१—सूक्ष्मसूक्ष्म २—सूक्ष्म ३—सूक्ष्मस्थूल ४—स्थूलसूक्ष्म ५—स्थूल ६—स्थूल स्थूल। अदृश्य और अस्पृश्य एक परमाणु 'सूक्ष्मसूक्ष्म' कहलाता है। अनन्त प्रदेशों के योग से सम्पन्न कार्माण स्कन्ध 'सूक्ष्म' कहलाते हैं। शब्द स्पर्श रस और गन्ध 'सूक्ष्मस्थूल' कहलाते हैं क्योंकि ये अचाक्षुष हैं। परन्तु अन्य इन्द्रियों से ग्राह्य हैं। छाया, ज्योत्स्ना, आतप आदि 'स्थूलसूक्ष्म' हैं क्योंकि चाक्षुष होने पर भी खण्डित नहीं किये जा सकते। जलादिक द्रव्य पदार्थ 'स्थूल' हैं। पृथिवी आदिक 'स्थूल-स्थूल' स्कन्ध हैं। इस प्रकार से पदार्थों का याथात्म्य श्रद्धान करने वाला भव्यात्मा उत्कृष्ट आत्मतत्व को प्राप्त होता है।

पूज्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण श्री महाराज ट्रस्ट दिल्ली (पंजीकृत) द्वारा, जैन सिद्धान्त सूत्र का प्रथम संस्करण वीर सम्वत् २५०३ में प्रकाशित है। इस ग्रन्थ में नौ अधिकार हैं, जिनमें जैन सिद्धान्त के अवश्य ज्ञातव्य प्रारम्भिक पाठों का समावेश है। वीतराग सर्वज्ञ द्वारा निरूपित होने से निर्भ्रान्त सत्य के रूप में इन अबाधित सिद्धान्तों की मान्यता पूर्व काल से विश्रुत है। 'सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वम्।'

१— 'अणवः कार्यलिंगाः स्युः द्विस्पर्शाः परिमण्डलाः।'

—आदिपुराण २४।१४८

उपाध्याय श्री १०८ विद्यानन्द जी मुनि

—जैन वाङ्मय सूक्ष्मदृष्टिगम्य है। इसमें जगत् के 'सत्' स्वरूप का जैसा अनादि-निधन विवेचन जीवाजीव-मीमांसा द्वारा प्रतिपादित किया गया है वह ज्ञान सूर्योदय-कारी है।

विदुषिरत्न ब्र० कुमारी श्री कौशल के द्वारा कुशलतापूर्ण प्रसूत इस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञानगरिमा का सहज ही परिचय मिलता है। जैन वाङ्मय में नारी का सम्मान धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परम्परा में समान रूप से किया गया है। नारी के योग्य प्रशंसा पदों की जैन-संस्कृति में न्यूनता नहीं है और न उन्हें विकास करने का निषेध किया गया है।[1] अध्येता लाभान्वित होंगे, ऐसा विश्वास है।

वर्षायोग— **उपाध्याय विद्यानन्द मुनि**

वीर संवत् २५०३

दिल्ली-६

१—'तपस्वी ऋषि-मुनियों या वैदिक ऋषियों में स्त्रियों का समावेश नहीं हुआ था। गार्गी, वाचक्नवी—जैसी स्त्रियां ब्रह्म-ज्ञान की चर्चा में भाग लेती थीं पर उनके स्वतन्त्र संघ नहीं थे। स्त्रियों के स्वतन्त्र संघों की स्थापना बौद्ध-काल से एक-दो शताब्दी पूर्व हुई थी। ऐसा लगता है कि उनमें सबसे प्राचीन संघ जैन साध्वियों का था। ये जैन साध्वियां वाद-विवाद में प्रवीण थीं, यह बात भद्रा कुण्डलकेशा आदि की कथाओं से भली-भांति ज्ञात हो जायेगी।'

—लेखक धर्मानन्द कोसाम्बी, बौद्ध संघाचा परिचय, पृ० २१४

जैन सिद्धान्त रौढ़िक नहीं वैज्ञानिक है और इसी कारण यह अत्यन्त गहन व गम्भीर है। तर्क इसकी कसौटी है और अनुभव इसका प्रमाण। इसकी साधारण से साधारण बातों में भी आचार्यों के सूक्ष्म आशय छिपे हुए हैं। इसलिए इस सिद्धान्त की गहनता जानने के लिए इसका विधिवत् शिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षण के अभाव के कारण ही पाठकों व जिज्ञासुओं को जैन शास्त्रों के अभ्यास से वह लाभ नहीं हो पाता जो कि होना चाहिए, क्योंकि वे उनके ठीक-ठीक समझ में नहीं आते।

किसी भी विषय को पढ़ने व समझने के लिये उसके कुछ विशेष पारिभाषिक शब्दों का परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि शब्द ही अन्तरंग के अभिप्राय व आशय प्रगट करने का एकमात्र साधन व माध्यम है। प्रस्तुत पुस्तक जैन साहित्य में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का ही विशद भण्डार है इसलिए इसे जैन शब्दकोष भी कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

यह पुस्तक "श्री गोपालदास जी बरैया" की जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के आधार पर रची गयी है। उसके मूल वाक्यों के अतिरिक्त अधिक विशद व्याख्या करने के लिए तथा उत्पन्न होने वाली तत्सम्बन्धी शंकाओं की निवृत्ति के लिए अन्य अनेकों प्रश्न व उत्तर सम्मिलित करके प्रत्येक विषय को सहजबोध बनाने का प्रयत्न किया गया है। पद्धति सर्वत्र वही प्रश्नोत्तर वाली रखी गई है। प्रश्न मोटे अक्षरों में लिखे हैं और उत्तर पतले अक्षरों में। अध्यायों के नम्बर वही हैं। केवल उनके अन्तर्गत अधिकार विभाग द्वारा सूची-पत्र को विशदता प्रदान की गई है।

विषय का क्रम व प्रवाह अधिकारों के अनुसार रखने के लिए कहीं-कहीं मूल प्रश्नों का क्रम भंग करके उन्हें कुछ आगे पीछे करना पड़ा है, परन्तु प्रश्न कहीं भी लिखे गये हों उनके शब्द ज्यूं के त्यूं हैं। कहीं-कहीं उनमें कुछ विशदता लाने के लिये यदि कुछ शब्द अपनी ओर से जोड़ने पड़े हैं तो वे ब्रैकेट में लिखे गये हैं, ताकि पुस्तक की प्रमाणिकता सुरक्षित रहे। अधिकार विभाग हो जाने के कारण, प्रसंग रूप से कुछ प्रश्नों को दो या तीन बार तक ग्रहण करके पुनरुक्ति करना अनिवार्य हो गया है।

पुस्तक की प्रशंसा करना व्यर्थ है, क्योंकि वह अपना परिचय स्वयं दे रही है। इतना ही कह देना पर्याप्त है कि अबोध से अबोध शक्ति भी इसे ध्यान से पढ़कर दुर्बोध से दुर्बोध विषय को सुबोध रूप जान सकता है। इसे पढ़ने के पश्चात् वह सहज आगम के अथाह सागर में निर्भय अवगाह पाने को समर्थ हो जायेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसलिए यदि इसे जैन-दर्शन का प्रवेश द्वार कहें तो अनुचित न होगा।

(क्षु०) जिनेन्द्र वर्णी

रोहतक
जून १९६७

उपोद्घात

सत् और असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, उत्पाद-व्यय, स्निग्धता-रूक्षता, आकर्षण-विकर्षण—ऐसी परस्पर विरोधी अनेकों शक्तियों का आवास वस्तु है। विश्व के ये समस्त पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के समूह को चुम्बन (स्पर्श) करते हैं तथापि वे एक दूसरे को स्पर्श न करते हुए पूर्णतय: अस्पर्शित हैं। इस विराट जगत् में वे सम्पूर्ण चिद्-अचिद् द्रव्य अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाह रूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि वे कदाचिद् भी अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भांति शाश्वत पृथक् स्थिर रहते हैं। वे अनन्त द्रव्य निमित्त-नैमित्तिक रूप से विरुद्ध तथा अविरुद्ध कार्य करते हुए विश्व के रंग-मंच पर नाना प्रकार का अभिनय कर रहे हैं जिसको समझना साधारण बुद्धि के लिए अत्यन्त दुष्कर है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी में इसका विशद विवेचन हुआ है। अत: उन जटिल वस्तु तत्वों को वुद्धिग्राह्य बनाने के लिए तथा 'जिन' कथित सिद्धान्त के प्रतिपादक पारिभाषिक शब्दों को सरल व सुबोध बनाने के लिए यह प्रयास किया गया है। पंडित गोपालदास वरैय्या जी रचित् जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के आधार पर इस पुस्तिका रूप कुंजी का निर्माण हुआ है। मेरा विश्वास है कि वस्तु तत्व दोहन के जिज्ञासुओं को यह दीपकवत् मार्गदर्शक बनेगी।

"श्री १०८ आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज ट्रस्ट" (पंजीकृत) दिल्ली ने अत्यन्त प्रसन्नता व उत्साह पूर्वक इसका प्रकाशन कराकर जो संस्कृति व साहित्य की सेवा की है तथा धर्मानुराग प्रगट किया है वह प्रशंसनीय है। इसके मुद्रण में राजेन्द्र कुमार जैन मेरठ (सम्पादक 'वीर') को विस्मरण नहीं किया जा सकता, जिन्होंने अति रुचिपूर्वक कठिन श्रम से इसे मुद्रित कराया है।

अन्त में जिनके सानिध्य में इस विषय का मंजन, संयोजन व संवर्धन हो सका है उन **श्री जिनेन्द्र वर्णी जी** को यह कृति सप्रेम समर्पित—

ब्र० कु० कौशल

विषय-सूची

प्रथमोऽध्यायः

ब्र० कु० कौशल जी

प्रथमोध्याय

(न्याय)

१/१ लक्षणाधिकार

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ।।

नोट :—कोष्ठक के प्रश्न जैन सिद्धान्त प्रवेशिक के हैं, शेष स्वकृत हैं।

(१) पदार्थों को जानने के कितने उपाय हैं ?

चार उपाय हैं—लक्षण, प्रमाण, नय व विक्षेप।

२. पदार्थों को जानने से क्या लाभ है ?

पदार्थों के ज्ञान से सम्यग्दर्शन होता है और उससे परम्परा मोक्ष।

३. एक ही उपाय का प्रयोग करें तो क्या बाधा है ?

विशद व यथार्थ ज्ञान न हो सकेगा।

(४) लक्षण किसको कहते हैं ?

बहुत से मिले हुए पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को जुदा करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं। जैसे जीव का लक्षण चेतना।

५. अनेक पदार्थों में से एक एक पदार्थ को हाथ द्वारा जुदा करने से क्या पदार्थ का लक्षण कर दिया गया ?

नहीं ! हाथ द्वारा जुदा करने का तात्पर्य नहीं है बल्कि हेतु द्वारा जुदा करने का तात्पर्य है।

६. **हेतु अर्थात् क्या ?**

ज्ञान का जो विकल्प या शब्द पदार्थ की विशेषता दर्शाने में कारण पड़े, वही हेतु है।

(७) **लक्षण के कितने भेद हैं ?**

दो हैं—एक आत्मभूत और दूसरा अनात्मभूत।

(८) **आत्मभूत लक्षण किसे कहते हैं ?**

जो वस्तु के स्वरूप में मिला हो; जैसे अग्नि का लक्षण उष्णपना करें।

(९) **अनात्मभूत लक्षण किसको कहते हैं ?**

जो वस्तु के स्वरूप में मिला न हो; जैसे–दण्डी पुरुष का लक्षण दण्ड।

(१०) **लक्षणाभास किसे कहते हैं ?**

जो लक्षण सदोष हो।

(११) **लक्षण के दोष कितने हैं ?**

तीन हैं—अव्याप्ति, अतिव्याप्ति व असम्भव।

(१२) **लक्ष्य किसे कहते हैं ?**

जिसका लक्षण किया जाये, उसे लक्ष्य कहते हैं।

१३. **आत्मभूत लक्षण के अभेद पदार्थ में लक्ष्य-लक्षण भेद कैसे बन सकता है ?**

लक्षण सर्वथा अभेद नहीं है, ज्ञान द्वारा भेद जाना जाता है।

१४. **अनात्मभूत लक्षण के सर्वथा भिन्न पदार्थों में लक्ष्य-लक्षण भाव कैसे सम्भव है ?**

ऐसा व्यवहार देखा जाता है।

(१५) **अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं ?**

लक्ष्य के एक देश में लक्षण के रहने को अव्याप्ति दोष कहते हैं; जैसे पशु का लक्षण सींगवाला करना।

(१६) अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं ?

लक्ष्य और अलक्ष्य में लक्षण के रहने को अतिव्याप्ति दोष कहते हैं; जैसे गौ का लक्षण सींग।

(१७) अलक्ष्य किसे कहते हैं ?

लक्ष्य के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों को अलक्ष्य कहते हैं।

(१८) असम्भव दोष किसे कहते हैं ?

लक्ष्य में लक्षण की असम्भवता को असम्भव दोष कहते हैं।

प्रश्नावली

१. पदार्थों को जानने के कितने उपाय हैं ?

२. पदार्थों को जानने के लिये क्या एक ही उपाय से काम चल सकता है, कारण सहित बताओ।

३. लक्षण का लक्षण करो।

४. अनेक पक्षियों में से यह कैसे जाना जाये कि यह तोता है या कबूतर ?

५. लक्षण के भेद व उनके लक्षण बताओ।

६. निम्न में लक्ष्य व लक्षण दर्शाओ:—

उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्; गुणपर्ययवद् द्रव्यं; ज्ञानवानश्च जीवो; स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त: पुद्गल:; दण्डेवाला व्यक्ति रामदत्त है; जिस पर कौवा बैठा है वह मकान रामदत्त का है; बरामदे वाला पीला भवन हस्पताल है; झंडे वाला भवन कोर्ट है।

७. निम्न उदाहरणों में से आत्मभूत व अनात्मभूत लक्षण बताओ:—

देवदत्त का घर; आम का वृक्ष; पीले रंग का मकान; छतरी वाला मनुष्य; गाने वाला पुरुष; जिसके मुंह पर तिल है वही राजाराम है।

८. निम्न के लक्षण करो:—

अतिव्याप्ति, लक्ष्य, अव्याप्ति, असंभव, लक्षणाभास।

९. लक्षणाभास कितने प्रकार का है ?

१०. निम्न लक्षणों में दोष बताइयेः—

जीव का लक्षण अमूर्तीक; आकाश का लक्षण व्यापक; जीव का लक्षण इच्छा व प्रयत्न; जो परिणामी होता है वह पुद्गल है; जिसमें प्रकाश पाया जाय वह अग्नि; जो चार पैर वाला वह तिर्यञ्च; दूध देवे सो गाय; वृक्ष का नाम वनस्पति; जहां कोई न रहे सो नगर; पुत्रवती स्त्री वन्ध्या कहलाती है; एक प्रदेशी द्रव्य कालाणु; जो वृक्ष पर रहे वह पक्षी; अग्नि शीतल होतीं है ।

१/२ प्रत्यक्ष प्रमाणाधिकार

(१) प्रमाण किसे कहते हैं ?

सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

२. सच्चे ज्ञान से क्या तात्पर्य ?

जैसी वस्तु हो उसको वैसी ही जानना, जैसे रस्सी को रस्सी और सर्प को सर्प।

३. ज्ञान ही प्रमाण है, ऐसा कहने में क्या दोष है ?

यह लक्षण अतिव्याप्त है, क्योंकि मिथ्याज्ञान में भी चला जाता है।

४. क्या ज्ञान मिथ्या भी होता है ?

हां, जैसे सीप को चान्दी, रस्सी को सर्प तथा ठूंठ को मनुष्य जानना।

(५) प्रमाण के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष।

(६) प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

जो पदार्थ को स्पष्ट जाने।

(७) प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

(८) सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

जो इन्द्रियों और मन की सहायता से पदार्थ को एक देश स्पष्ट जाने।

९. **एक देश स्पष्ट जानने से क्या तात्पर्य** ?
वस्तु की सर्व विशेषताओं को न जानकर कुछ मात्र को ही जानना एक देश जानना है, जैसे नेत्र द्वारा देखने पर वस्तु का रूप तो दिखाई देता है पर रस नहीं।

(१०) **पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं** ?
जो बिना किसी की सहायता के पदार्थ को स्पष्ट जाने।

११. **बिना इन्द्रिय व प्रकाश की सहायता के स्पष्ट कैसे जाना जा सकता है** ?
विशेष प्रकार के ज्ञान द्वारा स्पष्ट जाना जा सकता है। इस प्रकार का ज्ञान प्रायः बड़े बड़े तपस्वियों को हुआ करता है।

(१२) **पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं** ?
दो भेद हैं—एक विकल पारमार्थिक दूसरा सकल पारमार्थिक।

(१३) **विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसको कहते हैं** ?
जो रूपी पदार्थों को बिना किसी की सहायता के स्पष्ट जाने।

१४. **विकल प्रत्यक्ष द्वारा छहों द्रव्यों में से कौन सा द्रव्य जाना जा सकता है और क्यों** ?
केवल पुद्गल द्रव्य या तत्संयोगी भाव जाने जा सकते हैं, क्योंकि वही रूपी हैं।

(१५) **विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं** ?
दो भेद हैं—एक अवधि ज्ञान दूसरा मनःपर्यय ज्ञान।

(१६) **अवधि ज्ञान किसे कहते हैं** ?
द्रव्य क्षेत्र काल व भाव की मर्यादा लिये जो रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने। (इसके विशेष विस्तार के लिये आगे देखो अध्याय २ का चतुर्थ अधिकार)

१७. **द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा से क्या समझते हो** ?

क. अमूर्तीक को न जानकर मात्र मूर्तीक को जाने, तथा मूर्तीक में भी स्थूल को ही जाने सूक्ष्म को नहीं, यह द्रव्य की मर्यादा है।

ख. लोक में स्थित को ही जाने, अलोक में स्थित को नहीं। लोक

में भी मनुष्य लोक में स्थित को ही जाने इससे बाहर में स्थित को नहीं, अथवा मनुष्य लोक में भी कुछ योजन मात्र तक ही जाने उससे आगे नहीं। यह क्षेत्र की मर्यादा है।

ग. कुछ भव या वर्ष आगे पीछे की ही जाने अनादि व अनन्त काल की नहीं। यह काल की मर्यादा है।

घ. पुद्गल के कुछ ही गुणों को अथवा कुछ ही रागादिक संयोगी भावों को जाने, सर्व गुणों व भावों को नहीं। उनकी भी कुछ मात्र पर्यायों को जाने सर्व को नहीं। यह भाव की मर्यादा है।

नोट :—(मर्यादा का यह कथन देशावधि की अपेक्षा जानना। परमावधि व सर्वावधि की विशेषता यथा स्थान बताई जायेगी।)

१८. क्या अवधि ज्ञान जीव की हालतों को जान सकता है ?

शुद्ध जीव की हालतों को नहीं जान सकता क्योंकि वे अमूर्तीक हैं। अशुद्ध जीव की रागादि युक्त हालतों को जान सकता है, क्योंकि वे कथंचित मूर्तीक हैं।

१९. अशुद्ध जीव की हालतों को मूर्तीक कैसे कहा ?

क्योंकि वे देश कालावच्छिन्न होने से सीमा सहित तथा विशेष आकार प्रकार वाली होती हैं।

२०. अवधि ज्ञानी मुनिजन जीव के पहिले पिछले भव कैसे बता देते हैं ?

कर्मों व शरीर से बद्ध जीव को वे भव तथा हालतें आदि अन्त युक्त होने से विशेष आकार प्रकार को धारण कर लेती हैं। सिद्ध भगवान की हालतों वत् देशकालानवच्छिन्न अमूर्तीक नहीं होतीं।

(२१) मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव की मर्यादा लिए हुए जो दूसरे के मन में तिष्ठे हुए रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने। (अर्थात् विशेष आकार प्रकार युक्त मानसिक भावों को स्पष्ट जाने)। (इसके विस्तार के लिए देखो आगे अध्याय २ का चौथा अधिकार)।

२२. मन में स्थित पदार्थ से क्या तात्पर्य ?

मानसिक संकल्प विकल्प का नाम ही मन में स्थित पदार्थ हैं।

२३. ज्ञानात्मक होने के कारण मानसिक संकल्प विकल्प तो अमूर्तीक होते हैं, उन्हें मनःपर्यय ज्ञान कैसे जाने ?

ज्ञेयाश्रित तथा देशकालावच्छिन्न ज्ञान भी विशेष आकार प्रकार का होने के कारण मूर्तीक ही माना जाता है।

(२४) सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

केवलज्ञान को।

२५. केवलज्ञान किसे होता है ?

अर्हन्तों व सिद्धों के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं होता।

(२६) केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को (युगपत) स्पष्ट जाने। (विशेष देखिए आगे अध्याय २ अधिकार ४)।

२७. युगपत जानने से क्या तात्पर्य ?

जिस प्रकार हम एक पदार्थ को छोड़कर दूसरे पदार्थ को जानते हैं, उस प्रकार केवलज्ञान अटक-अटककर नहीं जानता। वह सब कुछ एकदम जान लेता है और सदा जानता ही रहता है।

प्रश्नावली

१. प्रमाण किसे कहते हैं ?

२. ज्ञान को प्रमाण कहते हैं, ऐसा कहने में क्या दोष आता है ?

३. ज्ञान बड़ा है या प्रमाण ?

४. प्रत्यक्ष ज्ञान का क्या अर्थ है ?

५. प्रत्यक्ष प्रमाण के सर्व भेद प्रभेद बताओ।

६. एक देश–प्रत्यक्ष से क्या समझे ?

७. द्रव्य क्षेत्रकाल भाव की मर्यादा से क्या समझे ?

८. मूर्तीक पदार्थ को जानने वाला ज्ञान जीव के पूर्व भव कैसे जाने ?
९. क्या अवधिज्ञान के द्वारा सिद्ध भगवान को भी देखा जा सकता है ?
१०. मानसिक विचार मूर्तीक हैं या अमूर्तीक, कारण सहित बताओ ।
११. आत्मा का ध्यान करने वाले मुनि के मन की बात क्या मनःपर्यय ज्ञान जान सकता है, कारण सहित बताओ ।
१२. अर्हन्त भगवान तुम्हारी बात सुनने के पश्चात मेरी बात सुनेंगे क्या यह ठीक है ?
१३. जो घटना अभी हुई नहीं उसे कौन ज्ञान जान सकता है ?
१४. अवधिज्ञान व केवलज्ञान दोनों के द्वारा विशद जानने में क्या अन्तर है ?
१५. निम्न बातें कौनसे प्रमाण द्वारा जानी जाती हैं—
भगवान के दर्शन करना; पहले भव में तुम देव थे; पुस्तक पढ़ना; तुम यह विचार कर रहे हो कि तुम देवदत्त की सहायता से सोमदत्त के साथ अपना बदला चुका सकते हो; तुम अपने पुत्र द्वारा ही पाँच वर्ष बाद मारे जाओगे; प्रत्येक पदार्थ में प्रतिक्षण सूक्ष्म परिणमन होता रहता है; मेरी अंगूठी खोई गई, उसे कहाँ तलाश करूँ ? जाओ तालाब के किनारे पड़ी है उठा लो ।
१६. अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञान में क्या अन्तर है ?
१७. अवधि, मनःपर्यय व केवलज्ञान इन तीनों में कौन ज्ञान अधिक सूक्ष्म है ?

१/३ परोक्ष प्रमाणाधिकार

(१) परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

जो दूसरे की सहायता से पदार्थ को स्पष्ट जाने।

२. दूसरे की सहायता से जानने से क्या तात्पर्य ?

दूसरे की सहायता से जानना दो प्रकार से होता है—एक स्वार्थ दूसरा परार्थ।

३. स्वार्थ परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

इन्द्रियों द्वारा स्वयं कोई पदार्थ देखकर उससे सम्बन्ध रखने वाले किसी दूसरे अदृष्ट पदार्थ को जान लेना स्वार्थ परोक्ष प्रमाण है; जैसे धुएं को देखकर स्वतः अग्नि को जान लेना अथवा किसी व्यक्ति की आवाज सुनकर उस व्यक्ति को पहिचान लेना।

४. परार्थ परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं ?

पढ़कर या दूसरे के मुख से सुनकर जानना तथा तर्क व हेतु आदि के द्वारा निर्णय करना परार्थ परोक्ष प्रमाण है। नोटः– (अभ्यास के लिये देखो आगे प्रश्नावली में नं० ४-५)

(५) परोक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं ?

पांच हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान व आगम।

(६) स्मृति किसे कहते हैं ?

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ की याद को स्मृति कहते हैं।

(७) प्रत्यभिज्ञान किसको कहते हैं ?

स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में जोड़रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं; जैसे—यही वह व्यक्ति है जिसे कल देखा था।

८. जोड़ रूप ज्ञान से क्या समझे ?

किसी पदार्थ को इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष जानकर अपनी पूर्व स्मृति के आधार पर यह जान लेना कि 'यह वही है' या 'वैसा ही है' जोड़रूप ज्ञान कहलाता है, क्योंकि इसमें पूर्व स्मृति और वर्तमान प्रत्यक्ष दोनों का सम्मेल पाया जाता है।

(९) प्रत्यभिज्ञान के कितने भेद हैं ?

एकत्व प्रत्यभिज्ञान, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, आदि (विलक्षण तत्प्रतियोगी इत्यादि) अनेक भेद हैं।

(१०) एकत्व प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं ?

स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में एकता दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान को एकत्व प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, जैसे 'यह वही मनुष्य है जिसे कल देखा था'।

(११) सादृश्य प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं ?

स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में सादृश्य दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान को सादृश्य प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, जैसे यह गौ गवय (रोझ) के सदृश्य है।

१२. विलक्षण प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं ?

स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में विलक्षणता दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान को विलक्षण प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, जैसे—भैंस गाय से विलक्षण होती है।

१३. तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं ?

स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में अपेक्षा दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान को तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, जैसे—यह स्थान उस स्थान से दूर है।

(१४) **तर्क किसको कहते हैं ?**

व्याप्ति ज्ञान को तर्क कहते हैं (यदि ऐसा न हुआ होता तो कदापि ऐसा न होता । इत्यादि प्रकार के ज्ञान को तर्क कहते हैं, क्योंकि व्याप्ति ज्ञान के बिना वह सम्भव नहीं ।)

(१५) **व्याप्ति किसको कहते हैं ?**

अविनाभाव सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है ।

(१६) **अविनाभाव सम्बन्ध किसे कहते हैं ?**

जहां-जहां साधन होय वहां-वहां साध्य का होना, और जहां-जहां साध्य नहीं होय वहां-वहां साधन के भी न होने को अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं, जैसे जहां-जहां धूम है वहां-वहां अग्नि है और जहां-जहां अग्नि नहीं है वहां-वहां धूम नहीं है ।

१७. **व्याप्ति कितने प्रकार की है ?**

दो प्रकार की—सम व्याप्ति व विषम व्याप्ति ।

१८. **सम व्याप्ति किसे कहते हैं ?**

दोनों तरफ साधन की साध्य के साथ व्याप्ति को सम व्याप्ति कहते हैं । अर्थात् साधन के होने पर साध्य का अवश्य होना और साधन के न होने पर साध्य का भी न होना, जैसे जहां जहां वायु होती है वहां-वहां वृक्षों का हिलना अवश्य देखा जाता है । जहां-जहां वायु नहीं होती वहां-वहां वृक्षों का हिलना भी नहीं होता ।

१९. **विषम व्याप्ति किसे कहते हैं ?**

एक तरफा व्याप्ति को विषम व्याप्ति कहते हैं । अर्थात् साधन के होने पर साध्य का अवश्य होना, पर साधन के न होने पर साध्य होवे या न भी होवे, जैसे धुएं के होने पर अग्नि अवश्य होती है, पर धुआं न होने पर अग्नि होवे या न भी होवे ।

(२०) **साधन किसको कहते हैं ?**

जो साध्य के बिना न होवे जैसे अग्नि का साधन धूम है, अथवा जिस हेतु द्वारा कोई बात सिद्ध की जाये उसे साधन कहते हैं ।

(२१) साध्य किसको कहते हैं ?

इष्ट, अबाधित, असिद्ध को साध्य कहते हैं । साधन या हेतु द्वारा जो बात सिद्ध की जाय उसे साध्य कहते हैं ।

(२२) इष्ट किसको कहते हैं ?

वादी तथा प्रतिवादी जिसको सिद्ध करना चाहते हैं, उसे इष्ट कहते हैं ।

(२३) अबाधित किसको कहते हैं ?

जो दूसरे प्रमाण से बाधित न हो, जैसे अग्नि का ठण्डापन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है । इस प्रकार यह ठण्डापन साध्य नहीं हो सकता ।

२४. बाधित कितने प्रकार का होता है ?

पांच प्रकार का—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक व स्ववचन बाधित ।

२५. पांचों बाधित पक्षों के लक्षण व उदाहरण बताओ ।

(क) प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित प्रत्यक्ष बाधित है, जैसे अग्नि ठण्डी है क्योंकि छूने से ठण्डी महसूस होती है ।

(ख) अनुमान प्रमाण से बाधित अनुमान बाधित है, जैसे शब्द अपरिणामी है क्योंकि किया जाता है ।

(ग) आगम प्रमाण से बाधित आगम बाधित है, जैसे पाप से सुख होता है ।

(घ) जो लोकमान्य न हो वह लोक बाधित है, जैसे मनुष्य की खोपड़ी पवित्र है, क्योंकि प्राणी का अंग है जैसे शंख ।

(ङ) जिसमें स्वयं अपने वचन से बाधा आती हो वह स्ववचन बाधित है, जैसे 'मैं आज मौन से हूँ, क्योंकि आज मुझे बोलने का त्याग है', ऐसा मुँह से कहकर बताना ।

(२६) असिद्ध किसको कहते हैं ?

जो दूसरे प्रमाण से सिद्ध न हो उसे असिद्ध कहते हैं, अथवा जिसका निश्चय न हो उसे असिद्ध कहते हैं ।

(२७) अनुमान किसको कहते हैं ?

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

(२८) हेत्वाभास किसको कहते हैं ?

सदोष हेतु को।

(२९) हेत्वाभास के कितने भेद हैं ?

चार हैं—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक व अकिंचित्कर।

(३०) असिद्ध हेत्वाभास किसे कहते हैं ?

जिस हेतु के अभाव का निश्चय हो, अथवा उसके सद्भाव में सन्देह हो, उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं, जैसे—'शब्द नित्य है' क्योंकि नेत्र का विषय है। परन्तु शब्द कर्ण का विषय है नेत्र का नहीं हो सकता, इसका 'नेत्र का विषय' यह हेतु असिद्ध हेत्वाभास है।

(३१) विरुद्ध हेत्वाभास किसको कहते हैं ?

साध्य से विरुद्ध पदार्थ के साथ जिसकी व्याप्ति हो, उसको विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं, जैसे—शब्द नित्य है, क्योंकि परिणामी है। इस अनुमान में परिणामी की व्याप्ति अनित्य के साथ है नित्य के साथ नहीं। इसलिये नित्यत्व पक्ष में 'परिणामी हेतु' विरुद्ध हेत्वाभास है।

(३२) अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास किसे कहते हैं ?

जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष इन तीनों में व्यापै उसको अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं, जैसे—इस कोठे में धूम है, क्योंकि इसमें अग्नि है। यह 'अग्नित्व' हेतु पक्ष, सपक्ष व विपक्ष तीनों में व्यापक होने से अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

(३३) पक्ष किसको कहते हैं ?

जहां साध्य के रहने का शक हो, जैसे ऊपर के दृष्टान्त में कोठा।

(३४) सपक्ष किसको कहते हैं ?

जहां साध्य के सद्भाव का निश्चय हो, जैसे धूम का सपक्ष गीले ईंधन से मिली अग्नि है।

(३५) **विपक्ष किसको कहते हैं** ?

जहां साध्य के अभाव का निश्चय हो, जैसे—अग्नि से तपा हुआ लोहे का गोला।

(३६) **अकिंचित्कर हेत्वाभास किसको कहते हैं** ?

जो हेतु कुछ भी कार्य (साध्य की सिद्धि) करने में समर्थ न हो।

(३७) **अकिंचित्कर हेत्वाभास के कितने भेद हैं** ?

दो हैं—एक सिद्ध साधन दूसरा बाधित विषय।

(३८) **सिद्ध साधन किसे कहते हैं** ?

जिस हेतु का साध्य सिद्ध हो, जैसे—अग्नि गर्म है, क्योंकि स्पर्शन इन्द्रिय से ऐसा प्रतीत होता है।

(३९) **बाधित विषय हेत्वाभास किसे कहते हैं** ?

जिस हेतु के साध्य में दूसरे प्रमाण से बाधा आवे।

(४०) **बाधित विषय हेत्वाभास के कितने भेद हैं** ?

प्रत्यक्ष बाधित, आगम बाधित, अनुमान बाधित, स्ववचन-बाधित आदि अनेक भेद हैं।

(४१) **प्रत्यक्ष बाधित किसको कहते हैं** ?

जिसके साध्य में प्रत्यक्ष से बाधा आवे, जैसे 'अग्नि ठण्डी है' क्योंकि यह द्रव्य है। यह तो प्रत्यक्ष बाधित है।

(४२) **अनुमान बाधित किसको कहते हैं** ?

जिसके साध्य में अनुमान जैसे बाधा आवे, जैसे—घास आदि कर्ता की बनाई हुई है, क्योंकि ये कार्य हैं। परन्तु इसमें अनुमान से बाधा आती है कि—घास आदि किसी की बनाई हुई नहीं हैं, क्योंकि इनका बनाने वाला शरीरधारी नहीं है। जो-जो शरीरधारी की बनाई हुई नहीं हैं वे-वे वस्तुयें कर्ता की बनाई हुई नहीं हैं,—जैसे आकाश।

(४३) **आगम बाधित किसको कहते हैं** ?

शास्त्र से जिसका साध्य बाधित हो, उसको आगम बाधित कहते हैं, जैसे पाप सुख का देने वाला है, क्योंकि यह कर्म है।

जो-जो कर्म होते हैं वे-वे सुख के देने वाले होते हैं, जैसे पुण्य कर्म। इसमें शास्त्र से बाधा आती है, क्योंकि शास्त्र में पाप को दु:ख का देने वाला लिखा है।

(४४) **स्ववचन बाधित किसको कहते हैं ?**

जिसके साध्य में अपने ही वचन से बाधा आवे, जैसे—मेरी माता बन्ध्या है, क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी उसको गर्भ नहीं रहता।

(४५) **अनुमान के कितने अंग हैं ?**

पांच हैं—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन।

(४६) **प्रतिज्ञा किसको कहते हैं ?**

पक्ष और साध्य के कहने को प्रतिज्ञा कहते हैं, जैसे 'इस पर्वत में अग्नि है'।

(४७) **हेतु किसको कहते हैं ?**

साधन के वचन को (कहने को) हेतु कहते हैं, जैसे 'क्योंकि यह धूमवान है'।

(४८) **उदाहरण किसको कहते हैं ?**

व्याप्ति पूर्वक दृष्टान्त के कहने को उदाहरण कहते हैं, जैसे—'जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, जैसे रसोई घर। और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं होता जैसे तालाब'।

(४९) **दृष्टान्त किसको कहते हैं ?**

जहाँ पर साध्य साधन की मौजूदगी या गैर मौजूदगी दिखाई जाय, जैसे—रसोई घर अथवा तालाब।

(५०) **दृष्टान्त के कितने भेद हैं ?**

दो हैं–एक अन्वय दृष्टान्त दूसरा व्यतिरेकी दृष्टान्त।

(५१) **अन्वय दृष्टान्त किसे कहते हैं ?**

जहाँ साधन की मौजूदगी में साध्य की मौजूदगी दिखाई जाय, जैसे–रसोई घर में धूम का सद्भाव होने पर अग्नि का सद्भाव दिखाया गया।

(५२) **व्यतिरेकी दृष्टान्त किसको कहते हैं ?**

जहाँ साध्य की अनुपस्थिति में साधन की अनुपस्थिति दिखाई जाये, जैसे (अग्नि के अभाव की सिद्धि में) तालाब।

(५३) **उपनय किसको कहते हैं ?**

पक्ष और साधन में दृष्टान्त की सदृश्यता दिखाने को उपनय कहते हैं, जैसे—यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है (जैसी रसोई)।

(५४) **निगमन किसको कहते हैं ?**

नतोजा निकालकर प्रतिज्ञा के दोहराने को निगमन कहते हैं जैसे 'इसलिये यह पर्वत भी अग्नि वाला है'।
(नोट: अभ्यास के लिये देखो आगे प्रश्नावली में नं० ११)

(५५) **हेतु के कितने भेद हैं ?**

तीन हैं—केवलान्वयी, केवल व्यतिरेकी और अन्वय व्यतिरेकी।

(५६) **केवलान्वयी हेतु किसे कहते हैं ?**

जिस हेतु में सिर्फ अन्वय दृष्टान्त हों, जैसे—जीव अनेकान्त स्वरूप है, क्योंकि सत्स्वरूप है। जो-जो सत्स्वरूप होता है वह-वह अनेकान्त स्वरूप होता है, जैसे पुद्गलादिक)

(५७) **केवल व्यतिरेकी हेतु किसको कहते हैं ?**

जिसमें सिर्फ व्यतिरेकी दृष्टान्त पाया जावे, जैसे—जीवित शरीर में आत्मा है, क्योंकि इसमें श्वासोच्छ्वास है। जहाँ-जहाँ आत्मा नहीं होता वहाँ-वहाँ श्वासोच्छ्वास भी नहीं होता, जैसे चौकी वगैरह।

(५८) **अन्वय व्यतिरेकी हेतु किसको कहते हैं ?**

जिसमें अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेकी दृष्टान्त दोनों हों। जैसे पर्वत में अग्नि है, क्योंकि इसमें धूम है। जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, जैसे रसोईघर। जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं होता, जैसे तालाब।
(नोट: अभ्यास के लिये देखो आगे प्रश्नावली में नं० ११)

(५९) आगम प्रमाण किसको कहते हैं ?

आप्त के वचन आदि से उत्पन्न हुए पदार्थज्ञान को।

(६०) आप्त किसको कहते हैं ?

परम हितोपदेशक सर्वज्ञदेव को आप्त कहते हैं।

(६१) प्रमाण का विषय क्या है ?

सामान्य अथवा धर्मी तथा विशेष अथवा धर्म दोनों अंशों का समूहरूप वस्तु प्रमाण का विषय है।

६२. सामान्य किसको कहते हैं ?

अनेकता में रहने वाली एकता को सामान्य कहते हैं।

६३. सामान्य के कितने भेद हैं ?

दो हैं—तिर्यक् सामान्य व ऊर्ध्व सामान्य।

६४. तिर्यक् सामान्य किसे कहते हैं ?

अनेक भिन्न पदार्थों में रहने वाली सामान्यता को तिर्यक् सामान्य कहते हैं, जैसे—खंडी मुण्डी आदि अनेक गौओं में रहने वाला एक 'गोत्व'।

६५. ऊर्ध्व सामान्य किसे कहते हैं ?

एक पदार्थ की अनेक अवस्थाओं में रहने वाली एकता को ऊर्ध्व सामान्य कहते हैं, जैसे—कड़े कुण्डल आदि में रहने वाला 'स्वर्ण'।

(६६) विशेष किसको कहते हैं ?

वस्तु के किसी एक खास अंश अथवा हिस्से को विशेष कहते हैं। (अथवा एकता में रहने वाली अनेकता को विशेष कहते हैं।)

(६७) विशेष के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक सहभावी विशेष दूसरा क्रमभावी विशेष।

(६८) सहभावी विशेष किसको कहते हैं ?

वस्तु के पूरे हिस्से तथा उसकी सर्व अवस्थाओं में रहने वाले विशेष को सहभावी विशेष अथवा गुण कहते हैं।

६९. सहभावी विशेष के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक द्रव्य में रहने वाले, दूसरे अनेक द्रव्यों में रहने वाले।

७०. एक द्रव्य में रहने वाले सहभावी विशेष कौन से हैं ?

एक द्रव्य के अपने अनेक गुण उसके सहभावी विशेष हैं।

७१. अनेक द्रव्यों में रहने वाले सहभावी विशेष कौन से हैं ?

पशु सामान्य में गाय घोड़ा आदि की बिशेषता अथवा अनेक गौओं में काली भूरी आदि की विशेषता।

(७२) क्रमभावी विशेष किसे कहते हैं ?

क्रम से होने वाले वस्तु के विशेष को क्रमभावी विशेष अथवा पर्याय कहते हैं।

(७३) प्रमाणाभास किसको कहते हैं ?

मिथ्याज्ञान को प्रमाणाभास कहते हैं।

(७४) प्रमाणाभास कितने हैं ?

तीन हैं—संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय।

(७५) संशय किसको कहते हैं ?

विरुद्ध अनेककारी स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं, जैसे 'यह सीप है या चान्दी'।

(७६) विपर्यय किसे कहते हैं ?

विपरीत एक कोटी स्पर्श करने वाले ज्ञान को बिपर्यय कहते हैं, जैसे—सीप को चान्दी जानना।

(७७) अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?

'यह क्या है' ऐसे प्रतिभास को अनध्यवसाय कहते हैं, जैसे मार्ग चलते हुए को तृण (चुभने) का ज्ञान।

प्रश्नावली

१. निम्न के लक्षण करो—

प्रमाण; प्रत्यक्ष प्रमाण; परोक्ष प्रमाण; स्वार्थ प्रमाण; परार्थ प्रमाण; स्मृति; प्रत्यभिज्ञान; विलक्षण प्रत्यभिज्ञान; सादृश्य

प्रत्यभिज्ञान; तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान; एकत्व प्रत्यभिज्ञान; तर्क; व्याप्ति; अविनाभाव; विषमव्याप्ति; समव्याप्ति; साध्य; साधन; अनुमान; हेत्वाभास; सामान्य; विशेष; सहभावी विशेष; प्रमाणाभास; अनध्यवसाय; संशय; विपर्यय; असिद्ध हेत्वाभास; विरुद्ध हेत्वाभास; अनैकान्तिक हेत्वाभास; अकिंचित्कर हेत्वाभास; सिद्धसाधन हेत्वाभास; हेतु; प्रतिज्ञा; उदाहरण; दृष्टान्त; उपनय; निगमन; केवलान्वयी हेतु; केवल-व्यतिरेकी हेतु; अन्वयव्यतिरेकी हेतु; आगम; आप्त ।

२. निम्न के भेद बताओ—

प्रमाण; प्रत्यक्ष प्रमाण; परोक्ष प्रमाण; प्रत्यभिज्ञान; व्याप्ति बाधित विषय; हेत्वाभास; अकिंचित्कर हेत्वाभास; बाधित हेत्वाभास; दृष्टान्त; हेतु; सामान्य; विशेष; प्रमाणाभास ।

३. निम्न में अन्तर दर्शाओ—

प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण; स्वार्थ व परार्थ प्रमाण; सम व विषम व्याप्ति; असिद्ध साध्य व असिद्ध हेत्वाभास; बाधित साध्य व बाधित हेत्वाभास; उदाहरण व दृष्टान्त; अन्वय व व्यतिरेकी दृष्टान्त; केवलान्वयी व अन्वयव्यतिरेकी हेतु; सामान्य व विशेष; सहभावी व क्रमभावी विशेष; साध्य व साधन; प्रमाणाभास व हेत्वाभास; उपनय व निगमन ।

४. निम्न ज्ञान कौनसा है—

सम्मेद शिखर पर जिस व्यक्ति को देखा था वह बड़ा सज्जन था; क्या तुम मुझे पहचानते हो; हां हां पहचानता हूँ आप देवदत्त हैं; कल आप दौड़े हुए कहां जा रहे थे; यह मोटर वही है जिसका कल ऐक्सीडैण्ट हुआ था; यह मोटर अवश्य नेहरू की है; आपका पैन वैसा ही है जैसा कि मेरा; मेरी व उसकी घड़ी में दिन रात का अन्तर है; जब हम पहले यहां आये थे तो इस धर्मशाला में ठहरे थे; क्योंकि कव्वों की आवाज सुनाई दे रही है अतः समुद्र का किनारा आ गया;

तुम में प्रशम गुण दिखाई देता है, इसलिये अवश्य सम्यग्दृष्टि हो।

५. निम्न वाक्य स्वार्थ हैं या परार्थ––

घड़े लिये स्त्रियां जा रही हैं अतः गांव आ गया; इस मुनि की चर्या दिखावटी है इसलिये यह मिथ्यादृष्टि प्रतीत होता है; क्योंकि स्कन्ध टूटते व मिलते दिखाई देते हैं इसलिये परमाणु भी कोई वस्तु है; क्योंकि सम्यग्दर्शन से आंशिक शान्ति आती प्रतीत होती है इसलिये अवश्य इससे मोक्ष होनी सम्भव है; चीन की सेना भारत की सीमा पर एकत्रित हो रही है अतः युद्ध अवश्यम्भावी है।

६. निम्न में कौनसी व्याप्ति है:––

धूम व अग्नि; सम्यग्दर्शन व सम्यग्चारित्र; वायु व वृक्षों का हिलना; मेघ व वर्षा; अग्नि का प्रकाश व अग्नि; नदी का पूर तथा ऊपरी क्षेत्र में अधिक वर्षा; रूप व रस; सम्यग्दर्शन व मनुष्य; चन्द्र व सूर्य; चन्द्र व तारे; सूर्य व धूप; बिन्ध्याचल व सह्याचल; अग्नि व ईन्धन।

७. निम्न में साधन साध्य बताओ––

इस गुफा में मृग नहीं है क्योंकि इसमें से सिंह की गर्जन आ रही है; कहीं आग लगी है क्योंकि फायर ब्रिगेड की गाड़ियों के घण्टे सुनाई दे रहे हैं; यह अवश्य सम्यग्दृष्टि है क्योंकि वीत-राग है; गांव निकट है क्योंकि मुर्गा बोलता है; आज अवश्य कोई उत्सव है क्योंकि बच्चों में नई उमंग देखी जाती है। इस व्यक्ति को अवश्य मोक्ष होगी क्योंकि महाव्रतधारी है।

८. निम्न साध्यों में क्या दोष है:–

मैं पूछना नहीं चाहता फिर भी कोई मुझे कह रहा है कि निश्चय धर्म ही यथार्थ है क्योंकि वही मुक्ति का साधन है; वीतरागी देव पर पूरी पूरी श्रद्धा रखने वाले को कोई कहे कि वीतराग देव ही सच्चे हैं क्योंकि वही निज स्वभाव में स्थित

हैं; अन्न खाने से मृत्यु हो जाती है क्योंकि रामलाल अन्न खाने से मर गया; जल में अग्नि का निवास है इसी लिये जल का स्वभाव गर्म है; आवश्यकता पड़े तो चोरी भी कर लेना चाहिये क्योंकि उस समय वही धर्म है; मैं अवश्य सम्यग्दृष्टि हूँ क्योंकि इतने कठिन कठिन तपश्चरण करता हूँ; हड्डी पवित्र है क्योंकि प्राणी का अंग है ।

६. निम्न हेतुओं में क्या दोष है:—

अग्नि ठण्डी है क्योंकि देखी जाती है; मनुष्य की खोपड़ी पवित्र है क्योंकि प्राणी का अंग है जैसे शंख; पाप से सुख होता है; मेरी माता बन्ध्या है क्योंकि उसको गर्भ नहीं रहता; मैं आज मौन से हूँ; शब्द अपरिणामी है क्योंकि किया जाता है; मैत्रेयी का गर्भस्थ पुत्र श्याम है क्योंकि उसके अन्य पुत्र भी श्याम हैं; यह व्यक्ति बड़ा क्रोधी है क्योंकि ऐसा प्रसिद्ध है; कहीं अवश्य आग लगी है क्योंकि फायर ब्रिगेड के घण्टों की अटूट ध्वनि आ रही है; राम आज इन्दौर गया है क्योंकि अभी अभी अपनी दुकान की ओर जा रहा था; आज अवश्य कोई उत्सव है क्योंकि बच्चों में नया उत्साह देखा जाता है; इस घर में अवश्य कोई मर गया है क्योंकि एक स्त्री के रोने की आवाज आ रही है; जीवराज अवश्य कोई व्यापारी है क्योंकि प्रायः बैंक में रुपया लेता देता देखा जाता है; आप अवश्य भोजन करके आये हो क्योंकि डकार आ रही है; चन्द्रमा अवश्य बहुत गर्म होगा क्योंकि आज रात्रि को बहुत गर्मी है; मैं अभी अभी इन्दौर से आ रहा हूँ और तुम्हारे भाई का सन्देशा लाया हूँ (जब कि भाई कल दिन स्वयं आ चुका है); जीव का सुख दुख कर्म के आधीन नहीं है क्योंकि कर्म दिखाई नहीं देता; यद्यपि रात को घर पर अकेला रहते मुझको डर लगता है, परन्तु उस रोज चोर को इतनी बहादुरी से पकड़ा कि सब दंग रह गए; यह भगवान की मूर्ति नहीं है क्योंकि केवल एक पत्थर का टुकड़ा है ।

१०. निम्न दृष्टान्त किस-किस नाम वाले हैं—

जो किया जाता है वह परिणामी होता है जैसे घर; जो किया नहीं जाता वह परिणामी भी नहीं होता जैसे आकाश; जहां इच्छा होती है वहां अवश्य मायाचारी होती है जैसे लोभी राम; जहां इच्छा नहीं होती वहां अन्य कषाय भी नहीं होती जैसे वीतरागदेव; मेहनती व्यक्ति खूब कमाता है जैसे वृद्धिचन्द्र; जो काम नहीं करता वह कुछ कमाता नहीं जैसे मंगतराय ।

११. पांच अंग लागू करके दिखाओ—

यह रोगी अभी मरा नहीं है; शब्द परिणामी है; अग्नि गर्म है; अन्न प्राण हैं; जगत किसी ईश्वर का बनाया हुआ नहीं है ।

१२. बताओ निम्न हेतु किस-किस नाम के हैं—

वस्तु अनेकान्त स्वरूप है क्योंकि सत् है; इस मनुष्य में आत्मा है क्योंकि चेष्टा देखी जाती है; जीव चेतन होता है क्योंकि जानता देखता है; अग्नि दाहक है क्योंकि उससे वस्तुयें जल जाती हैं; यह व्यक्ति अवश्य पागल है क्योंकि पागलों की सी चेष्टा कर रहा है; यह घर अवश्य बसा हुआ है क्योंकि इसमें रात्रि को प्रकाश देखा जाता है ।

१३. निम्न के उदाहरण देकर समझाओ—

केवल अन्वयी हेतु; केवल व्यतिरेकी हेतु; अन्वय व्यतिरेकी हेतु; बाधित विषय; अकिंचित्कर हेतु; असिद्ध हेतु; विरुद्ध हेतु; अनैकान्तिक हेतु; प्रत्यभिज्ञान; स्मृति; तर्क; समव्याप्ति; विषमव्याप्ति; स्वार्थ प्रमाण; परार्थ प्रमाण; साध्य; साधन; संशय; विपर्यय; अनध्यवसाय; प्रतिज्ञा हेतु; उपनय; निगमन; तिर्यक् सामान्य; ऊर्ध्व सामान्य; एक द्रव्यगत सहभावी विशेष; अनेक द्रव्यगत सहभावी विशेष; क्रमभावी विशेष; सिद्ध साधन हेत्वाभास; अनुमान बाधित हेत्वाभास; लोक बाधित हेत्वाभास; आगमबाधित हेत्वाभास; प्रत्यक्ष बाधित हेत्वाभास ।

१४. जोड़ रूप ज्ञान से क्या समझे ?

१५. साध्य में कितनी शर्तें होनी चाहियें, कारण सहित खुलासा करके बताओ।

१६. अनुमान के कितने अंग हैं उन सबको एक ही वाक्य में पृथक-पृथक प्रयोग करके दिखाओ।

१७. अनुमान में पांच अंगों की बजाय तीन अंग हों तो क्या बाधा आती है ?

१८. साध्य के लक्षण में से दृष्ट, अबाधित व असिद्ध इन में से कोई एक शर्त हटा लेने से क्या बाधा आती है ?

१/४ नय-अधिकार

(१) नय किसे कहते हैं ?

वस्तु के एक देश जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं ।

(२) नय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक निश्चय दूसरा व्यवहार अथवा उपनय ।

(३) निश्चय नय किसे कहते हैं ?

वस्तु के किसी एक असली अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चय नय कहते हैं, जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना ।

(४) व्यवहार नय किसको कहते हैं ?

किसी निमित्त के वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहार नय कहते हैं, जैसे मिट्टी के घड़े को घी के रहने से घी का घड़ा कहना।

(५) निश्चय नय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक द्रव्यार्थिक नय दूसरा पर्यायार्थिक नय ।

६. द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक की भांति तीसरा गुणार्थिक नय क्यों नहीं कहा ?

नहीं । क्योंकि गुण स्वयं सहभावी पर्याय होने के कारण, उसका अन्तर्भाव पर्यायार्थिक नय में हो जाता है । पर्याय शब्द यहाँ 'विशेष' का वाचक है। (विशेष देखिये द्वि० अध्याय २/१ सामान्य अधिकार, ४ पर्याय का प्रश्न नं० १०)

(७) द्रव्यार्थिक नय किसको कहते हैं ?
द्रव्य अर्थात जो सामान्य को ग्रहण करे ।

(८) पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं ?
जो विशेष को अर्थात गुण व पर्याय को विषय करे ।

(९) द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं ?
तीन हैं—नैगम, संग्रह, व्यवहार ।

(१०) नैगम नय किसको कहते हैं ?
दो पदार्थों में से एक को गौण व दूसरे को प्रधान करके भेद अथवा अभेद को विषय करने वाला तथा पदार्थ के संकल्प को ग्रहण करने वाला ज्ञान नैगम नय है, जैसे—कोई आदमी रसोई में चावल चुन रहा था । उस से पूछा कि तुम क्या कर रहे हो । तब उसने कहा कि भात बना रहा हूँ । यहाँ चावल और भात में अभेद विवक्षा है । अथवा चावलों में भात का संकल्प है ।

(११) संग्रह नय किसे कहते हैं ?
अपनी जाति का विरोध नहीं करके अनेक विषयों को एकपने से ग्रहण करे उसे संग्रह नय कहते हैं, जैसे जीव कहने से चारों गति के जीवों का ग्रहण हो जाता है ।

(१२) व्यवहार नय किसे कहते हैं ?
जो संग्रह नय से ग्रहण किये हुए पदार्थों को विधिपूर्वक भेद करे सो व्यवहार नय है; जैसे जीव का भेद त्रस स्थावर आदि करना ।

(१३) पर्यायार्थिक नय के कितने भेद हैं ?
चार हैं—ऋजुसूत्र नय, शब्द नय, समभिरूढ नय व एवंभूत नय

(१४) ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं ?
भूत भविष्यत की अपेक्षा न करके वर्तमान पर्याय मात्र को (पूर्ण सत् के रूप में) ग्रहण करे सो ऋजुसूत्र नय है ।

(१५) शब्द नय किसे कहते हैं ?
लिंग, कारक, वचन, काल, उपसर्गादिक के भेद से जो पदार्थ को भेद रूप ग्रहण करे सो शब्द नय है, जैसे—दार भार्या कलत्र

ये तीनों भिन्न-भिन्न लिंग के शब्द एक ही स्त्री पदार्थ के वाचक हैं, सो यह नय स्त्री पदार्थ को (शब्द भेद से) तीन भेद रूप ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारकादि के भी दृष्टान्त जानना।

(नोटः—शब्दादि चार नयों का व्यापार पदार्थ के वाचक शब्द में होता है, पदार्थ में नहीं, इसी लिये ये चारों शब्द या व्यंजन नए कहलाते हैं और पदार्थ ग्राहक होने से नैगमादि तीन अर्थ नय है।)

(१६) समभिरूढ़ नय किसे कहते हैं ?

लिंगादि का भेद न होने पर भी पर्याय(वाची)शब्द के भेद से जो पदार्थ को भेद रूप ग्रहण करे, जैसे—इन्द्र शक्र पुरन्दर ये तीनों एक ही लिंग के पर्याय (वाची) शब्द हैं। देवराज के वाचक हैं। सो यह नय देवराज को तीन भेद रूप ग्रहण करता है।

(१७) एवंभूत नय किसे कहते हैं ?

जिस शब्द का जिस क्रिया रूप अर्थ है, उस क्रिया रूप परिणमे पदार्थ को ग्रहण करे, सो एवंभूत नय है, जैसे पुजारी को पूजा करते समय ही पुजारी कहना।

१८. इन सातों नयों के अन्य प्रकार विभाग करो।

दो विभाग हैं—अर्थ नय और दूसरा शब्द या व्यञ्जन नय।

१६. अर्थ नय किसे कहते हैं ?

जो पदार्थ के सामान्य व विशेष अंशों को ग्रहण करे सो अर्थ नय है।

२०. शब्द या व्यञ्जन नय किसे कहते हैं ?

जो पदार्थ के वाचक शब्द में व्यापार करे सो व्यञ्जन नय है।

२१. सातों में अर्थ नय कौन है ?

नैगम, संग्रह, व्यवहार व ऋजु सूत्र ये चारों पदार्थ के स्वरूप को ग्रहण करने के कारण अर्थ नय हैं।

२२. सातों में व्यञ्जन नय कौन है ?

तीन शब्द, समभिरूढ व एवंभूत इन तीन नयों का व्यापार

पदार्थ के स्वरूप में न होकर उनके वाचक शब्दों के प्रति होता है, इसलिये तीनों शब्द नय या व्यञ्जन नय कहलाते हैं।

२३. सातों में स्थूल व सूक्ष्म विषय ग्राहकता दर्शाओ।

सामान्य ग्राहक होने से नैगमादि तीन द्रव्यार्थिक नय स्थूल हैं और विशेष ग्राहक होने से ऋजु आदि चार पर्यायार्थिक नय सूक्ष्म। पर्यायार्थिक चारों में भी पदार्थ ग्राहक होने से ऋजु सूत्र स्थूल है और वाचक शब्द ग्राहक होने से शब्दादि तीन सूक्ष्म। द्रव्यार्थिक में भी भेद व अभेद दोनों को ग्रहण करने से नैगम स्थूल है, उसमें जाति भेद करने से संग्रह नय उसकी अपेक्षा सूक्ष्म और उसमें भी विधि पूर्वक भेद करने से व्यवहार नय उससे भी सूक्ष्म है। वर्तमान पर्याय मात्र ग्राही होने से ऋजुसूत्र उससे भी सूक्ष्म है। व्यञ्जन नयों में शब्द नय ऋजुसूत्र से सूक्ष्म है क्योंकि लिंगादि के भेद से उसके विषय में भी भेद कर देती है। एक-एक लिंगादि में उत्तर भेद करने से समभिरूढ उससे सक्ष्म और क्रिया व परिणति की अपेक्षा भेद कर देने से एवंभूत सबसे सूक्ष्म है।

(२४) व्यवहार नय या उपनय के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—सद्भूत व्यवहार नय, असद्भूत व्यवहार नय तथा उपचरित व्यवहार नय (अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहार नय)।

(२५) असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

एक अखण्ड द्रव्य को भेद रूप विषय करने वाले ज्ञान को सद्भूत व्यवहार नय कहते हैं, जैसे जीव के केवलज्ञानादि व गति-ज्ञानादि गुण हैं।

(२६) असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

भिन्न पदार्थों को जो अभेदरूप ग्रहण करे, जैसे—यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना।

(२७) उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

अत्यन्त भिन्न पदार्थों को जो अभेद रूप ग्रहण करे, जैसे—हाथी, घोड़ा, महल, मकान मेरे हैं, इत्यादि।

२८. सद्‌भूत व असद्‌भूत व्यवहार नय में क्या अन्तर है ?

अभेद द्रव्य में गुण गुणी भेद करके द्रव्य को गुण वाला आदि कहने की पद्धति सद्‌भूत व्यवहार नय है, और भिन्न द्रव्यों में कारण भावों द्वारा या अहंकार ममकार द्वारा स्वामित्व सम्बन्ध स्थापित करना अथवा उनमें कर्ता भोक्ता भाव उत्पन्न करना असद्‌भूत व्यवहार है। इस प्रकार अभेद में भेद करना सद्‌भूत और भेद में अभेद करना असद्‌भूत है।

२९. असद्‌भूत व उपचरित असद्‌भूत में क्या अन्तर है ?

एक क्षेत्रावगाही भिन्न पदार्थों में अभेद करना असद्‌भूत या अनुपचरित असद्‌भूत है, जैसे शरीर व जीव में। तथा भिन्न क्षेत्रावगाही भिन्न पदार्थों में अभेद करना उपचरित असद्‌भूत है, जैसे जीव व मकान में।

३०. सद्‌भूत व असद्‌भूत विशेषण का सार्थक्य क्या ?

गुण पर्याय वास्तव में द्रव्य के अपने अंश हैं इसलिये उनका सम्बन्ध सद्‌भूत है; पर भिन्न पदार्थ एक दूसरे के स्वभाव या अंश नहीं हैं इसलिये उनका सम्बन्ध असद्‌भूत है। व्यवहारपना दोनों में समान है क्योंकि अभेद में भेद करना भी व्यवहार है और भेद में अभेद करना भी। कारण कि दोनों ही उपचार हैं वास्तविक नहीं।

३१. वास्तविक न होते हुये भी व्यवहार का प्रयोग क्यों ?

बिना विश्लेषण किये अभेद द्रव्य का परिचय देना असम्भव है तथा भिन्न द्रव्यों का वर्तन करने से ही लोक का सारा व्यवहार चलता है अतः गुरु शिष्य व्यवहार में तथा लौकिक व्यवहार में सर्वत्र इसी नय का आश्रय स्वाभाविक है। स्वभाव में स्थित ज्ञाता दृष्टा व्यक्ति को न बोलने की आवश्यकता और न लौकिक प्रयोजन की, इसलिये उसमें उसका आश्रय नहीं पाया जाता।

३२. निश्चय नय का लक्षण व कथन पद्धति बताओ।

गुण गुणी में अभेद करके वस्तु जैसी है वैसी ही कहना निश्चय

नय की पद्धति है, जैसे—जीव ज्ञानस्वरूप या ज्ञानमयी है अथवा ज्ञान ही जीव है।

३३. निश्चय नय व सद्भूत व्यवहार में क्या अन्तर है ?

गुण गुणी में अभेद करके कहना निश्चय नय है और भेद करके कहना सद्भूत व्यवहार नय है जैसे—जीव को ज्ञान स्वरूप या ज्ञानमय कहना निश्चय नय है और ज्ञानवान या ज्ञान वाला कहना सद्भूत व्यवहार।

३४. अध्यात्म दृष्टि से निश्चय नय के कितने भेद हैं ?

वास्तव में निश्चय नय का कोई भेद नहीं, पर द्रव्य के स्वभाव का परिचय देने के लिये उपचार से उसके दो भेद कर दिये जाते हैं—शुद्ध निश्चय व अशुद्ध निश्चय।

३५ शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं ?

शुद्ध द्रव्य के स्वभाव को बताने वाला शुद्ध निश्चय है, जैसे सिद्ध भगवान केवलज्ञान स्वरूप है, अथवा जीवज्ञान स्वरूप है।

३६. अशुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं ?

अशुद्ध द्रव्य के स्वभाव को बताने वाला अशुद्ध निश्चय है, जैसे संसारी जीव मतिश्रुत ज्ञान स्वरूप है अथवा रागमयी है।

३७. निश्चय नय के ये भेद उपचार कैसे है ?

वास्तव में द्रव्य तो न शुद्ध है न अशुद्ध। शुद्ध अशुद्ध तो उसकी पर्याय है। पर्याय को द्रव्य रूप से ग्रहण करके कहना उपचार है।

३८. क्या नय के इतने ही भेद हैं या और भी ?

और भी अनेक भेद प्रभेद हैं, जैसे द्रव्यार्थिक के १० भेद और पर्यायार्थिक के ६ भेद शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। पर उन सबका कथन यहाँ करने से विषय की जटिलता बढ़ती है। अतः यदि नय का विस्तृत व विशद ज्ञान प्राप्त करना है तो क्षु० जिनेन्द्र वर्णी कृत **'नय दर्पण'** नामक ग्रन्थ देखिये। आगे इसी विषय का पृथक अध्याय भी दिया है।

प्रश्नावली

१. लक्षण करो:–

नय, निश्चय नय, व्यवहार नय, द्रव्यार्थिक नय, पर्यायार्थिक नय, नैगम नय, संग्रह नय, व्यवहार नय, ऋजुसूत्र नय, शब्द नय, समभिरूढ नय, एवंभूत नय; सद्भूत व्यवहार नय; असद्भूत व्यवहार नय; उपचरित असद्भूत व्यवहार नय; शुद्ध निश्चय नय; अशुद्ध निश्चय नय।

२. अर्थ नय व व्यञ्जन नय के लक्षण व भेद दर्शाओ।

३. नैगमादि को अर्थ नय तथा शब्दादि को व्यञ्जन नय कहने में हेतु?

४. नैगमादि सात नयों के विषयों में स्थूलता व सूक्ष्मता दर्शाओ।

५. निश्चय नय व व्यवहार नय तथा उनकी कथन पद्धति में क्या अन्तर है ?

६. सद्भूत व्यवहार व असद्भूत व्यवहार में क्या अन्तर है ?

७ सद्भूत व असद्भूत में विशेषणों का सार्थक्य दर्शाओ।

८. निश्चय नय व सद्भूत व्यवहार में क्या अन्तर है ?

९. निश्चय नय के भेद करना उपचार क्यों ?

१०. उपचार होते हुए भी व्यवहार नय व उसके भेदों को कहने की क्या आवश्यकता है ?

११. नय से अतीत व्यक्ति कैसा होता है ?

१२. क्या नयों को जान लेने मात्र से अथवा व्यवहार की असत्यार्थता को जान लेने मात्र से उसका आश्रय छूट जाता है ?

१३. व्यवहार नय का आश्रय कैसे छूटे ?

द्वितीय अध्याय

(द्रव्य गुण पर्याय)

२/१ सामान्य अधिकार

परिचय:-(सामान्य अधिकार को ६ भागों में विभाजित किया गया है -विश्व, द्रव्य, गुण, पर्याय, धर्म व द्रव्य का विश्लेषण। इन का क्रम से कथन किया जायेगा)

(१. विश्व)

१. विश्व किसको कहते हैं ?

जो कुछ दिखाई देता है वह विश्व है, अथवा द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।

२. दिखाई क्या देता है ?

सत्।

३. सत् किसको कहते हैं ?

जो है उसे सत् कहते हैं।

४. समूह से क्या तात्पर्य ?

अनेक पृथक-पृथक द्रव्यों का संग्रह समूह है, जैसे सेना।

(२. द्रव्य)

(५) द्रव्य किसको कहते हैं ?

गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं ।

६. समूह किसको कहते हैं ?

किसी न किसी सम्बन्ध से एकता को प्राप्त अनेक पदार्थों को समूह कहते हैं, जैसे—सेना ।

७. सम्बन्ध कितने प्रकार का होता है ?

चार प्रकार का—संयोग, सश्लेष, अयुत सिद्ध और तादात्म्य ।

८. संयोग सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

जो सम्बन्ध किया गया हो, और सम्बन्ध को प्राप्त होकर भी द्रव्य पृथक-पृथक ही रहें उसे संयोग सम्बन्ध कहते हैं, जैसे अनाज की बोरी या सेना ।

९. संश्लेष सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

जो सम्बन्ध किया गया हो परन्तु सम्बन्ध को प्राप्त होकर द्रव्य पृथक-पृथक न रहें उसे संश्लेष सम्बन्ध कहते हैं, जैसे दूध व पानी का सम्बन्ध ।

१०. अयुत सिद्ध सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

जो सम्बन्ध किया न जाये पर उसमें द्रव्य पृथक-पृथक रहें, जैसे वृक्ष में डाली फूल फल आदि ।

११. तादात्म्य सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

जो सम्बन्ध किया न जाये और उसमें पदार्थ भी पृथक-पृथक न रहें उसे तादात्म्य सम्बन्ध कहते हैं, जैसे अग्नि में उष्णता प्रकाश आदि ।

१२. संग्रह कितने प्रकार का होता है ?

पाँच प्रकार का होता है :-

(क) जो किया जाय और तोड़ा भी जाय, जिसमें पदार्थ पृथक-पृथक रहें और समूह से पृथक एक दूसरा स्वतंत्र पदार्थ भी है जिसमें कि वह समूह रहता हो, जैसे अनाज की बोरी (संयोग सम्बन्ध)

(ख) जो किया जाय और तोड़ा भी जा सके, जिसमें पदार्थ पृथक-२ भी रहते हों, पर समूह से पृथक दूसरा कोई स्वतंत्र पदार्थ न हो जिसमें कि वह समूह रहे, जैसा सेना या लकड़ी का गट्ठा (संयोग)

(ग) जो किया जाय और तोड़ा भी जाय, परन्तु न तो उसमें पदार्थ पृथक-२ रह सकें और समूह से पृथक दूसरा कोई स्वतंत्र पदार्थ हो, जिसमें कि वह समूह रहे, जैसे--पावक (संश्लेष)

(घ) जो किया तो न जाये पर तोड़ा जा सके, जिसमें पदार्थ पृथक रहे पर समूह से पृथक अन्य कोई स्वतंत्र पदार्थ न हो, जिसमें कि वह समूह रहे, जैसे—वृक्ष (अयुतसिद्ध)

(ङ) जो न किया गया हो और न तोड़ा जा सके, न ही उसमें पदार्थ पृथक-पृथक रहते हैं। और न ही समूह से पृथक कोई स्वतंत्र पदार्थ हो जिसमें कि वह समूह रहे, जैसे अग्नि (तादात्म्य)

१३. द्रव्य के लक्षण में कौन समूह इष्ट है ?

पाँचवां अर्थात अग्नि वाला, क्योंकि गुणों का समूह न किया जाता है, न तोड़ा जा सकता है, न गुण पृथक-२ रहते हैं, न ही उनके समूह से पृथक कोई अन्य स्वतंत्र द्रव्य नाम की चीज है जिसमें कि गुणों का समूह रहे।

१४. दूसरे प्रकार से द्रव्य का लक्षण करो।

गुण पर्याय के समूह को द्रव्य कहते हैं।

१५. गुण किसे कहते हैं ?

जो द्रव्य में सर्वदा रहे उसे गुण कहते हैं, जैसे स्वर्ण में पीलापन। (विशेष परिचय आगे पृथक विभाग में दिया जायेगा)

१६. पर्याय किसे कहते हैं ?

जो द्रव्य में सर्वदा न रहे बल्कि क्षण भर के लिये या सीमित काल के लिये रहे, अथवा द्रव्य की परिवर्तनशील अवस्थाओं को पर्याय कहते हैं, जैसे स्वर्ण में कड़ा कुण्डल आदि। (विशेष देखें आगे पृथक विभाग)

१७. द्रव्य का तीसरे प्रकार से लक्षण करो।

सत् ही द्रव्य का लक्षण है।

१८. सत् किसको कहते हैं ?

जिसमें तीन बातें युगपत पाई जायें—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य।

(१९) उत्पाद किसे कहते हैं ?

द्रव्यों में नवीन पर्याय की प्राप्ति को उत्पाद कहते हैं, जैसे सोने में कुण्डल रूप पर्याय की प्राप्ति।

२०. व्यय किसे कहते हैं ?

द्रव्य की पूर्व पर्याय के त्याग को व्यय कहते हैं, जैसे सोने में कड़े रूप पर्याय का विनाश।

(२१) ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

प्रत्यभिज्ञान की कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं। जैसे—कड़े व कुण्डल में स्वर्ण की नित्यता।

२२. उत्पाद व्यय ध्रौव्य में तीनों एक ही समय होते हैं या पृथक पृथक ?

(क) यदि पूर्व व उत्तरवर्ती दो पर्यायों को लेकर देखें तो तीनों एक साथ रहते हैं, क्योंकि घड़े का व्यय, कपाल का उत्पाद और मिट्टीपने की ध्रुवता तीनों का एक ही काल है आगे पीछे नहीं। कारण कि घड़े का व्यय ही वास्तव में कपाल का उत्पाद है।

(ख) यदि एक ही किसी विवक्षित पर्याय को लेकर देखें तो उत्पाद व व्यय का काल भिन्न है, जैसे—घड़े का उत्पाद और उसी घड़े का विनाश दोनों एक काल में नहीं हो सकते। मिट्टी की ध्रुवता तो दोनों अवस्थायों में साथ है।

२३. एक ही द्रव्य में उत्पाद व्यय व ध्रौव्य ये तीन विरोधी बातें एक साथ कैसे रह सकती हैं ?

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि ये तीनों एक ही बात में नहीं माने जा रहे हैं। उत्पाद किसी अन्य बात का होता है, व्यय

किसी अन्य का और ध्रौव्य किसी अन्य का। उत्पाद नवीन पर्याय का होता है, व्यय पूर्व पर्याय का और ध्रौव्य गुण व द्रव्य की।

२४. क्या पूर्व व उत्तर पर्यायें और गुण व द्रव्य पृथक-पृथक तीन बातें हैं ?

नहीं, एक ही द्रव्य में दीखने वाले तीन तथ्य हैं, जैसे एक ही द्रव्य में रहने वाले अनेक गुण।

२५. द्रव्य गुण पर्याय में कौन सत् है और कौन असत् ?

तीनों ही सत् हैं। वहाँ द्रव्य व गुण त्रिकाली सत् हैं और पर्याय क्षणिक सत्। त्रिकाली न होने के कारण भले इसे असत् कहो।

२६. पर्याय में सत् का लक्षण घटित करो।

पर्याय का प्रथम समय में उत्पाद होता है, उत्तर समय में व्यय होता है और एक समय के लिये वह ध्रुव रहती है, अतः सत् है।

२७. द्रव्य में अंश अंशी भेद दर्शाओ—

(क) द्रव्य अंशी है और गुण पर्याय उसके अंश, क्योंकि जिस में अंश रहें वही अंशी।

(ख) उपरोक्त प्रकार ही द्रव्य अंगी है और गुण पर्याय उसके अंग।

(ग) द्रव्य अवयवी है और गुण पर्याय उसके अवयव।

(घ) द्रव्य गुणी है और गुण उसके गुण।

(ङ) द्रव्य पर्यायी है और पर्याय उसकी पर्याय।

इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय में यथा योग्य अंश-अंशी, अंग-अंगी, अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी, आदि युगल भाव घटाये जाने चाहियें।

२८. द्रव्य गुण पर्याय में कौन सामान्य है और कौन विशेष ?

द्रव्य सामान्य है और गुण पर्याय उसके विशेष। इसी प्रकार गुण सामान्य है और गुण-पर्याय उसके विशेष। द्रव्य सामान्य ही है विशेष नहीं, क्योंकि उसमें ही गुण पर्याय रहती हैं, वह किसी में नहीं रहता। गुण सामान्य व विशेष दोनों है, द्रव्य की अपेक्षा विशेष और पर्याय की अपेक्षा सामान्य। पर्याय विशेष ही है, क्योंकि पर्याय में अन्य गुण या पर्याय नहीं रहते।

२९. द्रव्य के तीनों लक्षणों का समन्वय करो—

द्रव्य में गुण सामान्य अंश है और पर्याय उसके ही विशेष हैं, जैसे रस सामान्य है और खट्टा मीठा उसके विशेष । इसलिये पहिला व दूसरा लक्षण एक है । गुणों का समूह कहो या गुण पर्यायों का एक ही बात है, क्योंकि विशेष को छोड़कर सामान्य या पर्याय को छोड़कर गुण नहीं रहता ।–गुण ध्रुव है और पर्याय उत्पाद व्ययवाली । इसलिये गुण व पर्याय दो का समूह कहने से वह स्वतः उत्पाद व्यय व ध्रौव्य तीनों से युक्त हो जाता है और वही सत् का लक्षण है । अतः दूसरा व तीसरा लक्षण एक है । गुण पर्यय वाला कहो या सत् एक ही बात है ।

३०. द्रव्य को सत्, द्रव्य, वस्तु, पदार्थ व अर्थ आदि नाम कैसे दे सकते हैं ?

द्रव्य का अस्तित्व है इसलिये वह 'सत्' है । वह सत् उत्पाद व्यय युक्त होने से 'द्रव्य' है क्योंकि नित्य परिणमन ही द्रव्यत्व का लक्षण है । इसी उत्पाद व्यय के कारण अर्थ क्रिया होती रहने से अथवा कोई न कोई प्रयोजनभूत कार्य होता रहने से वह 'वस्तु' है, क्योंकि अर्थ क्रिया ही वस्तुत्व का लक्षण है । गुणों व पर्यायों को प्राप्त होने से वह 'अर्थ' है क्योंकि अर्थ का लक्षण प्राप्त होना है । अर्थ पद युक्त होने से पदार्थ है ।

३१. अर्थ किसे कहते हैं ?

अर्थ शब्द 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ प्राप्त करना या प्राप्त होना है । जो अपने गुण पर्यायों को प्राप्त होता है, होता था व होता रहेगा, अथवा जिसे गुण पर्याय प्राप्त करते हैं, करते थे व करेंगे, वह अर्थ है । अथवा द्रव्य गुण पर्याय तीनों को युगपत कहने वाला एक शब्द 'अर्थ' है ।

३२. पदार्थ किसको कहते हैं ?

अर्थ या पदार्थ एकार्थवाची हैं ।

३३. सत्ता कितने प्रकार की है ?

दो प्रकार की है—एक महासत्ता दूसरी अवान्तर सत्ता ।

३४. **महासत्ता किसे कहते हैं** ?
(सर्व द्रव्य सन्मात्र हैं। इस प्रकार विश्व में एक सत् ही दिखाई देता है। ऐसी विश्वव्यापिनी एक अखण्ड सत्ता को महासत्ता कहते हैं) समस्त पदार्थों के अस्तित्व गुण के ग्रहण करने वाली सत्ता को महासत्ता कहते हैं।

३५. **अवान्तर सत्ता किसे कहते हैं** ?
किसी एक विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवान्तर सत्ता कहते हैं।

३६. **द्रव्य के स्वचतुष्टय दर्शाओ** ।
द्रव्य में चार बातें पाई जाती हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव। इन्हें ही द्रव्य का स्वचतुष्टय कहते हैं।

३७. **स्वचतुष्टय के पृथक-पृथक लक्षण करो** ।
गुणों का अधिष्ठान वह द्रव्य ही स्वयं 'द्रव्य' है, क्योंकि गुण द्रव्य के आश्रय रहते हैं। द्रव्य की लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदि अथवा उसके आकार की रचना करने वाले उसके अपने प्रदेश ही उसका 'स्वक्षेत्र' हैं। द्रव्य की परिवर्तनशील पर्याय काल सापेक्ष होने से उसका 'स्व काल' है। तथा द्रव्य के गुण का अथवा उसकी वर्तमान पर्याय को उसका 'स्व-भाव' कहते हैं।

३८. **क्या द्रव्यादि चतुष्ट पर भी होते हैं, जो कि यहाँ 'स्व' विशेषण लगाने की आवश्यकता पड़ी** ?
हाँ, विवक्षित द्रव्य के अतिरिक्त जितने भी जीव अजीव अन्य द्रव्य हैं वे ही 'पर द्रव्य' हैं। अपने प्रदेशों से या तद्रचित आकृति से अतिरिक्त नगर ग्राम घर बर्तन सन्दूक आदि जितने भी क्षेत्र वाचक पदार्थ हैं वे सब 'पर-क्षेत्र' हैं। अपनी पर्याय के अतिरिक्त दिन रात घण्टा घड़ी पल आदि सब 'पर-काल' हैं। एक द्रव्य के गुण व वर्तमान पर्याय दूसरे द्रव्य के लिये 'परभाव' हैं, जैसे कि दूध में तरलता, क्योंकि वास्तव में दूध की नहीं बल्कि उसके साथ रहने वाली पानी की है, जो अग्नि पर रखने से उससे निकल जाती है।

३६. स्वचतुष्टय को दो भागों में करके दिखाओ ।

गुणों का अधिष्ठान होने से द्रव्य क्षेत्रात्मक है, इसलिये 'स्व-क्षेत्र' को द्रव्य में गर्भित कर दीजिये । गुण या भाव परिणामी होने से 'स्व-काल' को उसमें गर्भित कर दीजिये । इस प्रकार 'द्रव्य' व 'भाव' दो ही प्रधान विभाग हैं ।

४०. गर्भित ही करना है तो भाव व काल को भी द्रव्य में ही गर्भित करके एक ही विभाग रहने दो ।

नहीं, क्योंकि क्षेत्र व भाव में अन्तर है । क्षेत्र तो प्रदेशों की रचना का नाम है और भाव रस स्वरूप होते हैं । जीव व अजीव दोनों ही द्रव्यों का क्षेत्र तो प्रदेशात्मक मात्र होने से एक प्रकार से जड़ ही है और भाव जीव द्रव्य में चेतन होते हैं तथा अजीव द्रव्य में चेतन के उपभोग्य । क्षेत्र द्रव्य का बाहरी रूप है और भाव उसका भीतरी रूप । क्षेत्र या प्रदेशों में हलन चलन होता है और भावों में बिना हिले जुले ही परिणमन होता है । द्रव्य की क्षेत्र परिवर्तन में कोई हानि वृद्धि नहीं होती पर भाव परिवर्तन मे हानि वृद्धि होती है । (विशेष आगे बताया जायेगा)

४१. द्रव्य कितने प्रकार का होता है ?

छः प्रकार का—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल । (नोट–इनका पृथक २ विस्तार से विवेचन आगे किया जायेगा)

(३. गुण)

४२. गुण किसे कहते हैं ?

जो द्रव्य के सम्पूर्ण हिस्सों में व सर्व हालतों में रहे उसे गुण कहते हैं ।

४३. गुण की व्याख्या में स्वचतुष्टय दर्शाओ ।

व्याख्या के चार भाग हैं— १. द्रव्य के, २. सम्पूर्ण हिस्सों में, ३. व सर्व हालतों में रहे, ४. उसे गुण कहते हैं । वहां नं० १ से 'द्रव्य', नं० २ से 'क्षेत्र' नं०३ से 'काल' और नं० ४ से 'भाव' कहा गया है ।

४४. गुण की व्याख्या में से 'सर्व अवस्थाओं में' इतना भाग काट दें तो क्या दोष प्राप्त हो ?

लक्षण अव्याप्त हो जायेगा, क्योंकि द्रव्य की जिस अवस्था में गुण रहेगा उस अवस्था में तो वह द्रव्य कहलावेगा, पर अन्य अवस्था में उसका अभाव ही हो जायेगा, क्योंकि तब वहां गुणों का समूह प्राप्त न होने से द्रव्य का लक्षण घटित न हो सकेगा ।

४५. 'जो तादात्म्य रूप से द्रव्य में रहे उसे गुण कहते हैं' ऐसा कहें तो ?

लक्षण में अव्याप्त व अतिव्याप्त दोनों दोष प्राप्त होते हैं —

(क) तादात्म्य कहने से क्षेत्र तो आ जाता है पर काल नहीं आता । इसलिये लक्षण अव्याप्त रहता है ।

(ख) यह लक्षण गुण व पर्याय दोनों में चरितार्थ होता है, क्योंकि पर्याय भी द्रव्य के साथ तादात्म्य रहती है । इसलिये लक्षण अतिव्याप्त हो जाता है ।

४६. गुण की व्याख्या में से 'सर्व भागों में' इतना भाग काट दें तो क्या हानि ?

लक्षण अव्याप्त हो जायेगा, क्योंकि द्रव्य के एक कोने में गुण रहेगा और दूसरे में नहीं । उस खाली वाले कोने या भाग में गुणों का समूह प्राप्त न होने से द्रव्य का लक्षण घटित न होगा ।

४७. 'सर्व भागों में' इतने पद द्वारा क्या घोषित होता है ?

द्रव्य का 'स्व-क्षेत्र' बताया जाता है ।

४८. 'सर्व अवस्थाओं में' इतने पद द्वारा क्या घोषित होता है ?

द्रव्य का 'स्व-काल' बताया जाता है ।

४९. गुण की व्याख्या में भाववाची शब्द कौनसा है ?

तहां कहा गया 'गुण' शब्द ही 'भाव' को प्रगट करता है ?

५०. उत्पन्न ध्वंसी भाव गुण है या पर्याय कारण सहित बतायें ।

गुण नहीं पर्याय है, क्योंकि वे सर्व अवस्थाओं में नहीं रहते ।

५१. आम एक तरफ खट्टा होता है और दूसरी तरफ मीठा। सो उसका मिठास गुण उसके सर्व भागों में क्यों नहीं रहता ?
मीठापन उसका गुण नहीं पर्याय है। इस नाम का गुण है जो सर्व भागों में रहता है। दूसरी बात यह भी है कि आम कोई एक अखण्ड मौलिक द्रव्य नहीं हैं बल्कि अनेक परमाणुओं का पिण्ड है। प्रत्येक परमाणु स्वयं मौलिक द्रव्य है। उन्हें पृथक पृथक देखें तो प्रत्येक में एक एक ही रस है दो नहीं।

(४. पर्याय)

५२. पर्याय किसको कहते हैं ?
गुण के विकार को (अर्थात विशेष कार्य को) पर्याय कहते हैं।

५३. विकार या विशेष कार्य किसे कहते हैं ?
उत्पाद व्यय होना ही विकार या विशेष कार्य है।

५४. कार्य किसको कहते हैं ?
जो नया उत्पाद हो वही 'कार्य' हुआ कहा जाता है।

५५. पर्याय कहां रहती है ?
जहां जहां गुण रहता है वहां वहां ही उसकी पर्याय भी रहती है, क्योंकि कार्य कारण से पृथक होकर नहीं रहता। अत: गुण की भांति द्रव्य के सर्व भागों में ही पर्याय भी रहती है।

५७. पर्याय कितने काल तक रहती है ?
सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर प्रत्येक पर्याय एक समय से अधिक नहीं रहती, परन्तु स्थूल दृष्टि से देखने पर कुछ वर्ष पर्यन्त रहती है।

५७. पर्याय का भाव कैसा होता है ?
जो भाव गुण का होता है वही उसकी पर्याय का होता है, क्योंकि कारण सदृश्य ही कार्य होना न्याय संगत है।

५८. गुण की व्याख्या में पर्याय का लक्षण घटित करो।
"जो द्रव्य के सर्व भागों में परन्तु केवल एक अवस्था में रहे उसे पर्याय कहते हैं'।

५९. गुण व पर्याय में क्या क्या बात समान हैं ?
द्रव्य, क्षेत्र व भाव समान हैं परन्तु काल में अन्तर है।

६०. यदि गुण के क्षेत्र से पर्याय का क्षेत्र छोटा हो तो क्या दोष ?
पर्याय से बाहर स्थित गुण का भाग बिना परिवर्तन वाला रह जायेगा इसमें असम्भव दोष आता है, क्योंकि एक तो अखण्ड वस्तु में ऐसा द्वैत सम्भव नहीं और दूसरे गुणका स्वभाव ही परिणामी है।

६१. द्रव्य में गुण अधिक हैं या पर्याय ?
गुण व पर्याय दोनों समान हैं, क्योंकि गुण हर समय अपनी किसी न किसी पर्याय के साथ ही रहता है।

६२. पर्याय का दूसरी प्रकार लक्षण करो ?
द्रव्य के विशेष को पर्याय कहते हैं।

६३. द्रव्य के विशेष से क्या तात्पर्य ?
अंग, अंश, विशेष, अवयव, पर्याय ये सब एकार्थ वाची हैं।

६४. पर्याय या विशेष कितने प्रकार के होते हैं ?
दो प्रकार के—सहभावी पर्याय व क्रम-भावी पर्याय।
(इनके लक्षण पहिले किये जा चुके हैं। देखो १/३ परोक्ष प्रमाणाधिकार में प्रश्न नं० ६८ व ७२)
अथवा तिर्यक् व ऊर्ध्व विशेष

६५. तिर्यक् व ऊर्ध्व विशेष किसको कहते हैं ?
एक ही काल में भिन्न भिन्न क्षेत्र में स्थित अनेक पदार्थ तिर्यक् विशेष हैं ; जैसे गाय, घोड़ा, आदि पशु के तिर्यक् विशेष हैं। एक द्रव्य की आगे पीछे होने वाली भिन्न काल स्थित पर्यायें उसके ऊर्ध्व विशेष हैं; जैसे बालक युवा वृद्ध एक ही व्यक्ति के ऊर्ध्व विशेष हैं।

६६. पर्याय के दोनों लक्षणों का समन्वय करो ?
द्रव्य के विशेष को पर्याय कहते हैं। गुण द्रव्य के सहभावी विशेष हैं। गुण के भी विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं, सो द्रव्य के क्रमभावी विशेष हैं। अतः दोनों लक्षण एक हैं, क्योंकि द्रव्य का विशेष कहो या कहो गुण का विकार एक ही बात है।

६७. क्रमभावी पर्याय कितने प्रकार की होती है ?
दो प्रकार की—परिणमन रूप व परिस्पन्दन रूप।

६८. परिणमन रूप पर्याय किसे कहते हैं ?

गुणों में होने वाले क्षणिक परिवर्तन को परिणमन कहते हैं, जैसे—रूप गुण में लाल पीला आदि ।

६९. परिस्पन्द रूप पर्याय किसे कहते हैं ?

द्रव्य के प्रदेशों का अपने स्थान से च्युत होकर कम्पन करना या हिलना डुलना परिस्पन्दन है ।

७०. परिणमन व परिस्पन्दन में क्या अन्तर है ?

परिणमन गुण में होता है और परिस्पन्दन द्रव्य के प्रदेशों में । परिणमन में हिलन डुलन क्रिया नहीं होती केवल गुण की शक्ति में हानि वृद्धि होती है; परिस्पन्दन में हिलन डुलन होती है हानि वृद्धि नहीं । परिणमन से गुणों में परिवर्तन होता है और परिस्पन्दन से द्रव्य के आकार में । (विशेष देखो आगे अधिकार नं० ४)

(५. धर्म)

७१. द्रव्य में कितने प्रकार की विशेषतायें पाई जाती हैं ?

छः प्रकार की— गुण, स्वभाव, शक्ति, पर्याय, व्यक्ति व धर्म ।

७२. गुण किसको कहते हैं ?

द्रव्य के विशेष में नित्य विकार या परिवर्तन होता रहे, अर्थात जिसमें सदा कोई न कोई पर्याय उत्पन्न व नष्ट होती रहे उसे गुण कहते हैं, जैसे जीव में ज्ञान ।

७३. स्वभाव किसे कहते हैं ?

(क) जिस विशेष में कोई पर्याय प्रगट न होती है, अर्थात जो सदा वैसा का वैसा जानने में आता है उसे स्व-भाव कहते हैं ; जैसे जीव में जीवत्व या चेतनत्व ।

(ख) 'त्व' प्रत्यय लगाने से प्रत्येक गुण उसका स्व-भाव बन जाता है । गुण की प्रत्येक पर्याय में गुणत्व वह का वह रहताहै ; जैसे खट्टे में भी वही रसत्व और मीठे में भी वही रसत्व ।

७४. शक्ति किसको कहते हैं ?

द्रव्य के वे विशेष शक्ति कहलाते हैं जिनकी अपनी कोई स्वतंत्र व्यक्ति या पर्याय नहीं होती, बल्कि अन्य गुणों की सामर्थ्य

के ही विशेष प्रकार से द्योतक हों ; जैसे ईंधन में दहन शक्ति अथवा वह विशेष जो निमित्तादि मिलने पर कदाचित व्यक्त हो तो हो अन्यथा यूं ही पड़ी रहे।

७५. पर्याय किसको कहते हैं ?

द्रव्य के उत्पन्न ध्वंसी अंश को पर्याय कहते हैं।

७६. व्यक्ति किसको कहते हैं ?

जो निरन्तर उत्पन्न होती रहे उसे पर्याय कहते हैं और जो कदाचित उत्पन्न हो उसे व्यक्ति ; जैसे ईन्धन में दहन।

७७. धर्म किसको कहते हैं ?

द्रव्य का जो विशेष न गुण हो, न स्वभाव, न शक्ति, न पर्याय और न व्यक्ति, परन्तु जो द्रव्य में अपेक्षावश देखे जा सकें, धर्म कहलाते हैं, जैसे—द्रव्य का नित्यत्व अनित्यत्व आदि। गुण की अपेक्षा देखने पर द्रव्य नित्य है और पर्याय की अपेक्षा देखने पर अनित्य।

७८. 'धर्म' शब्द की विशेषता दर्शाओ।

'धर्म' शब्द का प्रयोगक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, क्यों कि यह अपने उपरोक्त अर्थ के अतिरिक्त गुण, स्वभाव, पर्याय, शक्ति व व्यक्ति सबका प्रतिनिधित्व करता है। इसी लिये द्रव्य अनन्त धर्मात्मक कहा जाता है, अनंत गुणात्मक नहीं। गुण को धर्म कह सकते हैं पर धर्म को गुण नहीं। कहीं-कहीं स्वभाव, धर्म व शक्ति समान अर्थ में प्रयोग कर दिये जाते हैं।

७९. गुण, स्वभाव, शक्ति, पर्याय, व्यक्ति व धर्म में परस्पर अन्तर दर्शाओ।

गुण में पर्याय होती है और शक्ति में व्यक्ति। इसलिये गुण सदा ही अपनी पर्याय द्वारा व्यक्त रहता है, जैसे जीव में कोई न कोई ज्ञान अवश्य व्यक्त रहता है। शक्ति की व्यक्ति कभी होती है कभी नहीं, जैसे जीव कभी चलता है कभी नहीं। गुण में पर्याय होती है, पर स्वभाव व धर्म में नहीं। वे अपेक्षावश द्रव्य में देखे मात्र जाते हैं, जैसे ज्ञानत्व व नित्यत्व की कोई अपनी स्वतन्त्र पर्याय नहीं है। यद्यपि धर्म स्वभाव व शक्ति

कदाचित एकार्थ माने जाते हैं परन्तु विशेष देखने पर स्वभाव गुण की पर्यायों द्वारा परिचय में आता है जैसे ज्ञान का ज्ञानत्व, और धर्म केवल अपेक्षाकृत है जैसे द्रव्य में नित्यत्व । पर्याय सदा रहती है जैसे रस में खट्टी या मीठी कुछ न कुछ पर्याय अवश्य रहती है, परन्तु व्यक्ति कदाचित होती है और कद चित नहीं, जैसे जीव में गमन क्रिया की व्यक्ति कदाचित होती है कदाचित नहीं ।

८०. **पर्याय किसकी होती है और व्यक्ति किसकी** ?

पर्याय गुण की होती है और व्यक्ति शक्ति की ।

८१. **द्रव्य में गुण कितने प्रकार के होते हैं** ?

मुख्यता से दो प्रकार के—सामान्य गुण व विशेष गुण (इनका विस्तार आगे किया जायेगा । दे. अधिकार नं० ३)

८२ **द्रव्य में स्वभाव कितने हैं** ?

चार हैं—चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व ,अमूर्तत्व । इनके अतिरिक्त जड़ व चेतन पदार्थों के सर्व विशेष गुण उन उनके स्वभाव कहे जा सकते हैं, जैसे रसत्व, ज्ञानत्व आदि ।

८३. **द्रव्य में धर्म कितने हैं** ?

आठ हैं—अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, भेदत्व, अभेदत्व ।

८४. **आठों धर्मों के लक्षण करो ।**

(क) अपने द्रव्यादि स्व-चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य का सद्भाव उसका 'अस्तित्व' धर्म है और पर-चतुष्टय की अपेक्षा उसका अभाव 'नास्तित्व' धर्म ।

(ख) द्रव्य व गुण की अपेक्षा द्रव्य में 'नित्यत्व' है और पर्याय की अपेक्षा 'अनित्यत्व' क्योंकि द्रव्य व गुण त्रिकाल स्थायी हैं और पर्याय क्षणध्वंसी ।

(ग) अपनी सम्पूर्ण पर्यायों में अनुस्यूत रहने की अपेक्षा 'एकत्व' है और विभिन्न पर्यायों में अन्य-अन्य दिखने की अपेक्षा 'अनेकत्व' ।

(घ) अनेक गुणों के भावों की अपेक्षा द्रव्य में 'भेदत्व' है और उन सबकी अखण्डता की अपेक्षा 'अभेदत्व'।

८५. चारों स्वभावों के लक्षण करो।

(क) ज्ञान दर्शन स्वभाव 'चेतनत्व' है।

(ख) ज्ञान दर्शन का अभाव 'अचेतनत्व' है।

(ग) रूप रस गन्ध व स्पर्श के सद्‌भाव को 'मूर्तत्व' कहते हैं, क्योंकि इनके बिना इन्द्रिय ग्राह्यत्व नहीं बन सकता।

(घ) मूर्तत्व के अभाव को 'अमूर्तत्व' कहते हैं।

८६. सामान्य व विशेष गुण किस द्रव्य में रहते हैं ?

सामान्य गुण सभी द्रव्यों में रहते हैं और विशेष गुण अपनी-अपनी जाति के द्रव्यों में।

८७. चारों स्वभाव किस किस द्रव्य में रहते हैं ?

चेतनत्व जीव में रहता है और अचेतनत्व शेष पांच द्रव्यों में। मूर्तत्व पुद्‌गल में रहता है और अमूर्तत्व शेष पांच द्रव्यों में।

८८. आठों धर्म किस किस द्रव्य में रहते हैं ?

सभी द्रव्यों में सभी धर्म अपेक्षावश देखे जा सकते हैं।

(६. द्रव्य का विश्लेषण)

८९. द्रव्य का विश्लेषण कितनी अपेक्षाओं से किया जाता है ?

दो अपेक्षाओं से किया जाता है—कथन क्रम की अपेक्षा और वस्तु स्वभाव की अपेक्षा।

९०. कथन क्रम में कितने विभाग हैं ?

चार हैं—संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन।

९१. संज्ञा किसको कहते हैं ?

द्रव्य गुण आदि के सामान्य व विशेष नाम को 'संज्ञा' कहते हैं।

९२. संख्या किसे कहते हैं ?

द्रव्य में गुण व पर्याय कितनी-कितनी है, उसे 'संख्या' कहते हैं।

९३. लक्षण किसे कहते हैं ?

द्रव्य गुण पर्याय के प्रति किये गये लक्षण ही 'लक्षण' हैं।

६४. प्रयोजन किसे कहते हैं ?
किस द्रव्य या गुण व पर्याय से हमारा कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है, सो 'प्रयोजन' है।

६५. वस्तु स्वभाव के कितने विभाग हैं ?
चार हैं—स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र, स्व-काल व स्व-भाव।

६६. स्व-द्रव्य किसे कहते हैं ?
गुण पर्यायों के प्रदेशात्मक अधिष्ठान को उनका 'स्व-द्रव्य' कहते हैं।

६७. स्व-क्षेत्र किसे कहते हैं ?
द्रव्य के प्रदेशों को अथवा उसकी लम्बी चौड़ी आकृति को उसका 'स्व-क्षेत्र' कहते हैं।

६८. स्व-काल किसे कहते हैं ?
द्रव्य व गुण में उस उसकी अपनी पर्याय उस उसका 'स्वकाल' है। अथवा द्रव्य गुण व पर्याय की अवधि अर्थात निज-निज स्थिति को उस उसका 'स्व-काल' कहते हैं।

६९. स्व-भाव किसे कहते हैं ?
द्रव्य के गुण उसके 'स्व-भाव' हैं। अथवा द्रव्य गुण आदि का अपना-अपना स्वरूप उस उसका 'स्व-भाव' है।

१००. स्व—चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य में क्या प्रधान है और गुण व पर्याय में क्या ?

द्रव्य में क्षेत्र प्रधान है क्योंकि वह गुण व पर्यायों का अधिष्ठान है। गुण में भाव की प्रधानता है क्योंकि वे स्वभाव हैं। पर्याय में काल प्रधान है, क्योंकि वे आगे पीछे क्रम से उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं। तथा पर्यायों से ही काल जाना जाता है।

१०१. स्वचतुष्टय में सामान्य व विशेषपना दर्शाओ।
द्रव्य सामान्य है और क्षेत्र उसका विशेष, क्योंकि द्रव्य आकार-प्रधान है। भाव सामान्य है और काल उसका विशेष, क्योंकि गुण नित्य परिणमनशील है, आकार नित्य परिवर्तनशील नहीं है।

१०२. 'संज्ञा' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
भेद है, क्योंकि द्रव्य की संज्ञा 'द्रव्य' है और गुण की संज्ञा 'गुण'।

१०३. 'संख्या' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
भेद है, क्योंकि द्रव्य एक है और उसमें गुण अनेक हैं।

१०४. 'लक्षण' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
भेद है, क्योंकि द्रव्य का लक्षण है 'गुणों का समूह' और गुण का लक्षण है 'जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों व सर्व अवस्थाओं में रहे'।

१०५. 'प्रयोजन' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
भेद है, क्योंकि द्रव्य में सारे गुणों के कार्य एक दम सिद्ध हो जाते हैं, परन्तु किसी एक गुण से तो मात्र एक उसका ही कार्य सिद्ध होता है, जैसे आम से सर्व इन्द्रियों की तृप्ति होती है पर उसके रस से केवल जिह्वा की।

१०६. 'स्व-द्रव्य' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
अभेद है, क्योंकि जो प्रदेशात्मक आधार द्रव्य का है वही उसके गुण का है, जैसे जीव व ज्ञान का आधार एक ही है।

१०७. 'स्व-क्षेत्र, की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है कि अभेद ?
अभेद है, क्योंकि जो प्रदेश या क्षेत्र द्रव्य का है वही गुण का है, जैसे जीव व ज्ञान एक क्षेत्रावगाही हैं।

१०८. द्रव्य व गुण का क्षेत्र समान है यह कैसे जाना ?
'गुण द्रव्य के सर्व भागों में रहते हैं' गुण के इस लक्षण पर से।

१०९. 'स्व-काल' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
अभेद है, क्योंकि दोनों का काल त्रिकाल है, जैसे जीव व उस का ज्ञान त्रिकाल है।

११०. द्रव्य व गुण का काल समान है यह कैसे जाना ?
'गुण द्रव्य की सर्व अवस्थाओं में रहता है' गुण के इस लक्षण पर से।

१११. 'स्व—भाव' की अपेक्षा द्रव्य व गुण में भेद है या अभेद ?
यहाँ दो विकल्प हैं—१. अभेद है, क्योंकि द्रव्य का आंशिक स्व-भाव वही है जो कि उसके एक गुण का। २ भेद है, क्योंकि

द्रव्य का भाव सर्वगुणात्मक है और गुण का भाव एक गुणात्मक ।

११२. आठों अपेक्षाओं से द्रव्य व पर्याय में भेदाभेद दर्शाओ ।

(क) संज्ञा की अपेक्षा भेद है, क्योंकि दोनों को भिन्न नामों से व्यक्त किया जाता है । एक का नाम 'द्रव्य' है और दूसरे का 'पर्याय' ।

(ख) संख्या की अपेक्षा भेद है, क्योंकि द्रव्य एक है और उसमें रहने वाली पर्यायें अनेक । जितने गुण उतनी ही पर्यायें ।

(ग) लक्षण की अपेक्षा भेद है, क्योंकि द्रव्य का लक्षण है 'गुणों का समूह' और पर्याय का लक्षण 'गुण का विकार' ।

(घ) प्रयोजन की अपेक्षा भेद है, क्योंकि द्रव्य से त्रिकालगत अनेक कार्य की सिद्धि होती है, परन्तु पर्याय से केवल एक कार्य की, जैसे पुद्गल से लोहा सोना आदि सब की सिद्धि होती है पर सोने से केवल सोने की ।

(च) स्वद्रव्य की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि जो विवक्षित आधार द्रव्य का वही उसकी पर्याय का । जैसे जीव अपनी मतिज्ञान पर्याय का स्वयं आधार है ।

(छ) स्वक्षेत्र की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि गुणों की भांति वे भी द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में रहती हैं, इस लिये जो प्रदेश द्रव्य के हैं वही उसकी पर्याय के हैं । जैसे मतिज्ञान जीव में सर्वत्र रहता है ।

(ज) स्वकाल की अपेक्षा दो विकल्प हैं—१ पर्याय व्यक्ति के काल में दोनों का काल समान होने से अभेद है, २ स्थिति की अपेक्षा भेद है, क्योंकि द्रव्य त्रिकाल स्थायी है पर्याय क्षण स्थायी ।

(झ) स्वकाल की अपेक्षा दो विकल्प हैं—१. आंशिक रूप से अभेद है ; २ गैरपूर्ण रूप से भेद । जैसे कि द्रव्य व गुण की तुलना करते हुए कह दिया गया ।

११३. आठों अपेक्षाओं से गुण व पर्याय में भेदाभेद दर्शाओ ।

(क) संज्ञा की अपेक्षा भेद है, क्योंकि दोनों को भिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। एक का नाम 'गुण' है और दूसरे का 'पर्याय'।

(ख) संख्या की अपेक्षा दो विकल्प हैं—१. भेद है, क्योंकि गुण एक है और उसकी त्रिकाली पर्यायें अनेक। जैसे रस गुण एक है और उसकी खट्टी मीठी पर्याय अनेक। २. अभेद है, क्योंकि गुण भी एक है और वर्तमान समय में उसकी पर्याय भी एक है।

(ग) लक्षण की अपेक्षा भेद है, क्योंकि गुण का लक्षण है 'जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों व सर्व हालतों में रहे' और पर्याय का लक्षण है 'गुण का विकार'।

(घ) प्रयोजन की अपेक्षा भेद है, क्योंकि गुण से उसकी सर्व पर्यायों की कार्य सिद्धि होती है और पर्याय से केवल एक अपनी। जैसे रस से खट्टे मीठे आदि सभी स्वाद सिद्धि होते हैं। पर खट्टे से केवल खट्टा।

(च) 'स्व द्रव्य' की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि गुण व पर्याय दोनों का आधार वही एक विवक्षित द्रव्य है। आम का रस गुण व मीठी पर्याय दोनों ही का आधार वही एक आम है।

(छ) 'स्व क्षेत्र' की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि दोनों ही द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में रहते हैं। आम में रस भी सर्वत्र है और उसका मीठा स्वाद भी।

(ज) 'स्व काल' की अपेक्षा दो विकल्प हैं—१. अभेद है, क्योंकि वर्तमान समय में दोनों की सत्ता है। २. भेद है, क्योंकि गुण त्रिकाल है और उसकी पर्याय क्षण स्थायी। जैसे आम में रस सर्वदा रहता है पर मीठा-पना कुछ समय मात्र।

(झ) 'स्व-भाव' की अपेक्षा दो विकल्प हैं—१. अभेद है

क्योंकि वर्तमान अंश की ओर देखने पर दोनों का भाव एक है। २. भेद है क्योंकि गुण का भाव सर्व पर्यायात्मक है और पर्याय का केवल एक पर्यायात्मक।

११४. आठों अपेक्षाओं से भेदाभेद दर्शाने से क्या समझे ?

कथन क्रम की अपेक्षा तो द्रव्य गुण व पर्याय में भेद है पर वस्तु स्व-रूप की अपेक्षा तीनों में अभेद है। कहीं कहीं ही कथंचित भिन्नता है।

११५. द्रव्य गुण व पर्याय में कौन बड़ा है ?

स्वद्रव्य की अपेक्षा तीनों समान हैं; स्व-क्षेत्र की अपेक्षा तीनों समान हैं। स्व-काल की अपेक्षा द्रव्य व गुण त्रिकाल स्थायी होने से बड़े हैं, और पर्याय क्षण स्थायी होने से छोटी। इसी प्रकार स्व-भाव की अपेक्षा सर्व गुण पर्यायात्मक होने से द्रव्य सबसे बड़ा है, द्रव्य का अंश होने से गुण उससे छोटा है और गुण का भी अंश होने से पर्याय सबसे छोटी है।

११६ द्रव्य गुण पर्याय में से कौन पहिले है ?

त्रिकाल पर्याय माला को देखने पर तो कोई पहले पीछे नहीं। परन्तु एक विवक्षित पर्याय को देखने पर द्रव्य व गुण पहले हैं और वह विवक्षित पर्याय पीछे।

प्रश्नावली

(१–२ विश्व व द्रव्य)

१. निम्न के लक्षण करो:—

विश्व; द्रव्य; सत्; समूह; संयोग सम्बन्ध; संश्लेष सम्बन्ध; अयुतसिद्ध सम्बन्ध; तादात्म्य सम्वन्ध; गुण; पर्याय; अर्थ; पदार्थ; उत्पाद; व्यय; ध्रौव्य; द्रव्य के स्व पर चतुष्टय; स्वक्षेत्र; स्व द्रव्य; स्व-काल; स्व-भाव; पर-क्षेत्र; पर-काल; पर-भाव; महा सत्ता; अवान्तर सत्ता।

२. निम्न के भेद करो:—

सम्बन्ध, समूह, द्रव्य।

३. विशेषता व अन्तर दर्शाओ:—
पांच प्रकार का समूह, चार प्रकार का सम्बन्ध ।

४. द्रव्य गुण पर्याय में कौन सत् है, कौन असत् ।

५. पर्याय में सत् का लक्षण घटाओ ।

६. द्रव्य के समूह में कौन सा समूह इष्ट है, कारण सहित बतायें ।

७. द्रव्य का अनेक प्रकार से लक्षण करो, तथा उनमें समन्वय भी ।

८. द्रव्य को निम्न नाम क्यों दिये गये ?
सत्, द्रव्य, वस्तु, पदार्थ, अर्थ ।

९. उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनों का काल समान है या असमान । ठीक प्रकार समझाओ ।

१०. जो उत्पन्न होता है वही नष्ट हो जाये और वही टिका भी रहे, यह कैसे सम्भव है । उदाहरण देकर समझाओ ।

११. उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य एक ही बात का होता है या भिन्न भिन्न बातों का ?

१२. अपने अन्दर उत्पाद व्यय ध्रौव्य दर्शाओ ।

१३. घड़ा उत्पन्न हुआ, घड़े का व्यय हुआ और घड़ा ध्रुव रहा, क्या यह कहना ठीक है ? नहीं तो क्या ठीक है बताओ ।

१४. उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य में कौन प्रधान है ?

१५. क्या निश्चय से निम्न वाक्य ठीक हैं, यदि नहीं तो ठीक करो—
तुम नसीराबाद में रहते हो; शान्तिस्वरूप प्रतिदिन प्रातः छः बजे मन्दिर में आता है; संसारी जीव शरीरवान होता है; भगवान नेमिनाथ का रंग काला था ।

१६. द्रव्य में अंश-अंशी आदि द्वैत दर्शाओ ।

१७. द्रव्य गुण पर्याय में कौन सामान्य है और कौन विशेष ?

(३. गुण)

१. गुण किसको कहते हैं ?

२. गुण की व्याख्या में स्वचतुष्टय दर्शाओ ।

३. गुण की व्याख्या में से निम्न शब्द काट देने पर क्या दोष आता है ?

सर्व भागों में; सर्व अवस्थाओं में।

४. क्या निश्चय से निम्न वाक्य ठीक हैं; नहीं तो ठीक करो।
आम में मिठास गुण है; जीव का गुण हर्ष विशाद करना है भारत के मनुष्यों में काला रंग पाया जाता है और अंग्रेजों में गोरा।

५. निम्न दृष्टान्तों में गुण की व्याख्या ठीक-ठीक घटित करो—
आम एक ओर से खट्टा होता है और दूसरी ओर से मीठा, सो इसका गुण सर्व भागों में नहीं रहता। कच्चा आम खट्टा होता है और पक कर मीठा हो जाता है सो इसका गुण सर्व अवस्थाओं में नहीं रहता।

६. जीवित शरीर में चेतना या ज्ञान होता है, ऐसा कहने में क्या हानि ?

७. गुण सत् है या असत् कारण सहित बताओ।

८. गुण में सत् का लक्षण घटित करो।

९. द्रव्य गुण व पर्याय में कौन सामान्य है, कौन विशेष ? कारण सहित बताओ।

१०. गुण व पर्याय ये दोनों किस किस जाति के विशेष हैं, और द्रव्य किस प्रकार का सामान्य ?

(४. पर्याय)

१. लक्षण करो—
पर्याय, विशेष, कार्य, सहभावी विशेष, क्रमभावी विशेष, तिर्यक् विशेष, ऊर्ध्व विशेष, परिणमन, परिस्पन्दन।

२. पर्याय या विशेष कितने प्रकार के होते हैं ?

३. पर्याय का क्षेत्र काल व भाव बताओ।

४. परिणमन व परिस्पन्दन में क्या अन्तर है ?

५. गुण व पर्याय में समानता व असमानता दर्शाओ।

६. पर्याय के दोनों लक्षणों का ('गुण का विकार' व 'द्रव्य के विशेष') समन्वय करो।

७. यदि गुण के क्षेत्र से पर्याय का क्षेत्र छोटा हो तो क्या दोष है ?

८. ऐसा द्रव्य बताओ जिसमें गुण तो हो पर पर्याय न हो। हेतु देकर अपने उत्तर की पुष्टि करो।

(५. धर्म)

१. द्रव्य में कितने प्रकार की विशेषतायें पाई जाती हैं ?

२. लक्षण करो—

गुण, स्वभाव, शक्ति, पर्याय, धर्म, व्यक्ति, अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, भेदत्व, अभेदत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व।

३. अन्तर दर्शाओ—

गुण व धर्म; धर्म व स्वभाव; गुण व स्वभाव; गुण व शक्ति; धर्म व शक्ति; स्वभाव व शक्ति; पर्याय व व्यक्ति।

४. क्या धर्म को गुण कह सकते हैं, कारण सहित बताओ ?

५. छहों विशेषताओं का एक प्रतिनिधि शब्द क्या ?

६. आप अपने में छहों बातें दर्शाओ।

७. कौन व्यापक है—

गुण, स्वभाव व धर्म में; पर्याय व व्यक्ति में।

८. क्या द्रव्य को अनन्त गुणात्मक कह सकते हैं ? कारण सहित बताओ।

९. आगम में द्रव्य को अनन्त गुणात्मक न कहकर अनन्त धर्मात्मक क्यों कहा गया है ?

१०. द्रव्य में गुण, स्वभाव व धर्म कितने कितने व कौन कौन से हैं, उनके नाम व लक्षण बताओ।

११. गुण स्वभाव व धर्म का द्रव्य में अवस्थान बताओ, कि किस द्रव्य विशेष में कितने कितने व कौन कौन से रहते हैं ?

(६. द्रव्य का विश्लेषण)

१. द्रव्य का विश्लेषण कितनी अपेक्षाओं से किया जाता है ?

२. कथनक्रम व वस्तुस्वरूप में पृथक पृथक कितनी कितनी अपेक्षायें लागू होती हैं ?

३. लक्षण करो—

संज्ञा; संख्या; लक्षण; प्रयोजन; स्व-द्रव्य; स्व-क्षेत्र; स्व-काल; स्व-भाव।

४. किसमें कौन अपेक्षा प्रधान है, कारण सहित बताओ ?

द्रव्य, गुण, पर्याय, परिस्पन्दन, रूप पर्याय, परिणमनरूप पर्याय।

५. द्रव्यादि चतुष्टय को दो भागों में गर्भित करो तथा उसकी पुष्टि करो।

६. चतुष्टय में सामान्य व विशेष दर्शाओ।

७. आठों अपेक्षाओं से भेद अभेद दर्शाओ—

द्रव्य व गुण में, द्रव्य व पर्याय में, गुण व पर्याय में।

८. द्रव्य गुण व पर्याय में कौन बड़ा है ?

द्रव्य की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, काल की अपेक्षा, भाव की अपेक्षा।

९. द्रव्य गुण व पर्याय में से कौन पहिले व कौन पीछे ?

२/२ द्रव्याधिकार

(१. जीव द्रव्य)

१. जीव द्रव्य किसे कहते हैं ?

जिसमें चेतना गुण पाया जावे उसको जीव द्रव्य कहते हैं।

२. जीव का लक्षण अमूर्त करें तो क्या दोष है ?

अतिव्याप्ति दोष आता है, क्योंकि आकाश आदि अन्य अमूर्तीक द्रव्यों में भी वह लक्षण चला जाता है।

३. जीव का लक्षण रागी करें तो क्या दोष है ?

अव्याप्त दोष आता है, क्योंकि यह लक्षण संसारी जीवों में पाया जाता है, मुक्त में नहीं।

४. जीव का लक्षण शरीरी करें तो क्या दोष आता है ?

असम्भव दोष आता है, क्योंकि जीव चेतन है और शरीर अचेतन।

५. जीव के निश्चय से कितने भेद हैं ?

कोई भेद नहीं है। चेतन स्वभावी जीव निश्चय से एक ही प्रकार का है, जैसे तालाब, बावड़ी आदि का जल वास्तव में एक ही प्रकार का है।

६. जीव के आगम कथित भेद वास्तव में किसके हैं ?

शरीर के हैं जीव के नहीं; जिस प्रकार कि जल के भेद वास्तव में तालाब आदि आधारों के हैं जल के नहीं।

७. संसारी व मुक्त में निश्चय से क्या अन्तर है ?
कोई अन्तर नहीं क्योंकि दोनों चेतन स्वभावी हैं।

८. दो हाथ व दो पांव वाला मनुष्य जीव होता है ?
नहीं, वह शरीर है जीव नहीं, क्योंकि इन्द्रियगोचर है।

९. आपको जो कुछ दिखाई दे रहा है उसमें जीव कौन है ?
कोई नहीं, क्योंकि आंखों से दिखाई देने वाला सब पुद्गल द्रव्य है जीव नहीं।

१०. शान्तिलाल जीव है या अजीव ?
अजीव है, क्योंकि शरीर को लक्ष्य करके नाम रखने का व्यवहार है, जीव को लक्ष्य करके नहीं।

११. भगवान नेमिनाथ का रंग कैसा था ?
वर्ण भगवान के शरीर का था भगवान का नहीं, क्योंकि वह जीव थे। जीव अमूर्तीक होता है।

१२. आप दोनों में से क्षेत्र काल व भाव तीनों अपेक्षाओं से निश्चय में कौन बड़ा है ?
(क) क्षेत्र की अपेक्षा समान हैं, क्योंकि दोनों असंख्यात प्रदेशी हैं।
(ख) काल की अपेक्षा समान हैं, क्योंकि दोनों त्रिकाली हैं।
(ग) भाव की अपेक्षा समान हैं. क्योंकि दोनों चेतन स्वभावी हैं।

१३. व्यवहार से आप दोनों में कौन बड़ा व उत्तम है ?
(क) क्षेत्र की अपेक्षा शान्ति लाल बड़ा है, क्योंकि इसका क़द बड़ा है।
(ख) काल की अपेक्षा मैं बड़ा हूँ, क्योंकि मेरी आयु इससे अधिक है।
(ग) भाव की अपेक्षा दोनों समान हैं, क्योंकि दोनों सम्यग्दृष्टि व धर्मात्मा हैं, अथवा शान्तिलाल बड़ा है क्योंकि मुझ से अधिक सौम्य है।

१४. आप दोनों में अधिक गुणी कौन ?
निश्चय से दोनों समान, क्योंकि दोनों में उतने उतने ही गुण हैं। व्यवहार से शान्तिलाल अधिक गुणी है, क्योंकि मुझ से अधिक शास्त्रज्ञ है।

१५. निश्चय से पिता पहले होता है या पुत्र ?
कोई पहिले पीछे नहीं, क्योंकि दोनों ही त्रिकाली द्रव्य हैं।

१६. एक जीव कितना बड़ा होता है ?
एक जीव प्रदेशों की अपेक्षा लोकाकाश के बराबर (असंख्यात प्रदेशी) है, परन्तु संकोच विस्तार के कारण अपने शरीर के प्रमाण है। और मुक्त जीव अन्तिम शरीर के प्रमाण है।

१७. लोकाकाश के बराबर कौन सा जीव है ?
मोक्ष जाने से पूर्व समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर है।

१८. जीव छोटे बड़े शरीर में कैसे समाता है ?
उसमें सिकुड़ने व फैलने की विशेष शक्ति है।

१९. सुकड़ जाने से जीव में क्या कमी पड़ती है ?
कुछ नहीं, क्योंकि उसके प्रदेश उतने के उतने ही रहते हैं।

२०. फैल जाने से जीव में कुछ वृद्धि हो जाती होगी ?
नहीं, उसके प्रदेश उतने के उतने ही रहते हैं।

२१. आप कितने बड़े हैं ?
निश्चय से लोक प्रमाण और व्यवहार से शरीर प्रमाण।

२२. लोक प्रमाण जीव इतने छोटे से शरीर में कैसे आवे ?
सुकड़ने के कारण उसके प्रदेश एक दूसरे में समा जाते हैं।

२३. प्रदेश एक दूसरे में कैसे समा सकते हैं ?
अमूर्तीक व सूक्ष्म पदार्थों को एक दूसरे में समाने में कोई बाधा नहीं।

२४. एक स्थान में शरीरधारी जीव एक ही रहता है ?
नहीं, यद्यपि स्थूल शरीरधारी तो एक ही रह सकता है, पर सूक्ष्म शरीरधारी अनन्त रह सकते हैं।

२५. एक क्षेत्र में अनेक सिद्ध या शरीरधारी कैसे रहते हैं ?

सिद्ध अमूर्तीक होने के कारण और शरीरधारी सूक्ष्मशरीरी होने के कारण एक दूसरे में समाकर रहते हैं।

२६. क्या जीव का कोई आकार है ?

निश्चय से कोई आकार नहीं, व्यवहार से शरीर का आकार ही उसका आकार है, जैसे भाजन का आकार ही उसमें पड़े जल का आकार है। क्योंकि जीव शरीर में सर्वत्र व्याप कर रहता है।

२७. यदि आकार है तो जीव को मूर्तीक कहना चाहिये ?

नहीं, क्योंकि इन्द्रिय ग्राह्य को मूर्तीक कहा है, आकारवान को नहीं।

२८. क्या तुम्हारा चित्र या फोटो खेंचा जा सकता है ?

चित्र खेंचा जा सकता है पर फोटो नहीं, क्योंकि चित्र कल्पना से खेंचा जाता है और फोटो केमरे से। केमरे में मूर्तीक पदार्थ का ही प्रतिबिम्ब पड़ सकता है, अमूर्तीक का नहीं।

२९. व्यवहार से जीव कितने प्रकार का है ?

दो प्रकार का—एक संसारी दूसरा मुक्त।

३०. संसारी जीव कितने प्रकार का है ?

दो प्रकार का—एक त्रस दूसरा स्थावर।

३१. स्थावर जीव कितने प्रकार का है ?

पांच प्रकार का—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु व वनस्पति।

३२. त्रस जीव कितने प्रकार का है ?

पांच प्रकार का—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी-पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय।

३३. जीव कितनी काय के हैं ?

छः काय के हैं—पृथिवी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस।

३४. जीव व काय के भेदों में यह अन्तर क्यों ?

जीव के भेद उसके जानने की शक्ति व साधनों की अपेक्षा है, और काय के भेद शरीर जातियों की अपेक्षा।

३५. काय के भेदों में स्थावर के सर्व भेद गिना दिये पर त्रस का कोई भेद न गिनाया ?

हां, क्योंकि पांच स्थावरों के शरीर भिन्न-भिन्न जाति के हैं पर सभी त्रसों का शरीर एक मांस जाति का है ।

३६. जीव द्रव्य को 'जीव' व 'आत्मा' क्यों कहते हैं ?

प्राण धारण करने की अपेक्षा 'जीव' और अपने गुण पर्यायों को प्राप्त करने की अपेक्षा 'आत्मा' है ।

३७. क्या आत्मा के अवयव होते हैं ?

निश्चय से नहीं, व्यवहार से उसके गुण पर्याय तथा प्रदेश ही उसके अवयव हैं ।

३८. जीव कितने हैं ?

जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं ।

३९. जीव द्रव्य कहां हैं ?

समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं ।

४०. अनन्तानन्त जीव इस लोक में कैसे समायें ?

सूक्ष्म शरीरधारी जीव एक दूसरे में समाकर एक ही क्षेत्र में अनन्तों रह जाते हैं । स्थूल शरीरधारी एक दूसरे में नहीं समा सकते ।

४१. सिद्ध लोक में केवल मुक्त जीव ही रहते होंगे ?

नहीं, वहां अनन्तानन्त सूक्ष्म जीव भी रहते हैं, क्योंकि ये सर्वत्र लोक में ठसाठस भरे हुए हैं ।

(२. पुद्गल द्रव्य)

४२. पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं ?

जिसमें स्पर्श रस गन्ध व वर्ण पाया जाये ।

४३. पुद्गल शब्द का सार्थक्य समझाओ ।

'पुद' अर्थात पूर्ण होना और 'गल' अर्थात गलना । जो पूर्ण हो सके और गल सके, अर्थात मिलकर या बन्धकर स्कन्ध बन सके

और टूट कर परमाणु तक बन जाये। पूरण जलन स्वभावी होने के कारण 'पुद्गल' है।

४४. **पुद्गल का लक्षण मूर्तीक करें तो क्या हानि ?**
नहीं, क्योंकि प्राथमिक जन इतने मात्र से समझ नहीं सकते, अथवा मूर्तीक में आकार मात्र की भ्रान्ति हो जायेगी।

४५. **जिसकी कोई मूर्ती या आकार हो सो मूर्तीक, क्या ठीक है ?**
नहीं, क्योंकि मूर्ती आकार को कहते हैं और मूर्तीकपना इन्द्रिय-ग्राह्यता को। मूर्ती छहों द्रव्यों में है पर मूर्तीकपना केवल पुद्गल में।

४६. **जिसमें रूप पाया जाये सो रूपी क्या यह ठीक है ?**
केवल रूप नहीं बल्कि जिसमें रूप रस गन्ध व स्पर्श चारों पाये जायें सो रूपी।

४७. **जो नेत्र से दिखाई दे सो रूपी क्या यह ठीक है ?**
नेत्र ही से नहीं, बल्कि किसी भी इन्द्रिय के गम्य हो सो रूपी।

४८. **शब्द कर्ण इन्द्रिय गोचर है, क्या वह रूपी है ?**
हां, शास्त्रों में शब्द को रूपी माना गया है।

४९. **क्या तुमने कभी अपना फोटो खिचवाया है ?**
खिचवाया है पर अपना नहीं शरीर का।

५०. **आकारवान द्रव्य रूपी होता है ?**
नहीं, आकार तो अरूपी द्रव्यों में भी होता है।

५१. **विश्व में जो कुछ भी दृष्टि है वह वास्तव में क्या है ?**
सब पुद्गल है, क्योंकि इन्द्रियों द्वारा पुद्गल के अतिरिक्त कुछ भी ग्रहण नहीं हो सकता; अथवा सब किसी न किसी जीव के जीवित या मृत शरीर ही दृष्टिगत हो रहे हैं। 'जैसे—मेज व पुस्तक वनस्पति कायिक जीव के मृतक कलेवर हैं और यह डब्बा पृथिवी कायिक का।

५२. **पुद्गल द्रव्य के कितने भेद हैं ?**
दो भेद हैं—एक परमाणु दूसरा स्कन्ध।

५३. परमाणु किसको कहते हैं ?

सबसे छोटे पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

५४. स्कन्ध किसको कहते हैं ?

अनेक परमाणुओं के बन्ध को स्कन्ध कहते हैं।

५५. स्कन्ध में कितने परमाणु होते हैं ?

दो परमाणु का भी स्कन्ध होता है, तीन चार का भी। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात व अनन्त परमाणुओं तक के भी स्कन्ध होते हैं।

५६. स्कन्ध का क्या आकार होता है ?

छोटे, बड़े, लम्बे, मोटे, गोल, चौकोर आदि अनेक आकार होते हैं।

५७. जो इन्द्रिय द्वारा ग्रहण होता है वह परमाणु है या स्कन्ध ?

वह सब स्कन्ध है परमाणु नहीं।

५८. क्या परमाणु भी इन्द्रियों द्वारा देखा जा सकता है ?

नहीं।

५९. परमाणु दिखाई नहीं देता अतः वह अरूपी है ?

नहीं, क्योंकि उसके कार्यभूत स्कन्ध इन्द्रियों द्वारा देखे जा रहे हैं। स्कन्ध कार्य है और परमाणु उसका कारण। कारण के अनुसार ही कार्य होता है। जब कार्य रूपी है तो कारण (परमाणु) भी रूपी ही है।

६०. स्कन्ध कितने प्रकार के हैं ?

दो प्रकार के—एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म।

६१. स्थूल किसे कहते हैं ?

जो एक दूसरे में समा न सकें।

६२. स्थूल स्कन्ध में परमाणु कितने होते हैं ?

अनन्त ही होते हैं।

६३. सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

जो एक दूसरे में समा सके।

६४. सूक्ष्म स्कन्ध में कितने परमाणु होते हैं ?

दो, तीन अथवा संख्यात, असंख्यात व अनन्त तक होते हैं।

६५. स्थूलता व सूक्ष्मता की अपेक्षा स्कन्ध के भेद दर्शाओ।

छः भेद हैं—स्थूल स्थूल, स्थूल, स्थूल सूक्ष्म, सूक्ष्म स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्म सूक्ष्म।

६६. छहों स्कन्धों के उदाहरण देकर समझाओ।

सर्व ठोस पदार्थ स्थूल स्थूल हैं, तरल व वायवीय पदार्थ स्थूल हैं, नेत्रगम्य छाया प्रकाशादि स्थूल सूक्ष्म हैं, अन्य चार इन्द्रियों के विषय शब्द आदि सूक्ष्म स्थूल हैं, वर्गणा रूप स्कन्ध सूक्ष्म हैं, वर्गणा से आगे दो परमाणुपर्यन्त के स्कन्ध सूक्ष्म सूक्ष्म हैं।

६७. छहों स्कन्धों में स्थूलता व सूक्ष्मता के लक्षण घटित करो।

(क) पृथिवी पत्थर आदि ठोस पदार्थ अत्यन्त स्थूल हैं क्योंकि किसी भी वस्तु में से पार नहीं हो सकते, इसी से स्थूल स्थूल कहे गये।

(ख) तरल व वायवीय पदार्थ छिद्रों में से पार हो जाते हैं पर पदार्थों में से नहीं, इसलिये पहले की अपेक्षा कुछ कम स्थूल होने से केवल स्थूल कहे गए।

(ग) नेत्र के विषयभूत प्रकाश आदि छिद्रों के अतिरिक्त वस्त्र झीने कागज व पारदर्शी शीशे आदि ठोस पदार्थों में से पार कर जाने की अपेक्षा यद्यपि कुछ सूक्ष्म हैं, पर अन्य पदार्थों में से पार न होने से स्थूल ही हैं। इसी से स्थूल सूक्ष्म कहे गये।

(घ) अन्य विषय शब्द आदि कुछ अधिक स्थूल पदार्थों में से भी पार हो जाने के कारण सूक्ष्म हैं और पूर्ण रीतयः पार नहीं हो सकते इस लिये कुछ स्थूल भी हैं; इसी से सूक्ष्म स्थूल कहे गये।

(च) वर्गणायें प्रत्येक सूक्ष्म व स्थूल पदार्थ में से पार हो जाने के कारण सूक्ष्म हैं।

(छ) वर्गणाओं से भी छोटे तथा अव्यवहार्य स्कन्ध तो उनसे

भी सूक्ष्म होने के कारण सूक्ष्म सूक्ष्म कहे गए हैं।

६८. **बन्ध किसको कहते हैं ?**
अनेक चीजों में एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध विशेष को बन्ध कहते हैं।

६९ **बन्ध कितने प्रकार का है ?**
तीन प्रकार का—जीव बन्ध, अजीव बन्ध व उभय बन्ध ।

७० **जीव बन्ध किसे कहते हैं ?**
जीव में जो रागद्वेष होते हैं वे जीव बन्ध हैं। इसे भाव बन्ध भी कहते हैं।

७१. **अजीव बन्ध किसे कहते हैं ?**
परमाणु का परमाणु के साथ तथा अन्य पुद्गल स्कन्ध के साथ संश्लेष रूप से बन्धना अजीव बन्ध है । इसे द्रव्य बन्ध भी कहते हैं।

७२. **उभय बन्ध किसे कहते हैं ?**
जीव प्रदेशों का पुद्गल कर्म वर्गणाओं के साथ अथवा शरीर के साथ बन्ध होना उभयबन्ध है। प्रदेश बन्ध होने के कारण इसे भी द्रव्य बन्ध कहते हैं।

७३. **संश्लेष रूप से बन्धने का क्या अर्थ ?**
दूध पानीवत् एकमेक हो जाना संश्लेष बन्ध है।

७४. **बन्ध किस कारण से होता है ?**
स्निग्धता व रूक्षता के कारण से । पुद्गल में स्निग्धता व रूक्षता नाम वाले स्पर्श जनित गुण होते हैं और जीव में इनके स्थान पर क्रमशः राग व द्वेष होते हैं। राग स्निग्ध है और द्वेष रूक्ष ।

७५. **कौन से बन्ध से स्कन्ध बनता है ?**
अजीव बन्ध से ।

७६. **स्कन्ध बन जाने पर भी क्या परमाणु पृथक २ रहते हैं ?**
बन्ध की अपेक्षा वे सब घुल मिल एक हो जाते हैं, जैसे ताम्बा

व सोना मिलकर एक हो जाते हैं; परन्तु सत्ता की अपेक्षा अब भी वे पृथक-पृथक, क्योंकि पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता का कभी नाश नहीं होता।

७७. क्या स्कन्ध में रहने वाले परमाणु को शुद्ध कह सकते हैं ?

नहीं, वह अशुद्ध कहा जाता है, क्योंकि अन्य के साथ मिले हुए सर्व पदार्थ अशुद्ध कहलाते हैं। खोटे सोने में स्वर्ण भी अशुद्ध है और ताम्बा भी।

७८. स्कन्ध बनाने में जीव का भी कुछ हाथ है क्या ?

जितने भी स्थूल स्कन्ध दृष्ट हैं, वे सभी किसी न किसी जीव के जीवित या मृत शरीर हैं, जैसे—यह वस्त्र वनस्पति कायिक का मृत शरीर है और यह मकान पृथ्वी कायिक का। यद्यपि वर्गणा रूप सूक्ष्म स्कन्ध स्वभाव से ही बन जाते हैं, पर स्थूल स्कन्ध जीव का शरीर बने बिना उत्पन्न होता नहीं देखा जाता। अत: जीव ही स्थूल स्कन्धों का मूल निर्माता है।

७९. शरीर कितने प्रकार के हैं ?

पांच प्रकार के—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण।

८०. वर्गणा किसे कहते हैं ?

स्थूल शरीरों के या स्कन्धों के मूल कारणभूत जो सूक्ष्म स्कन्ध (Elements) होते हैं, उन्हें वर्गणा कहते हैं।

(८१) वर्गणारूप स्कन्धों के कितने भेद हैं ?

आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनो वर्गणा व कार्माण वर्गणा आदि २२ भेद हैं (ये पांच प्रधान हैं)।

(८२) आहार वर्गणा किसको कहते हैं ?

औदारिक, वैक्रियक व आहारक इन तीन शरीर रूप जो परिणमै उसे आहारक वर्गणा कहते हैं।

(८३) औदारिक शरीर किसको कहते हैं ?

मनुष्य, तिर्यञ्च के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

(८४) वैक्रियक शरीर किसको कहते हैं ?

जो छोटे बड़े एक अनेक आदि नाना क्रिया को करें ऐसे देव व नारकियों के शरीर को वैक्रियक शरीर कहते हैं।

(८५) आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

छटे गुणस्थानवर्ती मुनि के तत्वों में कोई शंका होने पर केवली व श्रुतकेवली के निकट जाने के लिये, मस्तक में से एक हाथ का (धवल) पुतला निकलता है। उसे आहारक शरीर कहते हैं।

(८६) क्या आहारक शरीर दिखाई देता है ?

नहीं, सूक्ष्म होने से वह इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होता।

(८७) तैजस वर्गणा किसे कहते हैं ?

औदारिक व वैक्रियक शरीरों को कान्ति देने वाला तैजस शरीर है। वह जिस वर्गणा से बने सो तैजस वर्गणा है।

८८. दृष्ट पदार्थों में तैजस शरीर कौनसा है ?

सूक्ष्म होने से वह दृष्ट नहीं है। वह औदारिक व वैक्रियक शरीरों के भीतर घुल मिलकर रहता है।

(८९) भाषा वर्गणा किसे कहते हैं ?

जो शब्द रूप परिणमै उसे भाषा वर्गणा कहते हैं।

९०. मनो वर्गणा किसे कहते हैं ?

शरीर के भीतर आठ पांखुड़ी वाले कमल के आकारवाला जो सूक्ष्म मन होता है उस रूप जो परिणमै उसे मनो वर्गणा कहते हैं।

(९१) कार्माण वर्गणा किसे कहते हैं ?

जो कार्माण शरीर रूप परिणमै उसे कार्माण वर्गणा कहते हैं।

(९२) कार्माण शरीर किसे कहते हैं ?

ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के समूह (पिण्ड) को कार्माण शरीर कहते हैं।

(६३) **तैजस व कार्माण शरीर किसके होते हैं ?**
चारों गति के सब संसारी जीवों के तैजस और कार्माण शरीर होते हैं।

६४. **आत्मा के निश्चय से कौनसा शरीर होता है ?**
आत्मा को कोई शरीर नहीं होता अथवा ज्ञान ही उसका शरीर है।

६५. **तुम्हारा शरीर किस जाति का है ?**
औदारिक।

६६. **जितने भी दृष्ट पदार्थ हैं वे कौन से शरीर हैं ?**
ये सब षट्कायिक जीवों के औदारिक शरीर हैं या थे।

६७. **क्या तुम्हारे इसके अतिरिक्त शरीर भी हैं ?**
हां, कार्माण व तैजस ये दो शरीर सभी संसारी जीवों को सामान्य रूप से होते हैं, वे मेरे भी हैं।

६८ **तैजस व कार्माण शरीर कहां रहते हैं तथा दिखाई क्यों नहीं देते ?**
वे इस बाह्य औदारिक व वैक्रियक शरीर के भीतर उनके साथ ओत प्रोत होकर रहते हैं। सूक्ष्म होने से दिखाई नहीं देते।

६९. **लोक में जो कुछ भी दृष्ट है वह सब क्या है ?**
किसी न किसी जीव के जीवित या मृत शरीर ही दृष्ट हैं, अन्य कुछ नहीं। जैसे—यह मकान पृथिवीकायिक जीव का मृत शरीर है और यह शान्ति लाल का जीवित शरीर। यह जूता त्रस जीव का मृत शरीर है और यह वस्त्र वनस्पति कायिक का।

१००. **पांचों इन्द्रियों के विषय कौन कौन वर्गणायें हैं ?**
स्पर्श रसना घ्राण व नेत्र इन चार इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी ग्रहण होता है वह सब आहारक वर्गणा है, क्योंकि वह सब स्थूल जीवित या मृत औदारिक शरीर है। कर्ण इन्द्रिय द्वारा भाषा वर्गणा का ग्रहण होता है। मनो वर्गणा, तैजस वर्गणा और कार्माण वर्गणा ये तीनों तथा उनके द्वारा निर्मित मन और तैजस कार्माण शरीर सूक्ष्म होने के कारण किसी

भी इन्द्रिय से ग्रहण होने शक्य नहीं ।

१०१. **निम्न वस्तुयें क्या हैं ?**

पुस्तक, चौकी, स्तम्भ, जूता, वायु, घड़ी, मोटरकार, वस्त्र ।

१०२. **पांचभूत कौन से हैं ?**

पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश । आकाश भौतिक नहीं है इसलिये कोई कोई चार ही भूत कहता है ।

१०३. **पृथिवीभूत से क्या तात्पर्य ?**

सभी ठोस पदार्थ अर्थात स्थूल स्थूल स्कन्ध पृथिवी कहे जाते हैं; जैसे मिट्टी, पत्थर, लोहा, सोना, रत्न आदि ।

१०४. **अप्भूत से क्या समझे ?**

सभी तरल पदार्थ अर्थात् स्थूल स्कन्ध अप् कहे जाते हैं; जैसे जल, तेल, घी, दूध आदि ।

१०५. **तेजभूत से क्या समझे ?**

ऊष्णता व कान्तिरूप से जो कुछ प्रतीत होता है वह सब तेज या अग्निभूत है; जैसे अग्नि, सोने की कान्ति आदि ।

१०६. **वायुभूत से क्या समझे ?**

वायुवत् प्रतीति में आने वाले सब पदार्थ वायुभूत के अन्तर्गत हैं; जैसे—सभी प्रकार की वायु, गैस, वाष्प, धूम आदि ।

१०७. **क्या ये दृष्ट ठोस व तरल आदि पदार्थ ही पंचभूत हैं ?**

यद्यपि समझाने के लिये ऐसा ही बताया जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं । ये सभी उपरोक्त पदार्थ तो पांचों भूतों के सम्मेल व संघात से उत्पन्न स्थूल स्कन्ध हैं । 'भूत' तो सूक्ष्म हैं; जिन्हें आहारक वर्गणा के ही उत्तर भेद रूप से ग्रहण किया जा सकता है । दृष्ट पृथिवी में भी वे पांचों हीनाधिक रूप से देखे जा सकते हैं और दृष्ट जल व वायु आदि में । जिस 'भूत' का अंश अधिक होता है, वह भूत वैसे ही लक्षण वाला कहा जाता है ।

१०८. तुम्हारे शरीर में कितने भूत हैं दर्शाओ ?
पांचों भूतों से मिलकर शरीर बना है। चमड़ा हड्डी व मांस ठोस होने से पृथिवी हैं; रक्त मूत्र पसेव जल हैं; भीतर संचार करने वाली वायु है, उदराग्नि जठराग्नि व कान्ति तेज है और शरीर की भीतरी पोलाहट आकाश है। यह सब स्थूल रूप से बताया गया है, वास्तव में हड्डी आदि ये सभी पदार्थ पृथक पृथक पंच भौतिक हैं।

१०९. पुद्गल के भेदों में वास्तविक द्रव्य क्या है ?
परमाणु

११०. पुद्गल द्रव्य कितने हैं ?
अनन्तानन्त हैं।

१११. पुद्गल स्कन्ध कितने हैं ?
सूक्ष्म स्कन्ध अनन्त हैं और स्थूल स्कन्ध असंख्यात।

११२. पुद्गल द्रव्य की स्थिति कहां है ?
समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

११३. अनन्तानन्त द्रव्य छोटे से लोक में कैसे समावें ?
सूक्ष्म होने के कारण एक दूसरे में समाकर रह जाते हैं; स्थूल होकर नहीं रह सकते।

११४. क्या पुद्गल द्रव्य सिद्ध लोक में हैं ?
हां, सूक्ष्म स्कन्घ व परमाणु वहां भी हैं।

(३. धर्म द्रव्य)

(११५) धर्म द्रव्य किसको कहते हैं ?
गति रूप परिणमे जीव और पुद्गल को जो गमन में सहकारी हो, उसे धर्म द्रव्य कहते हैं, जैसे—मछली को जल।

११६. धर्म द्रव्य के लक्षण में से 'गति रूप परिणमे' ये शब्द निकाल दें तो क्या दोष आये ?
धर्म द्रव्य सहकारी न रहकर प्रेरक बन जाये अर्थात् जबरदस्ती गमन कराने लगे।

११७. धर्म द्रव्य के लक्षण में से 'जीव व पुद्गल' ये शब्द निकाल दें

तो क्या दोष आये ?

लक्षण अति व्याप्त हो जाये अर्थात जीव व पुद्गल के अतिरिक्त अन्य चारों द्रव्यों को भी सहकारी बन बैठे ।

११८. **धर्म द्रव्य किस किस द्रव्य को सहाई है और क्यों ?**

केवल जीव व पुद्गल को, क्योंकि वे दोनों ही गमन करने का समर्थ हैं ।

११९. **गतिरूप परिणमन कितने प्रकार का होता है ?**

दो प्रकार का—परिस्पन्दन व क्रिया ।

१२०. **परिस्पन्दन किसे कहते हैं ?**

द्रव्य अपने स्थान से न डिगे पर उसके प्रदेश अन्दर ही अन्दर काम्पते रहें, उसे परिस्पन्दन कहते हैं ।

१२१. **क्रिया किसे कहते हैं ?**

द्रव्य अपना स्थान छोड़कर स्थानान्तर को प्राप्त हो जाये तो उसे क्रिया कहते हैं ।

१२२. **द्रव्य के आकार निर्माण में धर्म द्रव्य का क्या स्थान है ?**

जीव व पुद्गल के प्रदेशों का फैलना इसी के निमित्त से होता है ।

१२३. **धर्म द्रव्य कहां रहता है ?**

लोकाकाश में सर्वत्र व्यापकर ।

(१२४) **धर्म द्रव्य खण्ड रूप है किंवा अखण्ड रूप और इसकी स्थिति कहां है ?**

धर्म द्रव्य एक अखण्ड द्रव्य है । यह समस्त लोक में रहता है ।

१२५. **धर्म द्रव्य को लोक व्यापक क्यों माना ?**

जीव व पुद्गल की एक समय की गति आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर्यन्त भी हो सकती है और उत्कृष्टतः सर्व लोक में भी ।

१२६. **सिद्ध भगवान लोक के ऊपर क्यों नहीं जाते ?**

क्योंकि वहां धर्म द्रव्य नहीं है ।

१२७. **क्या सिद्ध भगवान में लोक के ऊपर जाने की शक्ति नहीं है ?**

उनमें तो गमन की शक्ति है पर सहकारी कारण के बिना गमन सम्भव नहीं, जैसे जल बिना मछली ।

१२८. धर्म द्रव्य की सिद्धि कैसे होती है ?

यह न होता तो जीव व पुद्गल को लोकाकाश के बाहर चला जाने से कौन रोकता, और तब लोक व अलोक का विभाग भी कैसे हो सकता ।

१२९. धर्म द्रव्य के उदासीन सहकारीपने को उदाहरण से समझाओ ।

जैसे जल मछली को बलपूर्वक नहीं चलाता बल्कि जल में वह स्वयं चाहे तो चले, वैसे ही धर्म द्रव्य जीव को बलपूर्वक नहीं चलाता बल्कि उसमें रहता हुआ स्वयं चाहे तो चले । जिस प्रकार जल के अभाव में मछली यदि चाहे तो भी चल नहीं सकती, उसी प्रकार धर्म द्रव्य के अभाव जीव यदि चाहे तो भी चल नहीं सकता ।

(४. अधर्म द्रव्य)

१३०. अधर्म द्रव्य किसको कहते हैं ?

गति पूर्वक स्थितिरूप परिणमै जीव और पुद्गल की स्थिति में सहकारी हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं ।

१३१. अधर्म द्रव्य के लक्षण में से 'गति पूर्वक स्थिति' ये शब्द निकाल दें तो क्या दोष ?

जीव पुद्गल के अतिरिक्त शेष चार द्रव्य नित्य स्थित हैं । उनकी स्थिति में भी कारण बन बैठे और इस प्रकार अति व्याप्ति आ जाये ।

१३२. अधर्म द्रव्य के लक्षण में से 'जीव पुद्गल' ये शब्द निकाल दें तो क्या दोष ?

तब भी लक्षण अतिव्याप्त हो जाये, क्योंकि उनके अतिरिक्त शेष चार द्रव्यों में भी उसका व्यापार होने का प्रसंग आये ।

१३३. अधर्म द्रव्य किस किस द्रव्य को सहाई है और क्यों ?

केवल जीव व पुद्गल को, क्योंकि वे दोनों ही गमन करने में

समर्थ हैं।

१३४. अन्य द्रव्यों की स्थिति में सहाई मानें तो?

नहीं, क्योंकि वे त्रिकाल स्थित हैं, गमन पूर्वक स्थिति नहीं करते। जो नया उत्पन्न हो उसे कार्य कहते हैं। नई स्थिति उत्पन्न न होने से वह उनका कार्य नहीं स्वभाव है और स्वभाव में किसी की सहायता नहीं हुआ करती।

१३५. द्रव्य के आकार निर्माण में अधर्म द्रव्य का क्या स्थान है?

द्रव्य के प्रदेशों का मुड़ना उसके निमित्त से होता है, क्योंकि गमनशील प्रदेश बिना रुके मुड़ नहीं सकते, और उनके मुड़े बिना तिकोन चौकोर आदि आकार नहीं बन सकते।

१३६. अधर्म द्रव्य और किस किस प्रकार सहाई होता है?

चलते हुए जीव व पुद्गल को मुड़ने में सहाई होता है, क्योंकि बिना रुके मुड़ना हो नहीं सकता।

१३७. अधर्म का अर्थ पाप करें तो?

अन्यत्र इसका पाप अर्थ में भी प्रयोग किया गया है, पर यहां द्रव्य अधिकार में यह एक विशेष जाति के द्रव्य का नाम है।

१३८. अधर्म द्रव्य कितना बड़ा है और उसका आकार क्या है?

लोकाकाश जितना ही बड़ा है और उसी आकार का है।

(१३९) अधर्म द्रव्य खण्ड रूप है किंवा अखण्ड रूप और उसकी स्थिति कहां है?

अधर्म द्रव्य एक अखण्ड द्रव्य है और समस्त लोकाकाश में व्याप्त है।

१४०. अधर्म द्रव्य को लोक व्यापक क्यों माना गया है?

चलते चलते जीव व पुद्गल लोक के किसी भी प्रदेश पर ठहर सकते हैं।

१४१. धर्म व अधर्म द्रव्यों में कौन छोटा है?

दोनों लोकाकाश प्रमाण हैं। कोई छोटा बड़ा नहीं।

१४२. अधर्म द्रव्य की सिद्धि कैसे होती है?

यदि यह न होता तो गतिमान जीव व पुद्गल सदा सीधे गमन ही किया करते, कभी न ठहर पाते और न मुड़ सकते।

१४३. **धर्म द्रव्य जीव पुद्गल को चलाता है और अधर्म ठहराता है। यदि दोनों में झगड़ा हो जाये तो क्या जीव बीच में ही पिस जायेगा** ?

नहीं, क्योंकि ये दोनों बल पूर्वक जीव पुद्गल को चलाते या ठहराते नहीं हैं। वह स्वयं चलें या ठहरें वे तो सहाई मात्र होते हैं।

१४४. **अधर्म द्रव्य के उदासीन सहकारीपने को उदाहरण से समझाओ।**

जैसे वृक्ष की छाया पथिक को बल पूर्वक नहीं रोकती, बल्कि पथिक उसे देखकर स्वयं ही यदि चाहे तो रुक जाता है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव पुद्गल को बलपूर्वक नहीं रोकता, बल्कि उसके निमित्त से स्वयं चाहें तो रुक जाते हैं। यदि छाया न हो तो इच्छा होने पर भी पथिक न रुके, इसी प्रकार यदि अधर्म द्रव्य न हो तो जीव पुद्गल कभी भी रुक न सकें।

१४५. **क्या सिद्ध भगवान को भी अधर्म द्रव्य सहकारी हैं** ?

केवल उस समय सहकारी हुआ था जब कि वे ऊर्ध्व लोक में जा कर पहिले पहल ठहरे थे। उसके पीछे न वे कभी चलते हैं और न चलते चलते ठहरते हैं। अतः अन्य चार द्रव्यों वत् अब उन को भी अधर्म निमित्त नहीं है।

१४६. **अधर्म द्रव्य स्वयं ठहरा हुआ है, क्या वह स्वयं को भी निमित्त है** ?

नहीं, क्योंकि वह गतिपूर्वक स्थित नहीं है।

(५. आकाश द्रव्य)

(१४७) **आकाश द्रव्य किसे कहते हैं** ?

जो जीवादि पांच द्रव्यों को रहने के लिए जगह दे।

१४८. **अवकाश या जगह देने से क्या समझे** ?

कोई भी द्रव्य इस महान आकाश (space) में जहां व जिस प्रकार से चाहें रह सकते हैं, यही अवकाश या जगह देना है।

१४९. आकाश द्रव्य किस किस रूप में सहाई है ?
द्रव्यों को परस्पर मिलकर अर्थात एक दूसरे समाकर रहने में तथा जीव पुद्गल द्रव्यों के प्रदेशों को सुकड़कर एक दूसरे में समाने में सहाई होता है ।

१५०. द्रव्य के आकार निर्माण में आकाश द्रव्य का क्या स्थान है ?
प्रदेशों का सिकुड़ना आकाश द्रव्य के निमित्त से होता है, क्योंकि एक दूसरे में अवकाश पाये बिना वह सम्भव नहीं ।

१५१. आकाश का रंग कैसा है ?
अमूर्तीक होने के कारण इसका कोई रंग नहीं ।

१५२. यह नीला नीला क्या दीखता है ?
यह आकाश नहीं है, बल्कि उसमें स्थित पुद्गल कणों पर पड़े हुए सूर्य प्रकाश का प्रतिबिम्ब है ।

१५३. आकाश ऊपर और पृथिवी नीचे क्या यह ठीक है ?
नहीं, आकाश में ऊपर नीचे की कल्पना सम्भव नहीं, क्योंकि वह सर्वव्यापक है ।

१५४. यह पृथिवी किस चीज पर टिकी हुई है, क्या किसी स्तम्भ पर या शेष नाग के सर पर ?
आकाश में टिकी है । स्तम्भ या शेषनाग के सहारे की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आकाश में स्वयं अवकाशदान शक्ति है ।

१५५. सूर्य चन्द्र आदि अधर में कैसे लटक रहे हैं ?
सूर्य चन्द्र ही नहीं पृथिवी भी इसी प्रकार अधर में लटक रही है । चन्द्र में बैठकर देखें तो ऐसी ही दिखाई दे । यह सब आकाश की अवकाशदान शक्ति का माहात्म्य है ।

(१५६) आकाश कहां पर है ?
आकाश सर्वव्यापी है ।

१५७. पृथिवी के चारों ओर आकाश है पर उसके भीतर नहीं ?
नहीं पृथिवी के भीतर भी आकाश है, क्योंकि वह अमूर्तीक व सूक्ष्म है ।

१५८. क्या हमारे शरीर में भी आकाश है ?

हां, इसमें जो पोलाहट है अथवा रोम कूप हैं, वह सब आकाश है, तथा मांस पेशियों व हड्डियों में भी वह अवश्य स्थित है।

(१५६) आकाश के कितने भेद हैं ?

निश्चय से आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है। व्यवहार से इसके दो भेद हैं—लोकाकाश व अलोकाकाश।

(१६०) लोकाकाश किसे कहते हैं ?

जहां तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म व काल ये पाँचों द्रव्य हैं (दिखाई दें) उसको लोकाकाश कहते हैं।

(१६१) अलोकाकाश किसे कहते हैं ?

लोक से बाहर के सर्व अवशेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

१६२. लोकाकाश का आकार कैसा ?

पुरुषाकार है, अर्थात यदि पुरुष अपने दोनों हाथों को अपने दोनों कुल्हों पर रखकर पांव फैलाकर खड़ा हो जाये तो वैसा ही लोक का आकार है।

(१६३) लोक की मोटाई, लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई कितनी है ?

लोक की मोटाई उत्तर दक्षिण दिशा में सब जगह सात राजू है। चौड़ाई पूर्व व पश्चिम दिशा में मूल में (नीचे जड़ में पांव के स्थान पर) सात राजू है। ऊपर क्रम से घटकर सात राजू की ऊंचाई पर (कुल्हों के स्थान पर मध्य में) एक राजू है। फिर क्रम से बढ़कर १०॥ राजू की ऊंचाई पर (कुहनियों के स्थान पर) पांच राजू है। फिर क्रम से घट कर चौदह राजू की ऊंचाई पर (सर के स्थान पर) एक राजू चौड़ाई है। ऊर्ध्व व अधो दिशा में (सर से पांव तक) ऊंचाई चौदह राजू है।

(१६४) धर्म तथा अधर्म द्रव्य खण्ड रूप है किंवा अखण्ड रूप, और इनकी स्थिति कहां है ?

धर्म व अधर्म द्रव्य दोनों एक एक अखण्ड द्रव्य हैं और दोनों

ही समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं।

१६५. लोक और अलोक के बीच कौन सी दीवार खड़ी है ?

लोक और अलोक वास्तव में किसी दीवार से विभाजित नहीं हैं बल्कि एक ही अखण्ड द्रव्य है। उसके जितने भाग में जीवादि पांच द्रव्य रहते हैं तथा गमनागमन करते हैं उसे लोक कहा गया है तथा जहां वे आ जा नहीं सकते उसे अलोक कहते हैं।

१६६. लोक व अलोक ये आकाश के दो खण्ड हैं ?

नहीं, आकाश तो एक अखण्ड द्रव्य है। लोक उसी में एक भाग या सीमा विशेष है, जिसमें कि जीवादि रहते हैं। शेष भाग को अलोक कहते हैं।

१६७. लोक व अलोक का विभाग करने वाला कौन व कैसे ?

धर्म व अधर्म द्रव्य के कारण ही लोक अलोक का विभाग है, क्योंकि आकाश के जितने भाग में ये दोनों द्रव्य हैं, उतने भाग में ही जीव व पुद्गल गमनागमन कर सकते हैं, उससे बाहर नहीं। अतः उतने भाग में ही धर्म अधर्म स्वयं तथा जीव व पुद्गल दिखाई देते हैं। काल द्रव्य भी उतने भाग में ही हैं उससे बाहर नहीं। अतः उतने भाग में ही पांचों द्रव्य दिखाई देने से वह लोकाकाश नाम पाता है।

१६८. यदि धर्म आदि द्रव्यों की स्थिति लोक के बाहर भी मान लें तो ?

धर्म द्रव्य की सीमा को उल्लंघन न कर सकने से जितना बड़ा भी धर्म द्रव्य मानोगे उतना ही लोकाकाश होगा। अधर्म द्रव्य भी उतना ही बड़ा होगा क्योंकि उसके बाहर गमन पूर्वक स्थिति करने वाला कोई है ही नहीं। काल भी उतनी ही सीमा में रहेगा, क्योंकि उसके बाहर परिणमन करने वाला कोई भी न होने से वहां उसकी आवश्यकता ही नहीं है।

(१६९) प्रवेश किसको कहते हैं ?

आकाश के जितने हिस्से को एक पुद्गल परमाणु रोके उसे

प्रदेश कहते हैं।

१७०. **प्रदेश आकाश में ही होते हैं या अन्य द्रव्यों में भी ?**
आकाशवत् ही अन्य द्रव्यों में भी जानना, क्योंकि वे भी आकाश को अवगाह करके रहते हैं।

१७१. **क्या प्रदेश परमाणुवत् पृथक पृथक होते हैं ?**
नहीं, प्रदेश नाम का कोई पृथक पदार्थ नहीं होता, बल्कि द्रव्यों की लम्बाई चौड़ाई आदि मापने के लिये एक कल्पना मात्र है।

१७२. **लोक व अलोक इन दोनों के रंगों में क्या अन्तर ?**
अमूर्तीक होने के कारण दोनों ही रंग रहित हैं।

१७३. **लोक व अलोक इन दोनों में कौन बड़ा ?**
अलोक अनन्त है। उसकी तुलना में लोक अणुवत् है। जैसे घर के बीच लटका छींका।

१७४. **एक आकाश प्रदेश पर कितनी सृष्टि है ?**
एक आकाश प्रदेश पर एक कालाणु, एक धर्म द्रव्य का प्रदेश, एक अधर्म द्रव्य का प्रदेश, अनन्तों परमाणु, अनन्तों सूक्ष्म स्कन्धों के कुछ कुछ प्रदेश, अनन्तों सूक्ष्म शरीरधारी जीवों के तथा उनके शरीरों के कुछ कुछ प्रदेश, एक स्थूल स्कन्ध के या एक स्थूल शरीरधारी जीव के व उसके शरीर के कुछ प्रदेश। इतनी सृष्टि एक आकाश प्रदेश पर समाई हुई है।

१७५. **इतने द्रव्य एक आकाश प्रदेश पर कैसे समावें ?**
सूक्ष्म होने के कारण द्रव्य अथवा उनके प्रदेश एक दूसरे में समा कर रह सकते हैं, इसलिये कोई बाधा नहीं। स्थूल द्रव्यों में ही ऐसी बाधा सम्भव है, कि एक स्थान पर एक से अधिक न रह सकें।

१७६. **सूक्ष्म जीव कम से कम कितने प्रदेश पर आता है ?**
छोटे से छोटे शरीर वाला जीव भी असंख्यात प्रदेशों से कम में नहीं समा सकता। इतनी बात अवश्य है कि यह 'असंख्यात', लोकाकाश के कुल असंख्यात जो प्रदेश उसके असंख्यातवें भाव

प्रमाण होते हैं, अर्थात अत्यल्प असंख्यात प्रमाण हैं ।

१७७. सब द्रव्य तो आकाश में ठहरे हुए हैं, पर आकाश किसमें ठहरा हुआ है ?
आकाश स्वयं अपने में ठहरा हुआ है ।

(६. काल द्रव्य)

(१७८) काल द्रव्य किसे कहते हैं ?
जो जीवादि द्रव्यों के परिणमन में सहकारी हो उसे काल द्रव्य कहते हैं; जैसे कुम्हार के चाक को घूमने के लिये लोहे की कीली ।

१७९. परिणमन किसे कहते हैं ?
प्रतिक्षण द्रव्य के गुणों में जो भीतर ही भीतर सूक्ष्म परिवर्तन होता रहता है, वह परिणमन कहलाता है; जैसे कि आम का रूप गुण धीरे धीरे भीतर भीतर ही पीलेपने को प्राप्त होता रहता है, अथवा यह स्तम्भ प्रतिक्षण भीतर ही भीतर क्षीण हो रहा है ।

१८०. काल द्रव्य का आकार कैसा ?
एक परमाणु की भांति काल द्रव्य एक प्रदेशी है ।

१८१. एक परमाणु जितना बड़ा दूसरा द्रव्य कौन सा है ?
कालाणु ।

(१८२) काल द्रव्य कितने हैं और उनकी स्थिति कहां है ?
लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उतने ही कालद्रव्य (कालाणु) हैं । और लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर एक एक कालाणु स्थित है ।

१८३. क्या कालाणु भी अपने स्थान से अन्य स्थान पर जा आ सकता है ?
नहीं, कालाणु में क्रियावती शक्ति नहीं है ।

(१८४) काल द्रव्य के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक निश्चय काल दूसरा व्यवहार काल ।

(१८५) निश्चय काल किसे कहते हैं ?

काल द्रव्य (कालाणु) को निश्चय काल कहते हैं ।

(१८६) व्यवहार काल किसको कहते हैं ?

काल द्रव्य की घड़ी, दिन, मास आदि पर्यायों को व्यवहार-काल कहते हैं ।

१८७. निश्चय व व्यवहार-काल में से वास्तविक द्रव्य कौन ?

निश्चय काल या कालाणु ही वास्तविक द्रव्य है ।

१८८. क्या व्यवहार काल भी द्रव्य है ?

नहीं, व्यवहार काल तो कल्पना है, क्योंकि सूर्य नेत्रपुट व घड़ी की गति व क्रिया रूप पर्यायों पर से दिन निमेष घण्टा मिनट आदि का व्यवहार मात्र किया जाता है । अथवा व्यवहार काल द्रव्य नहीं पर्याय है, क्योंकि उत्पन्नध्वंसी है ।

१८९. घड़ी घन्टे आदि का निश्चय काल से क्या सम्बन्ध है ?

काल द्रव्य के निमित्त से सूर्य आदि में अथवा अन्य व्यवहारगत द्रव्यों में परिणमन होता है, जिसके कारण कि व्यवहार काल की कल्पना की जाती है । इस प्रकार क्योंकि निश्चय काल व्यवहारकाल के कारण का भी कारण सिद्ध होता है, इसलिये व्यवहार काल उसकी पर्याय माना गया है ।

१९०. समय किसे कहते हैं ?

व्यवहारकाल के छोटे से छोटे भाग को समय कहते हैं ।

१९१. समय कैसे उत्पन्न होता है ?

एक पुद्गल परमाणु अति मन्द गति से एक आकाश प्रदेश पर से अनन्तरवर्ती दूसरे आकाश प्रदेश पर जितनी देर में जाये, वह एक समय है ।

१९२. क्या पुद्गल परमाणु एक समय में एक ही प्रदेश पार कर सकता है या अधिक भी ?

सबसे अधिक मन्दगति से गमन करे तो एक प्रदेश पार करता है, परन्तु तीव्रतम गति से तो वह एक समय में सारे लोक का उल्लंघन करने को समर्थ है ।

१९३. एक समय में १४ राजू जाने वाले परमाणु के द्वारा एक समय के असंख्यात भाग हो जायेंगे ?

नहीं, क्योंकि एक समय से कम की कोई भी गति या कार्य सम्भव नहीं, वह गति तीव्र हो या मन्द । तहां मन्द गति से एक प्रदेश और तीव्र गति से लोक का उल्लंघन करता है, तहां कोई विरोध नहीं—अथवा प्रदेश का उल्लंघन करना समय की उत्पत्ति का कारण नहीं, वह तो केवल अनुमान कराने का एक साधन है ।

१९४. काल द्रव्य को खण्ड रूप क्यों माना गया ?

काल द्रव्य के निमित्त से होने वाला परिणमन एक समय से अधिक का नहीं होता, इसलिये उसे खण्डरूप माना गया, क्योंकि कार्य के अनुसार ही कारण होना चाहिये ।

१९५. काल द्रव्य को धर्म द्रव्यवत् व्यापक क्यों न माना गया ?

धर्म द्रव्य के निमित्त से होने वाली गति तो तीव्र व मन्द अनेक प्रकार की हो सकती है, पर काल द्रव्य के निमित्त से होने वाला परिणमन नियम से एक एक समय का पृथक पृथक ही होता है । धर्म द्रव्य के निमित्त से होने वाला कार्य व्यापक भी हो सकता है और अव्यापक भी, इसलिये उसे व्यापक मानना ही न्याय संगत है । काल के निमित्त से होने वाला कार्य सर्वदा खण्डित ही होता है इसलिये उसे खण्डित ही माना गया है । दूसरे प्रकार से यों समझिये कि धर्म द्रव्य क्षेत्र-प्रधान है और काल द्रव्य काल-प्रधान । द्रव्यों का क्षेत्र या अखण्ड आकार बड़ा छोटा सब प्रकार का हो सकता है, परन्तु काल का अखण्ड रूप एक समय से अधिक नहीं होता, इसीलिये वह व्यापक है और यह अणु रूप ।

१९६. क्या अलोकाकाश में भी परिणमन होता है ?

हाँ, क्योंकि वह भी द्रव्य है, परिणमन करना प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है।

१९७. काल द्रव्य के अभाव में अलोकाकाश कैसे परिणमन करे ?

क्योंकि आकाश अखण्ड द्रव्य है। लोक व अलोक कोई पृथक द्रव्य नहीं है। इसलिये लोक के परिणमन के साथ इसका भी परिणमन अवश्यम्भावी है ; जैसे कि कुम्हार के चाक की कीली के ऊपर वाला चक्र का भाग जब घूमता है तो शेष भाग को भी घूमना पड़ता है।

१९८. अलोकाकाश में परिणमन का निमित्त क्या ?

लोकाकाश वाला काल द्रव्य ही वहां निमित्त है ; जैसे कि कुम्हार के सारे चाक को घूमने में मध्य भाषा वाली कीली ही निमित्त है।

१९९. क्या काल द्रव्य भी परिणमन करता है ?

हाँ, क्योंकि परिणमन करना द्रव्य का स्वभाव है।

२०० काल द्रव्य किसके निमित्त से परिणमन करता है ?

स्वयं अपने निमित्त से।

२०१. काल द्रव्य मानने की क्या आवश्यकता, सभी द्रव्य कालवत् स्वयं स्वभाव से परिणमन कर लें ?

नहीं ; सर्व द्रव्यों में परिणमन करने का स्वभाव है परन्तु कराने का नहीं। काल द्रव्य में परिणमन करने का व कराने का दोनों स्वभाव हैं। इस लिये काल द्रव्य बिना किसी की सहायता के स्वयं परिणमन कर सकता है, परन्तु अन्य द्रव्य नहीं।

(९. अस्तिकाय)

२०२. अस्तिकाय किसको कहते हैं ?

बहु प्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं।

२०३. 'अस्तिकाय' शब्द का अर्थ करो।

'अस्ति' का अर्थ है सत्ता रखना या होना तथा 'काय' का अर्थ है बहु प्रदेशी। अतः जिस द्रव्य में सत्ता व बहु प्रदेशीपना दोनों पाये जायें वह 'अस्तिकाय' है।

२०४ काय का अर्थ बहु प्रदेशी कैसे ?

काय शरीर को कहते हैं और वह नियम से बहु प्रदेशी होता है, परमाणुओं का संचय हुए बिना स्कन्ध, पिण्ड या शरीर का निर्माण सम्भव नहीं।

(२०५) अस्तिकाय कितने हैं ?

पांच हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश।

२०६. काल द्रव्य को अस्तिकाय में क्यों नहीं गिना ?

वह अस्ति तो अवश्य है क्योंकि उसकी सत्ता है, परन्तु कायवान नहीं है, क्योंकि एक प्रदेशी है। अतः उसे अस्ति कह सकते हैं पर अस्तिकाय नहीं।

(२०७) पुद्गल परमाणु भी (कालाणुवत्) एक प्रदेशी है, तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ ?

पुद्गल परमाणु शक्ति की अपेक्षा अस्तिकाय है अर्थात स्कन्धरूप होकर बहु प्रदेशी हो जाता है। इसलिये उपचार से अस्तिकाय कहा गया है।

२०८. परमाणु की भांति कालाणु को भी उपचार से अस्तिकाय कह लीजिये ?

नहीं, क्योंकि उसमें स्कन्ध बनने की शक्ति का भी अभाव होने से तहाँ उपचार सम्भव नहीं।

२०९. छहों द्रव्यों में कितने कितने प्रदेश हैं ?

जीव, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय तीनों समान होते हुए असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश स्वयं अनन्त प्रदेशी है परन्तु लोकाकाश वाला भाग धर्मास्तिकाय के समान असंख्यात प्रदेशी है। पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है और स्कन्ध संख्यात

असंख्यात व अनन्त प्रदेशी भी होते हैं। कालाणु एक प्रदेशी ही है।

२१०. **द्रव्य में उनके प्रदेश पृथक पृथक रहते होंगे ?**
नहीं, द्रव्य तो अखण्ड होता है। उसका बड़ा व छोटापना जानने के लिये उसमें प्रदेशों की कल्पना मात्र की गई है।

२११. **जीव कितने परमाणुओं से मिलकर बना है ?**
जीव एक अखण्ड चेतन पदार्थ है। वह किन्हीं परमाणुओं से मिलकर नहीं बना है। परमाणुओं से पुद्गल स्कन्ध बनता है जीव नहीं।

(८. द्रव्य सामान्य)

२१२. **जीव व पुद्गल द्रव्य ही प्रत्यक्ष हैं, शेष चार को मानने की क्या आवश्यकता ?**
जीव व पुद्गल दोनों द्रव्यों में दो प्रकार के कार्य होते हैं—आकार बनाना व परिणमन करना। आकार बनाने के लिये उसे तीन कार्य करने पड़ते हैं—प्रदेशों या परमाणुओं का कहीं से मुड़ना, कहीं से बाहर की ओर निकलना या फैलना और कहीं से भीतर को प्रवेश करना या सुकड़ना। इन चार कार्यों के लिये निमित्त भी चार ही होने चाहियें। तहां फैलने या बाहर को गमन करने के लिये धर्मास्तिकाय, सुकड़ने या भीतर को अवकाश पाने के लिये आकाश और गतिपूर्वक ठहर ठहर कर मोड़ लेने के लिये अधर्मास्तिकाय की आवश्यकता है।

अथवा

जीव व पुद्गल के चार प्रकार के कार्य दृष्ट हैं—गति करना, ठहरना, एक दूसरे में समाना या अवगाह पाना और भावात्मक परिणमन करना। इन चार कार्यों के निमित्त भी चार ही चाहियें। गति के लिये धर्म, स्थिति के लिये अधर्म, अवकाश के लिये आकाश और परिणमन के लिये।

२१३. छहों द्रव्यों को दो दो भागों में विभाजित करो।

(क) चेतन-अचेतन। जीव चेतन और शेष पांच अचेतन।

(ख) मूर्तीक-अमूर्तीक। पुद्गल मूर्तीक और शेष पांच अमूर्तीक।

(ग) एक प्रदेशी-बहु प्रदेशी। काल द्रव्य एक प्रदेशी शेष पांच बहु प्रदेशी।

(घ) एक व अनेक। धर्म, अधर्म व आकाश एक एक, शेष अनेक अनेक।

(च) सर्वगत व असर्वगत। आकाश सर्वगत शेष पांच असर्वगत

(छ) क्रियावान-अक्रियावान जीव। पुद्गल क्रियावान शेष अक्रियावान।

(ज) परिणामी-अपरिणामी। जीव व पुद्गल परिणामी शेष अपरिणामी। क्योंकि जीव पुद्गल में ही स्थूल आकार विकार होते हैं अन्य में नहीं।

(झ) नित्य-अनित्य। जीव पुद्गल परिणामी होने से अनित्य और शेष चार अपरिणामी होने से नित्य शुद्ध।

(ट) क्षेत्रात्मक-अक्षेत्रात्मक। आकाश क्षेत्र प्रधान होने से क्षेत्रात्मक अन्य पांच अक्षेत्रात्मक।

(ठ) कारण-अकारण। जीव अकारण शेष पांच कारण। धर्मादि चार तो जीव पुद्गल दोनों के लिये कारण है और पुद्गल जीव के शरीरादि व रागादि का कारण है।

(ड) कर्ता-अकर्ता। इच्छावान होने से जीवकर्ता और शेष अकर्ता।

(ढ) भोक्ता-अभोक्ता। इच्छावान होने से जीव भोक्ता शेष अभोक्ता।

(त) द्रव्यात्मक-भावात्मक। ज्ञानात्मक होने से जीव भाव-स्वरूप है और जड़ होने से शेष द्रव्य स्वरूप (विशेष देखो आगे प्रश्न नं० २२१)

२१४. द्रव्यों के पृथक पृथक अवयव दर्शाओ।

(क) जीव के अवयव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि भाव व उसके असंख्यात प्रदेश।

(ख) पुद्गल के अवयव रूप रस गन्ध स्पर्श आदि भाव व उसके प्रदेश या परमाणु ।

(ग) धर्मास्तिकाय के अवयव उसका गति हेतुत्व भाव व उसके असंख्यात प्रदेश ।

(घ) अधर्मास्ति के अवयव उसका स्थिति हेतुत्व भाव और उसके असंख्यात प्रदेश ।

(च) आकाश द्रव्य के अवयव उसका अवगाहन हेतुत्व भाव और उसके अनन्त प्रदेश ।

(छ) काल द्रव्य के अवयव उसका परिणमन हेतुत्व रूप भाव ही है प्रदेश नहीं ।

२१५. **सबसे बड़ा द्रव्य कौन सा ?**

द्रव्य की अपेक्षा पुद्गल सबसे बड़ा है, क्योंकि उसकी संख्या सबसे अधिक है । क्षेत्र की अपेक्षा आकाश सबसे बड़ा है क्योंकि उसके प्रदेश सबसे अधिक हैं । काल की अपेक्षा सभी समान हैं, क्योंकि सभी त्रिकाली हैं । भाव की अपेक्षा जीव सबसे बड़ा है क्योंकि ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद सबसे अधिक हैं तथा सर्वग्राहक हैं ।

२१६. **कौन से द्रव्य ऐसे हैं जो स्व व पर दोनों को निमित्त हैं ?**

जीव पुद्गल आकाश व काल ये चारों स्व व पर दोनों को निमित्त हैं । जीव द्रव्य स्व व पर दोनों को जानता है, एक दूसरे का उपकार करता है तथा विवेक द्वारा अपना भी । पुद्गल द्रव्य शरीरादि के द्वारा जीव का उपकार करता है और स्कन्ध बनाकर अपना भी । आकाश द्रव्य स्व व पर दोनों को अवकाश देता है । काल द्रव्य स्व व पर दोनों को परिणमन कराता है ।

२१७. **कौन से द्रव्य ऐसे हैं जो पर को ही निमित्त हैं स्व को नहीं ?**

धर्म व अधर्म द्रव्य जीव व पुद्गल को ही गति व स्थिति कराने में निमित्त हैं, अपने को नहीं, क्योंकि वे त्रिकाल स्थायी हैं ।

२१८. **ऐसे द्रव्य बताओ जो अरूपी भी हों और अचेतन भी ।**

चार हैं—धर्म, अधर्म, आकाश और काल ।

२१९. **अर्थ, पादार्थ, द्रव्य, तत्व, वस्तु व सत् इनमें क्या अन्तर है ?**
द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों पृथक पृथक अथवा युगपत 'अर्थ' व 'पदार्थ' शब्द वाच्य हैं। गुण व पर्याय का आश्रयभूत प्रदेशात्मक पदार्थ 'द्रव्य' शब्द वाच्य है। द्रव्य के स्वभाव व विभाव 'तत्व' शब्द वाच्य हैं। द्रव्य में प्रयोजनभूतपने को 'वस्तु' शब्द प्रगट करता है। और द्रव्य का उत्पाद व्यय ध्रुवता को सत् शब्द से दर्शाया जाता है। (और भी देखें पीछे अध्याय २ में प्रथम अधिकार के अन्तर्गत 'द्रव्य' की व्याख्या में प्रश्न नं० २१)

२२० **द्रव्य को द्रव्य वस्तु अर्थ पदार्थ तत्व व सत् क्यों कहा जाता है ?**
प्रदेशात्म होने के कारण अर्थात परिमनशील होने के कारण द्रव्य, प्रयोजनभूत कार्य करने से वस्तु, गुण-पर्यायवान होने से अर्थ व पदार्थ, स्वभाववान होने से तत्व और सत्तावान होने से सत् कहा जाता है।

२२१. **द्रव्य के दो प्रधान अंग कौन से हैं ? पृथक पृथक दर्शाओ ।**
विश्लेषण द्वारा द्रव्य में दो प्रधान विभाग प्राप्त होते हैं—द्रव्य व भाव। (विशेष देखो पीछे सामान्याधिकार में 'द्रव्य' नामक द्वितीय विभाग के अन्तर्गत प्रश्न नं० ३९—४०)

२२२. **परिस्पन्दन. क्रिया व परिणमन में क्या अन्तर है ?**
(देखो पीछे सामान्याधिकार के 'पर्याय' नामक चतुर्थ विभाग में प्रश्न नं० ६८—७०)

प्रश्नावली

नोट:—सर्व अधिकार व विभाग ही स्वयं प्रश्नावली हैं।

२/३ गुणाधिकार

(१ गुण सामान्य)

(१) गुण किसे कहते हैं ?

जो द्रव्य के पूरे हिस्से में और उसकी सब हालतों में रहे उसे गुण कहते हैं। (इस लक्षण सम्बन्धी तर्क वितर्क के लिये देखो पीछे सामान्याधिकार में 'गुण' नामक तृतीय विभाग)

(२) गुण के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक सामान्य दूसरा विशेष।

(३) सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

जो सर्व द्रव्यों में न व्यापे (या पाया जाये) उसे सामान्य गुण कहते हैं।

(४) विशेष गुण किसे कहते हैं ?

जो सर्व द्रव्यों में न व्यापे (न पाया जाये) बल्कि अपने अपने द्रव्यों में (द्रव्य जातियों में) रहे उसे विशेष गुण कहते हैं।

(५) सामान्य गुण कितने हैं ?

अनेक हैं लेकिन उनमें छः मुख्य हैं; जैसे—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व व प्रदेशत्व।

६. विशेष गुण कितने हैं ?

अनेक हैं लेकिन उनमें १२ प्रधान हैं। जीव के चार—ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य। पुद्गल के चार—रूप रस, गन्ध व स्पर्श। धर्मास्तिकाय आदि के चार—गति हेतुत्व, स्थिति-हेतुत्व, अवगाहणा हेतुत्व व परिणमन हेतुत्व।

७. कौन द्रव्य ऐसा है जिसमें सामान्य गुण न हो ?
ऐसा कोई द्रव्य नहीं है, क्योंकि सामान्य गुण सभी द्रव्यों में व्याप्त हैं।

८. कौन द्रव्य ऐसा जिसमें विशेष गुण न हों ?
ऐसा कोई द्रव्य नहीं है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में अपने अपने विशेष गुण अवश्य हैं।

९. एक ही सामान्य गुण सब द्रव्यों में आकाशवत् व्याप्त है ?
नहीं, प्रत्येक द्रव्य में अपना अपना सामान्य गुण पृथक पृथक है। सब द्रव्यों में पाये जाने वाले सामान्य गुण जाति की अपेक्षा एक एक हैं, इसी लिये सब द्रव्यों में व्यापना कहा है, आकाशवत् नहीं, जैसे—सर्व द्रव्यों में अपना अपना अस्तित्व गुण है क्योंकि वे सब सत् हैं।

१०. सामान्य गुण के मानने से क्या लाभ ?
सामान्य गुण से द्रव्य की सिद्धि होती है।

११. विशेष गुण को मानने से क्या लाभ ?
विशेष गुणों से द्रव्य में जाति भेद होता है।

१२. सामान्य गुण न मानें तो ?
द्रव्य का अस्तित्व ही सिद्ध न हो।

१३. विशेष गुण न मानें तो ?
द्रव्यों में जाति भेद न हो। सर्व संकर का प्रसंग आये।

१४. सामान्य गुण को अन्य क्या नाम दे सकते हैं ?
'त्व' प्रत्यय सहित होने से इसे स्वभाव कह सकते हैं; यथा अस्तित्व स्वभाव।

१५. सामान्य व विशेष गुणों के लक्षणों को गुण की व्याख्या में लगाओ।
जो सर्व द्रव्यों के पूरे हिस्से में व उनकी सर्व अवस्थाओं में रहे उनको सामान्य गुण कहते हैं। और जो सर्व द्रव्यों में न रह कर अपनी अपनी जाति के द्रव्यों के पूरे पूरे हिस्से में और उनकी सर्व हालतों में रहे, उसे विशेष गुण कहते हैं।

१६. सामान्य व विशेष गुणों की किस किस बात में अन्तर है ?

(क) सामान्य गुण सर्व द्रव्यों में रहता है परन्तु विशेष गुण अपनी अपनी जाति के द्रव्यों में ही ।

(ख) सामान्य गुण से द्रव्य की सिद्धि होती है और विशेष गुण से उनमें जाति भेद ।

(ग) यदि सामान्य गुण न हो तो द्रव्य ही न हो और यदि विशेष गुण न हो तो सर्व द्रव्य मिलकर एकमेक हो जायें ।

(घ) सामान्य गुण द्रव्य सामान्य का लक्षण करने के काम आते हैं और विशेष गुण पृथक पृथक जाति के द्रव्यों के लक्षण करने में काम आते हैं; जैसे द्रव्य का लक्षण तो अस्तित्व है परन्तु जीव द्रव्य का लक्षण ज्ञान दर्शन ।

१७. सामान्य व विशेष गुणों में कौन अधिक है ?

दोनों अनेक अनेक हैं, कोई अधिक नहीं ।

१८. सामान्य व विशेष गुणों में आठ अपेक्षाओं से भेदाभेद दर्शाओ ।

(क) 'संज्ञा' की अपेक्षा भेद है, क्योंकि दोनों के नाम भिन्न भिन्न हैं ।

(ख) 'संख्या' की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि दोनों अनेक अनेक हैं ।

(ग) 'लक्षण' की अपेक्षा भेद है, क्योंकि दोनों के लक्षण भिन्न भिन्न हैं ।

(घ) 'प्रयोजन' की अपेक्षा भेद है, क्योंकि सामान्य गुण से द्रव्य की सिद्धि होती है और विशेष गुण से जाति की ।

(च) 'द्रव्य' की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि दोनों का आश्रय प्रत्येक द्रव्य है ।

(छ) 'क्षेत्र' की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि दोनों ही उस द्रव्य के सर्व हिस्से में रहते हैं ।

(ज) 'काल' की अपेक्षा अभेद है, क्योंकि दोनों द्रव्य की सर्व हालतों में रहते हैं अर्थात् त्रिकाली हैं ।

(झ) 'भाव' की अपेक्षा भेद है क्योंकि दोनों के लक्षण भिन्न हैं ।

१९. छहों सामान्य गुणों के क्रम का सार्थक्य दर्शाओ।

(क) किसी पदार्थ का अस्तित्व होने पर ही अन्य-अन्य बातों की चर्चा प्रयोजनीय है, इसलिये 'अस्तित्व गुण' सबमे पहिले है।

(ख) जो भी है उसका कुछ न कुछ प्रयोजनभूत कार्य अवश्य होना चाहिये अन्यथा वह वस्तु ही नहीं है। इसलिये दूसरे नम्बर पर 'वस्तुत्व' है।

(ग) वस्तु में प्रयोजनभूत कार्य सम्भव नहीं जब तक कि उसमें परिणमन न हो, इसलिये तीसरे नम्बर पर 'द्रव्यत्व' गुण है।

(घ) उपरोक्त तीनों बातों की सिद्धि तभी हो सकती है जब वह किसी न किसी के ज्ञान का विषय बन रहा हो। इसलिये चौथे नम्बर पर 'प्रमेयत्व' है।

(च) परिणमन करते हुए उसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा अवश्य करनी चाहिये, ताकि बदलकर दूसरे रूप न हो जाये ; अन्यथा सभी द्रव्य मिल जुलकर एकमेक हो जायेंगे। इसी से पाँचवें नम्बर पर 'अगुरुलघुत्व' गुण कहा गया है।

(छ) द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता टिक नहीं सकती यदि गुणों का समूह न हो ; और गुणों का समूह रह नहीं सकता जब तक कि उनका कोई आधार या आश्रय न हो। आश्रय प्रदेशवान ही होता है इसलिये अन्त में 'प्रदेशत्व' गुण कहा गया है।

२०. अपने में छहों सामान्य व विशेष गुण घटित करके दिखाओ।

'मैं हूँ' यह मेरा अस्तित्व है। जानना देखना मेरा प्रयोजनभूत कार्य है, यही मेरा वस्तुत्व है। मैं प्रति क्षण बालक से वृद्धत्व की ओर जा रहा हूँ यह मेरा द्रव्यत्व है। मुझको मैं व आप सब जानते हैं यह मेरा प्रमेयत्व है। मैं कभी भी बदल कर

चेतन से जड़ नहीं बन सकता यही मेरा अगुरुलघुत्व है। मैं मनुष्य की आकृति या संस्थान वाला हूँ यह मेरा प्रदेशत्व है। ज्ञान दर्शन आदि मेरे विशेष गुण सर्व प्रत्यक्ष हैं।

(२. अस्तित्व गुण)

(२१) **अस्तित्व गुण किसे कहते हैं ?**

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी नाश न हो उसे अस्तित्व गुण कहते हैं।

२२. **द्रव्य का नाश होने से क्या समझे ?**

(क) न कोई नया द्रव्य उत्पन्न हो सकता है और न कोई पहिला द्रव्य नष्ट हो सकता है। जितने भी द्रव्य हैं वे अनादि काल से स्वतः सिद्ध हैं; उतने ही रहेंगे। उनमें हानि वृद्धि नहीं हो सकती।

(ख) अस्तित्व गुण के कारण द्रव्य ही नहीं बल्कि उसके गुण भी विनष्ट नहीं हो सकते, न ही हीनाधिक हो सकते हैं, क्योंकि गुणों का समूह द्रव्य है।

२३. **आप की आयु कितनी है ?**

मैं अनादि अनन्त हूँ, क्योंकि अस्तित्व गुण के कारण मैं कभी मरा न मरूंगा।

२४. **आदिनाथ भगवान के समय में क्या आप थे ?**

हां था, क्योंकि अस्तित्व गुण के कारण मेरा कभी भी विनाश नहीं हुआ।

२५. **क्या भगवान महावीर आज भी हैं ?**

हां, हैं क्योंकि अस्तित्व गुण के कारण उनका कभी नाश नहीं हुआ।

२६. **द्रव्य की उत्पत्ति स्थिति व संहार करने वाला कौन ?**

अस्तित्व गुण के कारण द्रव्य स्वयं अनादि सिद्ध है। न नया बनता है न नष्ट होता है। स्वयं रक्षित की रक्षा का प्रश्न नहीं। अतः उसकी उत्पत्ति स्थिति व संहार करने वाला कोई नहीं।

२७. **अस्तित्व गुण को जानने का क्या प्रयोजन ?**
व्यक्ति ज्ञाता दृष्टा व निर्भय बन जाता है। न किसी वस्तु को बनाने बिगाड़ने का विकल्प आ सकता है और न मरने का भय हो सकता है।

२८. **द्रव्य को सत् क्यों कहते हैं ?**
अस्तित्व गुण युक्त होने से द्रव्य 'सत्' संज्ञा को प्राप्त है।

२९. **द्रव्य में सभी गुण सभी अवस्थाओं में रहते हैं। इसका क्या कारण है ?**
अस्तित्व गुण के कारण जिस प्रकार द्रव्य नष्ट नहीं होता उसी प्रकार गुण भी नष्ट नहीं होते, क्योंकि गुणों का समूह ही द्रव्य है। उनके नष्ट होने पर उनका समूह रूप द्रव्य कैसे रह सकता है।

(३. वस्तुत्व गुण)

(३०) **वस्तुत्व गुण किसको कहते हैं ?**
जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अर्थ क्रिया हो उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं; जैसे—घट की क्रिया जलधारण।

३१ **अर्थ क्रिया से क्या समझे ?**
प्रत्येक द्रव्य का कोई न कोई प्रयोजनभूत कार्य या Function अवश्य होता है, भले हमारे लिये इष्ट हो अथवा अनिष्ट या व्यर्थ। जैसे इन तृणों का भी प्रयोजन है पशुओं का पेट भरना अथवा चटाई आदि बनाने में काम आना।

३२. **वस्तुत्व शब्द का क्या अर्थ है ?**
वस्तुत्व अर्थात् वास देने का स्वभाव।

३३. **वस्तुत्व गुण के क्या क्या लक्षण हो सकते हैं ?**
तीन प्रधान लक्षण हो सकते हैं—
(क) प्रत्येक द्रव्य में अर्थ क्रिया होना।
(ख) प्रत्येक द्रव्य स्वचतुष्टय से सत् है और परचतुष्टय से असत्।

(ग) प्रत्येक द्रव्य अपने गुण पर्यायों को वास देता है ।

३४. **वस्तुत्व गुण के उपरोक्त लक्षणों का समन्वय करो ।**
अर्थ क्रिया या प्रयोजनभूत कार्य द्रव्य में तभी सम्भव है जबकि उसमें अपने गुण पर्याय बसते हों तथा सदा अपने स्वरूप की रक्षा करता हुआ अन्य रूप न हो जाता हो । यदि द्रव्य स्वोचित कार्य को छोड़कर अन्योचित कार्य करने लगे तो घट भी कल को पट का कार्य करने लगेगा और इस प्रकार घट भी पट बन जायेगा और पट मठ बन बैठेगा । द्रव्यों के स्वभाव की कोई व्यवस्था न बन सकेगी । अतः प्रयोजनभूत कार्य से ही स्व-चतुष्टय में स्थिति तथा गुण पर्यायों का वास जाना जाता है ।

३५ **कूड़ा कचरा निकम्मा है ?**
उसका भी प्रयोजनभूत कार्य है वदबू देना तथा मच्छर पैदा करना ।

३६. **वस्तुत्व गुण जानने का क्या प्रयोजन ?**
मेरा प्रयोजनभूत कार्य जानना देखना है, अतः इसके अतिरिक्त अन्य कुछ करने का विकल्प व्यर्थ है ।

३७. **भैया ! मैं बीमार हूं, अतः मुझसे कोई काम नहीं होता ।**
ऐसा नहीं है, क्योंकि इस अवस्था में भी जानने देखने का कार्य हो ही रहा है ।

३८. **द्रव्य का नाम वस्तु क्यों पड़ा ?**
वस्तुत्व गुण युक्त होने से द्रव्य 'वस्तु' कहलाता है ।

३९. **आप जीव हैं शरीर नहीं ऐसा क्यों ?**
मेरा और शरीर के प्रयोजनभूत कार्य जुदा-जुदा हैं, मेरा जानना देखना और उसका क्षीर्ण होना । अतः मैं अपने स्व-चतुष्टय में स्थित हूँ और शरीर मेरे स्वचतुष्टय से न्यारा है ।

(४. द्रव्यत्व गुण)

(४०) **द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?**
जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य सदा एकसा न रहे और उसकी

पर्याय निरन्तर बदलती रहें ।

४१. **द्रव्य एकसा न रहने से क्या समझे ? क्या वह बदल कर अन्य रूप हो जाता है ?**
द्रव्य नहीं बदलता, बल्कि उसकी हालतें जल प्रवाहवत् सदैव बदलती रहती हैं ।

४२. **'द्रव्यत्व' शब्द से क्या तात्पर्य ?**
द्रव्यत्व अर्थात् प्रवाहित रहने या रिसते रहने का स्वभाव ।

४३. **द्रव्यत्व व वस्तुत्व गुण में क्या अन्तर है ?**
वस्तुत्व गुण द्रव्य के कार्यक्षेत्र की सीमा बाँधता है कि वह अपना ही प्रयोजनभूत कार्य कर सकेगा, प्रत्येक कार्य नहीं । द्रव्यत्व गुण वस्तु के परिणमन स्वभाव की सिद्धि करता है, अर्थात् एक क्षण को भी रुके बिना निरन्तर द्रव्य की अवस्थायें (पर्यायें) सूक्ष्म रूप से अन्दर ही अन्दर बदलती रहती है, ऐसा स्वभाव ही है ।

४४. **द्रव्यत्व गुण की व्याख्या में निरन्तर शब्द का क्या महत्व ?**
परिणमन में एक क्षण का भी अन्तराल नहीं पड़ता । एक क्षण को भी परिणमन नहीं रुकता । जल प्रवाहवत् उसकी सन्तति या धारा बराबर बनी रहती है । यही 'निरन्तर' शब्द बताता है ।

४५. **द्रव्य को 'द्रव्य' संज्ञा क्यों दी गई ?**
द्रव्यत्व गुण युक्त होने के कारण पदार्थ 'द्रव्य' कहलाता है ।

४६. **माता रो रही है कि उसका पुत्र मर गया । वह क्या भूलती है ?**
वह अस्तित्व व द्रव्यत्व गुण को भूल रही है । अस्तित्व गुण के कारण वह उसके पुत्र नाम वाला जीव नष्ट नहीं हुआ । द्रव्यत्व गुण के कारण केवल उसकी अवस्था बदली है ।

४७. **संसार असार है यहां कुछ भी स्थायी नहीं । क्या भूल है ?**
अस्तित्व व द्रव्यत्व गुणों की भूल है । अस्तित्व गुण की तरफ देखें तो संसार नाम की कोई चीज ही नहीं है । सत्ताधारी

छ: मूल पदार्थ त्रिकाल स्थायी हैं। संसार नाम से जो प्रतीति में आ रहा है वह उसी त्रिकाली सत् का परिणमन मात्र है। द्रव्यत्व गुण की तरफ देखें तो पर्याय रूप होने से संसार का स्वभाव ही ऐसा है, यही उसका सौन्दर्य है और यही सार।

४८. **जगत की उत्पत्ति स्थिति संहार करने वाला कौन है ?**
जगत नाम द्रव्य का नहीं पर्याय का है। नवीन पर्याय का उत्पाद और पुरानों का व्यय होते रहना ही उसका स्वभाव है। अत: जगत की उत्पत्ति व संहार करना द्रव्यत्व गुण का कार्य है। मूल छ: द्रव्य रूप से वह त्रिकाल ध्रुव है। अस्तित्व गुण ही उनकी स्थिति की रक्षा करता है।

४९. **'ब्रह्म सत् जगत् मिथ्या' क्या भूल है ?**
अस्तित्व व द्रव्यत्व गुण की भूल है। अस्तित्व गुण के कारण कुछ भी मिथ्या नहीं, क्योंकि उसे देखने पर जगत नहीं मूल छ: पदार्थ दिखाई देते हैं, जो त्रिकाल सत् हैं, उनकी समष्टि ही 'ब्रह्म' शब्द वाच्य जाननी चाहिये। द्रव्यत्व गुण की तरफ देखने पर उसकी पर्यायभूत इस जगत का स्वभाव ही अस्थिर है, फिर उसमें मिथ्यापना क्या।

५०. **लोक में कोई भी वस्तु टिकती प्रतीत क्यों नहीं होती ?**
क्योंकि द्रव्यत्व गुण के कारण प्रत्येक पदार्थ नित्य परिणमन कर रहा है।

५१. **अकृत्रिम चैत्यालय व सूर्य बिम्ब आदि त्रिकाल नित्य कहे जाते हैं ?**
स्थूल रूप से नित्य दीखने से ऐसा कहा जाता है। वास्तव में द्रव्यत्व गुण के कारण उनके भीतर भी बराबर सूक्ष्म परिणमन हो रहा है।

५२. **संगेमरमर के इस स्तम्भ में कोई परिवर्तन नहीं है ?**
ऐसा वास्तव में नहीं है। इसमें भी बराबर सूक्ष्म परिवर्तन हो रहा है, अन्यथा सहस्र वर्ष पश्चात् यह जर्जरित होकर समाप्त न

हो जाता। प्रतिक्षण नये से पुराना होता हुआ यह जर्जरित हुआ जा रहा है।

५३. **द्रव्यत्व गुण को जानने से क्या प्रयोजन ?**

(क) जगत में निराशा के स्थान पर सौन्दर्य के दर्शन करना।

(ख) अपनी वर्तमान अज्ञान दशा से निराश न होना, क्योंकि यह भी बदल कर एक दिन सम्यक्त्व पूर्वक तेरा परमार्थ कल्याण बन बैठेगा।

(५. प्रमेयत्व गुण)

५४. **प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?**

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान में विलय हो, उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

५५. **'किसी न किसी के ज्ञान में' इससे क्या समझे ?**

परोक्ष का नहीं तो प्रत्यक्ष का अथवा छद्मस्थ के ज्ञान का नहीं तो सर्वज्ञ के ज्ञान का विषय अवश्य होगा।

५६. **'प्रमेयत्व' शब्द का क्या अर्थ ?**

प्रमाण अर्थात सच्चे ज्ञान में आने की योग्यता ही प्रमेयत्व है।

५७. **यह बात अत्यन्त गुप्त रखना, देखना कोई जानने न पावे ?**

ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि अपने प्रमेयत्व गुण के कारण वह बात अवश्य किसी न किसी के द्वारा जानी जा रही है।

५८. **अलोकाकाश में तो कोई नहीं, बताओ उसे कौन जाने ?**

अपने प्रमेयत्व गुण के कारण वह सर्वज्ञ के ज्ञान का विषय हो रहा है।

५९. **जगत में कितने पदार्थ जाने जाने योग्य हैं ?**

सत्ताभूत सभी पदार्थ जाने जाने योग्य हैं, क्योंकि सभी प्रमेयत्व गुण युक्त हैं।

६०. **द्रव्य जाना जाये पर पर्याय नहीं ?**

नहीं, द्रव्य गुण पर्याय तीनों ही जाने जाते हैं, क्योंकि तीनों पृथक पृथक नहीं अखण्ड हैं। द्रव्य का प्रमेयत्व गुण ही उसके अन्य गुणों व पर्याय को जनवाने में कारण है।

६१. **रूपी पदार्थ ही जाने जा सकते हैं अरूपी नहीं ?**
नहीं, अरूपी पदार्थ यद्यपि इन्द्रिय ज्ञान गोचर नहीं पर योगज ज्ञान विशेष द्वारा अवश्य जाने जा रहे हैं। क्योंकि उनमें भी प्रमेयत्व गुण है।

६२. **जानने वाला स्वयं अपने को कैसे जाने ?**
जानने वालों में दो गुण हैं—ज्ञान व प्रमेयत्व। ज्ञान द्वारा वह जानता है और प्रमेयत्व द्वारा जनाया जाता है। इस प्रकार स्वयं अपने को भी जानता है।

६३. **ज्ञान होने व ज्ञात होने की ये दो शक्तियें किसमें हैं ?**
जीव में।

६४. **प्रमेयत्व गुण को जानने का क्या प्रयोजन ?**
समस्त विश्व अपने प्रमेयत्व द्वारा मेरे ज्ञान को अपना सर्वस्व अर्पण को स्वयं तैयार है, फिर मैं जगत के पदार्थों के जानने के प्रति व्यग्र क्यों होऊं। साक्षी रूप से स्थित रहते हुए, ज्ञान को सहज अपना कार्य करने दूं।

(६. अगुरुलघुत्व गुण)

(६५) **अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ?**
जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य की द्रव्यता कायम रहे अर्थात्—
(क) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप न परिणमै।
(ख) एक गुण दूसरे गुण रूप न परिणमै।
(ग) एक द्रव्य के अनेक या अनन्त गुण बिखर कर जुदे जुदे न हो जावें; उसको अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

६६. **'अगुरुलघु' शब्द का क्या तात्पर्य ?**
अ+गुरु+लघु। अ=नहीं; गुरु=भारी या बड़ा; लघु= हलका या छोटा। कोई भी द्रव्य प्रमाण या सीमा को उल्लंघन करके भारी या हलका अथवा छोटा या बड़ा नहीं बन सकता।

६७. **'द्रव्य की द्रव्यता कायम रहे' इससे क्या समझे ?**
द्रव्य गुणों का समूह है। उसकी द्रव्यता इसी में है कि उसके

सर्व गुण सुरक्षित रहें; उनमें से एक भी न घटे न बढ़े न बदले। गुण घटने से वह लघु हो जायेगा, बढ़ने से गुरु बन जायेगा और बदलने से वह द्रव्य ही बदलकर अन्य रूप हो जायेगा।

६८. अगुरुलघु के तीनों लक्षणों का समन्वय करो।

(क) द्रव्य परिणमन अवश्य करता है पर अन्य द्रव्य रूप से नहीं, जैसे कि जीव अजीव रूप नहीं हो सकता, अथवा अन्य जीव रूप भी नहीं हो सकता। यदि ऐसा होने लगे सभी द्रव्य धीरे धीरे अन्यरूप होकर अपनी सत्ता खो बैठें और विश्व द्रव्य-शून्य हो जाये, जो असम्भव है।

(ख) द्रव्य गुणों का समूह तभी रह सकता है जब कि वे भी द्रव्य की भांति एक दूसरे रूप न परिणमें; यथा रूप गुण रस गुण न बन जाये। यदि ऐसा होने लगे तो सभी गुण धीरे धीरे अन्य रूप होकर अपनी सत्ता खो बैठें और द्रव्य गुण-शून्य हो जाये, जो असम्भव है।

(ग) इसी प्रकार द्रव्य गुणों का समूह तभी रह सकता है जब कि उसके गुण उसे छोड़कर बाहर न निकल सकें। यदि ऐसा होने लगे तो सब गुण धीरे धीरे उसका त्याग कर देंगे और वह गुण-शून्य हो जायेगा, जो असम्भव है। अथवा लघु हो जायेगा और वे गुण उसे छोड़कर जिस दूसरे द्रव्य का आश्रय लेंगे वह गुरु हो जायेगा। गुणों का निराश्रय रहना सम्भव नहीं।

६९. दूध पानी मिलकर एकमेक हो गए?

नहीं, दोनों अपने अपने स्वरूप में स्थित हैं। दूध जलरूप या जल दूधरूप नहीं हो गया है। केवल संश्लेष बन्ध के कारण एक दीखते हैं। अगुरुलघु गुण के कारण दोनों की सत्ता पृथक २ है।

७०. प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता की मर्यादा काहे से है?

अगुरुलघुत्व गुण से है, क्योंकि उसी के कारण उसकी सत्ता

सुरक्षित है। वह न हो तो बड़े द्रव्य छोटे को निगल जायें।

७१. द्रव्य की स्वतंत्रता का क्या अर्थ ?

द्रव्य अपने स्वरूप में स्थित रहे, अन्य रूप न बने।

७२. द्रव्य स्वतंत्र रूप से शुद्ध अशुद्ध सब प्रकार के कार्य कर सकता है, ऐसा कहें तो ?

नहीं, वस्तु स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि वह जो चाहे कर सके। कोई भी द्रव्य अपने कार्यक्षेत्र की सीमा को उल्लंघन नहीं कर सकता। यही उसकी स्वतन्त्रता है, क्योंकि अन्य का कार्य करने का अर्थ है उसे अपने आधीन करना।

प्रत्येक द्रव्य अपने योग्य ही प्रयोजनभूत कार्य कर सकता है, दूसरे के योग्य नहीं, क्योंकि ऐसा होने लगे उसकी शक्ति में बदल कर दूसरे रूप हो जायें जो असम्भव है। अगुरुलघुत्व के द्वितीय लक्षण से यह बात जानी जाती है।

७३. मुक्त आत्मायें तेज में तेजवत् मिलकर एक हो जाती हैं ?

नहीं, वे एक दूसरे के क्षेत्र में अवगाह भले पा लें पर उनकी अपनी अपनी सत्ता विनष्ट नहीं होती; जैसे कि दूध में जल व खाण्ड की सत्ता। अगुरुलघुत्व के प्रथम लक्षण से यह बात जानी जाती है।

७४. गुरु ने मुझे ज्ञान दिया ?

गुरुने अपना ज्ञान मुझे नहीं दिया, मेरा ही ज्ञान गुण उनके निमित्त से मुझमें विकसित हुआ है। गुरु अपना ज्ञान देते वे लघु हो जाते और उनका ज्ञान मुझमें आने से मैं गुरु हो जाता। गुरु का ज्ञान उनसे पृथक नहीं हो सकता। अगुरुलघुत्व के तृतीय लक्षण से यह बात जानी जाती है।

७५. सम्यग्दृष्टि को चारित्रवान होना ही चाहिये ?

नहीं, सम्यग्दर्शन व चारित्र दोनों गुण पृथक २ हैं, इनका कार्य भी स्वतंत्र है। यदि सम्यक्त्व गुण चारित्र गुण को बाध्य करने लगे तो चारित्र गुण सम्यक्त्व बन जाये। अगुरुलघुत्व गुण के

कारण एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं हो सकता। अगुरुलघुत्व के द्वितीय लक्षण पर से यह बात जानी जाती है।

७६. **बूढ़े व्यक्ति में ज्ञान व विवेक नहीं रहता?**
ऐसा नहीं है, क्योंकि अगुरुलघुत्व गुण के कारण ये दोनों गुण उससे जुदा नहीं हो सकते। अगुरुलघुत्व के तृतीय लक्षण पर से यह जाना जाता है।

७७. **एकेन्द्रिय जीव में गुण कम होते हैं और पंचेन्द्रिय में अधिक।**
नहीं; सभी जीवों में गुण समान होते हैं, भले ही किसी जीव में वे कम व्यक्त और किसी में अधिक। अगुरुलघुत्व गुण के कारण किसी के भी उसमें से निकल नहीं सकते और न किसी में प्रवेश कर सकते हैं। अगुरुलघुत्व के तृतीय लक्षण पर से यह बात जानी जाती है।

७८. **परमाणु में स्पर्श के चार गुण कम होते हैं और स्कन्ध में अधिक ऐसा आगम में कहा है?**
परमाणु व स्कन्ध के गुणों में हीनाधिकता नहीं है; बल्कि गुणों की पर्यायों के व्यक्त होने में हीनाधिकता है। दूसरी बात यह भी है कि हलका भारी कठोर व कोमल ये चार जो स्पर्श कहे गये हैं वे स्पर्श गुण की पर्याय नहीं है, बल्कि स्कन्ध में एक दूसरे की अपेक्षा रखकर देखे जाने वाले धर्म हैं। अगुरुलघु गुण के कारण गुण घट बढ़ नहीं सकते, यह बात अगुरुलघुत्व के तृतीय लक्षण पर से जानी जाती है।

७९. **अगुरुलघु गुण से तुम्हारा क्या प्रयोजन?**
मैं जीव हूँ शरीर नहीं। सिद्ध भगवान के समान ही पूर्ण गुणों का भण्डार हूँ, इसलिये निराश न होकर शरीर में से अपनत्व बुद्धि निकालूं और अपने स्वरूप के दर्शन करूं।

(७ प्रदेशत्व गुण)

(८०) **प्रदेशत्व गुण किसे कहते हैं?**
जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कुछ न कुछ आकार अवश्य हो।

८१. 'आकार' से क्या समझे ?

द्रव्य की कुछ न कुछ लम्बाई चौड़ाई मोटाई अथवा गोल चौकोर तिकोन आदि आकृति अवश्य होनी चाहिये, क्योंकि सर्वथा आकृति रहित पदार्थ सम्भव नहीं। वह आकार बड़ा हो या छोटा यह दूसरी बात।

८२. अमूर्तीक द्रव्यों का कोई आकार नहीं होता ?

नहीं, अमूर्तीक द्रव्यों का भी आकार अवश्य होता है, परन्तु मूर्तीक के आकारवत् वह दिखाई नहीं देता।

८३. आत्मा को निराकार कहते हैं ?

निराकार का अर्थ यह नहीं है कि उसका द्रव्य आकार रहित है, बल्कि यह है कि उसे भावप्रधान होने से उसे ज्ञान स्वरूप या चिन्मात्र माना गया है। चेतन प्रकाश निराकार है।

८४. क्या आत्मा भी साकार है ?

हां, उसका द्रव्य अर्थात प्रदेशात्य विभाग अवश्य कुछ न कुछ लम्बी चौड़ी मोटी छोटी आकृति वाला है।

८५. आत्मा का आकार कैसा है ?

जैसे शरीर में रहता है वैसा ही उसका आकार भी हो जाता है, जैसे घटाकाश का आकार भी घट जैसा होता है।

८६. प्रदेशत्व गुण का क्या कार्य है ?

तीन कार्य हैं—आकार बनाना, परिस्पन्दन करना तथा क्रिया करना।

८७. आकार परिस्पन्दन व क्रिया में क्या अन्तर है ?

आकार लम्बाई चौड़ाई मोटाई को कहते हैं और परिस्पन्दन प्रदेशों के भीतरी कम्पन को। परिस्पन्दन के कारण आकार में परिवर्तन होता है। क्रिया तो प्रदेश प्रथमरूप अखंड द्रव्य के गमनागमन का नाम है।

८८. प्रदेशत्व गुण को मानने की क्या आवश्यकता ?

द्रव्य गुणों व पर्यायों का आधार है। आधार या आश्रय को

अवश्य प्रदेशवान होना चाहिये, अन्यथा गुण व पर्याय कहां व कैसे ठहरें। अतः द्रव्य को प्रदेशवान होना ही चाहिये।

८९. **द्रव्य गुण व पर्याय तीनों के आकारों में क्या अन्तर ?**
तीनों का आकार समान है, क्योंकि गुण व पर्याय द्रव्य के सर्व भागों में व्यापकर रह रहे हैं।

९०. **आकार परिवर्तन किन द्रव्यों में होता है और क्यों ?**
जीव व पुद्गल के ही आकारों में परिवर्तन होता है, क्योंकि क्रियावान होने से इनके प्रदेशों में ही परिस्पन्दन होता है, शेष चार में नहीं।

(८. विशेष गुण)

(९१) **विशेष गुण किसे कहते हैं और कौन कौन से है ?**
जो सर्व द्रव्यों में न व्यापे (अपने-अपने द्रव्यों में रहे) उसको विशेष गुण कहते हैं। जैसे—
जीवमें चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र (सुख वीर्य) आदि; पुद्गल में स्पर्श रस गन्ध वर्ण;
धर्म द्रव्य में गति हेतुत्व; अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुत्व; आकाश द्रव्य में अवगाहना हेतुत्व; और काल द्रव्य में वर्तना हेतुत्व, वगैरह।

९२. **रूप गुण किसे कहते हैं ?**
चक्षु इन्द्रिय के विषय को अर्थात वर्ण को रूप गुण कहते हैं।

९३. **रूप कितने प्रकार का है ?**
पांच प्रकार का—काला, पीला, लाल, नीला, सफेद।

९४. **क्या नेत्र इन्द्रिय का विषय वर्ण ही होता है ?**
नहीं वर्ण व आकार दोनों नेत्र इन्द्रिय के विषय हैं परन्तु प्रधान होने से वर्ण को ही रूप गुण कहते हैं आकार को नहीं; क्योंकि आकार तो कदाचित हाथों से टटोलकर भी जाना जा सकता है, पर वर्ण सर्वथा नेत्र का ही विषय है।

९५. रस गुण किसे कहते हैं ?
जिह्वा इन्द्रिय के विषय को रस गुण कहते है, अर्थात जो चखने में आये सो रस है ।

९६. रस कितने प्रकार का होता है ?
पांच प्रकार का है—खट्टा, मीठा, कडुआ, कसायला व चरपरा ।

९७. क्या जिव्हा का विषय चखना ही है ?
नहीं बोलना भी है, पर रस गुण चखे जाने वाले विषय को ही कहते हैं ।

९८. गन्ध किसे कहते हैं ?
घ्राण इन्द्रिय के विषय को गन्ध कहते हैं । अर्थात जो सूंघकर जाना जाय ।

९९. गन्ध कितने प्रकार का होता है ?
दो प्रकार का —सुगन्ध व दुर्गन्ध ।

१००. स्पर्श गुण किसे कहते हैं ?
स्पर्शन इन्द्रिय के विषय को स्पर्श गुण कहते हैं, अर्थात जो छू कर जाना जाये ।

१०१. स्पर्श गुण कितने प्रकार का होता है ?
आठ प्रकार का—ठण्डा, गर्म, चिकना, रूखा, हलका, भारी, कठोर, कोमल ।

१०२. गति हेतुत्व गुण किसे कहते हैं ?
जीव व पुद्गल को गमन में सहकारी धर्मास्तिकाय के गुण को गति हेतुत्व कहते हैं ।

१०३. स्थिति हेतुत्व गुण किसे कहते हैं ?
जीव व पुद्गल को गति पूर्वक स्थिति करने में सहकारी अधर्मास्तिकाय के गुण को स्थिति हेतुत्व कहते हैं ।

१०४. अवगाहना हेतुत्व किसे कहते हैं ?
सर्व द्रव्यों को अवकाश देने में समर्थ आकाश के गुण को अवगाहना हेतुत्व कहते हैं ।

१०५. वर्तना हेतुत्व किसे कहते है ?

सर्व द्रव्यों को परिणमन करने में सहकारी काल द्रव्य के गुण को वर्तना हेतुत्व कहते हैं।

१०६. गति हेतुत्व, स्थिति हेतुत्व, अवगाहना हेतुत्व व वर्तना हेतुत्व कितने कितने प्रकार के हैं ?

ये केवल एक-एक प्रकार के ही होते हैं।

१०७. क्या गति हेतुत्व गुण अपने लिये भी निमित्त हो सकता है ?

नहीं, क्योंकि वह जीव व पुद्गल की गति में निमित्त होता है, स्वयं क्रियाविहीन होने से अपने को निमित्त नहीं हो सकता।

१०८. क्या रस व गति हेतुत्व गमन कर सकते हैं ?

द्रव्य से पृथक होकर तो गुण का गमन सम्भव नहीं, हां गतिमान द्रव्य के साथ ही उसका गुण भी अवश्य गमन करता है। गतिमान होने से पुद्गल के साथ रस का गमन सम्भव है पर गति विहीन होने से धर्मास्तिकाय के गति हेतुत्व का गमन सम्भव नहीं।

१०९. सभी पुद्गलों में चारों गुण पाये जाते हैं या हीनाधिक भी ?

सभी पुद्गलों में वे परमाणु हों या स्कन्ध रसादि चारों गुण होते हैं।

११०. जल में गन्ध, अग्नि में गन्ध व रस और वायु में रूप रस गन्ध नहीं पाये जाते।

ऐसा वास्तव में नहीं। स्थूल व्यक्ति न होने से स्थूल इन्द्रियों द्वारा उनका ग्रहण वहां भले न हो, परन्तु वास्तव में वे वहां हैं अवश्य; क्योंकि अगुरुलघुत्व के कारण वे पृथक नहीं हो सकते।

१११. परमाणु में हल्का भारी व कठोर नर्म स्पर्श नहीं होता ?

यह ठीक है, परन्तु ये स्पर्श की पर्याय हैं, गुण नहीं। इससे भी अधिक कहें तो ये केवल आपेक्षिक धर्म हैं जो स्कन्ध में देखे जा सकते हैं, परन्तु स्पर्श गुण की पर्याय नहीं है। स्पर्श का ही विषय होने से इन्हें स्पर्श गुण की पर्याय कहने का उपचार है।

११२. ऐसे विशेष गुण बताओ जो दो जाति के द्रव्यों में हों।

विशेष गुण अपनी जाति के द्रव्यों में ही रहता है, इसलिये दो जाति के द्रव्यों में एक विशेष गुण नहीं पाया जा सकता।

नोट:—(जीव के गुणों के लिये आगे देखो पृथक अधिकार)

(६. अनुजीवी प्रतिजीवी गुण)

(११३) अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

भाव स्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं, जैसे जीव में सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना और पुद्गल में स्पर्श रस गन्ध वर्ण आदि।

(११४) प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

वस्तु के अभावस्वरूप धर्म को प्रतिजीवी गुण कहते हैं जैसे—नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व वगैरह।

११५. भाव स्वरूप व अभाव स्वरूप से क्या समझे ?

जिन गुणों की प्रतीति व व्याख्या स्वतन्त्र रूप से हो सके है वे भाव स्वरूप गुण हैं जैसे ज्ञान, रस आदि। जिन धर्मों की प्रतीति व व्याख्या स्वतन्त्र रूप से न हो सके बल्कि अन्य गुणों का प्रतिषेध करके ही जिनका परिचय दिया जाना सम्भव हो वे अभावस्वरूप धर्म हैं, जैसे वस्तु में परचतुष्टय का अभाव ही उसका नास्तित्व धर्म तथा रूप रसादि का अभाव ही अमूर्तित्व धर्म है। वास्तव प्रतिजीवी नाम से कहे जाने वाले ये सब गुण नहीं 'धर्म हैं, क्योंकि अपेक्षा वश जाने जाते हैं, स्वतन्त्र सत्ता वाले नहीं हैं। अनुजीवी गुण भी हैं और धर्म भी।

११६. अनुजीवी या प्रतिजीवी गुण सामान्य हैं या विशेष ?

दोनों ही दोनों प्रकार के हैं—ज्ञान रस आदि विशेष अनुजीवी गुण हैं और चेतनत्व मूर्तत्व आदि सामान्य। सूक्ष्मत्व अगुरुलघुत्व आदि छहों द्रव्यों में पाये जाने से सामान्य प्रतिजीवी गुण हैं। अचेतनत्व अमूर्तत्व आदि विशेष भी हैं और सामान्य भी। यहां द्रव्यों में न पाये जाने से विशेष हैं और पांच-पांच में पाये जाने से सामान्य।

(११७) जीव के अनुजीवी गुण कौन से हैं ?

चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, जीवत्व, वैभाविक, कर्तृत्व, भोक्तृत्व वगैरह अनन्त गुण हैं।

(११८) जीव के प्रतिजीवी गुण कौन से हैं ?

अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व आदि।

११६. अजीव द्रव्यों के अनुजीवी गुण कौन से हैं ?

पुद्गल के—रूप रस गन्ध स्पर्श आदि। धर्म द्रव्य का गतिहेतुत्व, अधर्म द्रव्य का स्थिति हेतुत्व, आकाश द्रव्य का अवगाहना-हेतुत्व और काल द्रव्य का वर्तना हेतुत्व। इस प्रकार सब मिलकर अनन्त गुण हैं।

१२०. अजीव द्रव्यों के प्रतिजीवी गुण कौन से हैं ?

अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व इत्यादि ये सब जीव व अजीव में समान हैं। अचेतनत्व पांचों अजीव द्रव्यों में समान हैं। अमूर्तत्व पुद्गलातिरिक्त शेष पांच द्रव्यों में समान हैं।

२/४ जीव गुणाधिकार

(१. चेतना)

(१) चेतना किसको कहते हैं ?

जिसमें पदार्थों का प्रतिभास (प्रतिबिम्बित) हो उसको चेतना कहते हैं।

२. चेतन चेतना चैतन्य में क्या अन्तर है ?

चेतना स्वभाव है, उसका आधार जो जीव द्रव्य वह चेतन है। चेतन या चेतना के भाव को चैतन्य अर्थात चेतनत्व कहते हैं।

(३) चेतना के कितने भेद हैं ?

दो हैं—दर्शन चेतना और ज्ञान चेतना। (अथवा तीन है—ज्ञान चेतना, कर्म चेतना और कर्मफल चेतना)

४. चेतना तथा दर्शन ज्ञान में क्या भेद है ?

चेतना गुण या स्वभाव है और दर्शन ज्ञान उसकी उपयोगात्मक पर्यायें या व्यक्तियें।

(५) उपयोग किसे कहते हैं ?

जीव के लक्षणरूप चैतन्यानुविधायी परिणाम को उपयोग कहते हैं (अर्थात चेतना की परिणति विशेष ही उपयोग शब्द वाच्य है)

(६) उपयोग के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक दर्शनोपयोग दूसरा ज्ञानोपयोग।

७. **ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?**
ज्ञेयों से संवलित बाह्य चित्प्रकाश को ज्ञानोपयोग और अन्त-स्तत्वोपलब्धि रूप अन्तर्चित्प्रकाश को दर्शनोपयोग कहते हैं।
नोट:—विशेषता के लिये आगे पृथक-पृथक चर्चा की गई है।

८. **ज्ञान चेतना किसको कहते हैं ?**
साक्षी भाव से ज्ञेयों का जानना रूप ज्ञान चेतना, वीतरागी जनों में ही सम्भव है।

९. **कर्म चेतना किसे कहते हैं ?**
अहंकार रञ्जित कर्तृत्व व भोक्तृत्व के परिणाम कर्म चेतना है। यह सर्व रागी जीवों को होती है।

१०. **कर्म फल चेतना किसे कहते हैं ?**
सुख दुख के कारण मिलने पर उनमें सुख दुख का वेदन करना रूप चेतना के परिणाम कर्म फल चेतना है। यह सामान्य रूप से सभी रागी जीवों को होती है, फिर भी प्रधानतया एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में मानी गई है।

११. **क्या संज्ञी जीवों को कर्मफल चेतना नहीं है ?**
होती है, पर उनमें कर्म चेतना की प्रधानता है, क्योंकि वे सुख दुख की कारणकूट सामग्री को अपने अनुकूल करने के प्रति ही सदा रत रहते हैं. असंज्ञी पर्यन्त के सर्व जीव उन्हें करने को समर्थ न होने से जैसा तैसा भी सुख दुख प्राप्त होता है भोग लेते हैं, अतः वहाँ कर्मफल चेतना प्रधान है।

१२. **प्रत्येक जीव प्रति समय कुछ न कुछ जानता तो है ही। तब क्या उन्हें ज्ञान चेतना होती है ?**
नहीं, ज्ञान चेतना सर्व विकल्पों से अतीत सहज ज्ञाता दृष्टा-मात्र भाव को कहते हैं। साधारण जीवों का जानना इष्टा-निष्ट बुद्धिपूर्वक प्रयत्न विशेष के द्वारा होने से वैसा नहीं होता।

१३. **आपको अब पढ़ते समय कौन सी चेतना है और क्यों ?**
कर्म चेतना है, क्योंकि ज्ञान प्राप्ति के विकल्प सहित प्रयत्न विशेष द्वारा हो रही है।

१४. आगमोपयुक्त भी आपको ज्ञान चेतना क्यों नहीं ?
क्योंकि कर्ता बुद्धि सहित है, ज्ञाता दृष्टा भाव रूप नहीं है।

१५. संचेतना व संवेदना में क्या अन्तर है ?
संचेतना पदार्थों के प्रतिभास रूप से होती है और संवेदना सुख दुख रूप मे प्रतीति में आती है।

(२. ज्ञानापयोग सामान्य)

(१६) ज्ञान चेतना (ज्ञानोपयोग) किसको कहते हैं ?
अवान्तर सत्ता विशिष्ट विशेष पदार्थ को विषय करने वाली चेतना (उपयोग) को ज्ञान चेतना या ज्ञानोपयोग कहते हैं।

(१७) अवान्तर सत्ता किसे कहते हैं ?
किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवान्तर सत्ता कहते हैं (जैसे मनुष्य, घर, पट आदि)।

१८. ज्ञानोपयोग के कितने लक्षण प्रसिद्ध हैं ?
चार हैं—विशेष ग्रहण, साकार ग्रहण, सविकल्प ग्रहण और बाह्य चित्प्रकाश।

१९. विशेष ग्रहण से क्या समझे ?
यह मनुष्य है, यह घर है, यह ज्ञानी है, यह धर्मात्मा है, यह काला है, यह पीला है इस प्रकार के विकल्पों सहित जानने को विशेष ग्रहण कहते हैं।

२०. साकार व सविकल्प ग्रहण से क्या समझे ?
देशकालावच्छिन्न पदार्थ साकार होता है। मनुष्य पशु घर पट आदि पदार्थ विशेष आकृति वाले होने से देशावच्छिन्न हैं और बड़ा छोटा अब तक आजकल आदि के विकल्पों सहित पदार्थ कालावच्छिन्न हैं। ज्ञानी धर्मात्मा काला पीला आदि विकल्पों सहित भावावच्छिन्न हैं। तात्पर्य यह कि विशेष आकार प्रकारों वाले पदार्थ साकार व सविकल्प हैं। ज्ञान में उनका ग्रहण साकार ग्रहण है।

'मैं उस पदार्थ को जानूं', अब 'इसे छोड़कर इसे जानूं' ऐसा प्रयत्न विशेष विकल्प कहलाता है। ऐसे विकल्प सहित जानने को सविकल्प ग्रहण कहते हैं।

२१. बाह्य चित्प्रकाश से क्या समझे ?

अन्तरंग चेतना का झुकाव ज्ञेयों के प्रति रहना अर्थात उसका ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय रूप त्रिपुटी युक्त हो जाना ही बाह्यचित्प्रकाश है; क्योंकि एक तो इस प्रकार के उपयोग में बाह्य पदार्थों का ही प्रतिभास होता है और दूसरे अन्तर्चेतना का प्रयत्न व झुकाव बाहर की ओर होता है।

२२. तो क्या ज्ञानोपयोग स्वात्म ग्रहण को समर्थ नहीं ?

उसका आकृति सापेक्ष द्रव्यात्मक रूप ही उसका विषय है और सामान्य अन्तर्चेन प्रकाश के लिये वह भी स्वात्म नहीं परात्म ही है।

२३. ज्ञान के चारों लक्षणों का समन्वय करो।

विशेष ग्रहण स्वयं विकल्पात्मक है। विकल्पों में ज्ञेय पदार्थों के प्रति लक्ष्य रहने से वह साकार है। प्रतिबिम्ब रूप से बाह्य पदार्थ ही ज्ञान में प्रतिभाषित होते हैं स्वयं आत्मा नहीं; जैसे कि दर्पण में बाह्य पदार्थ ही प्रतिबिम्बित होते हैं स्वयं दर्पण नहीं। इसलिये उन आकारों या प्रतिबिम्बों का ग्रहण बाह्य चित्प्रकाश कहलाता है। अथवा रागी जनों के जानने का ढंग बाह्य ज्ञेयों के प्रति लक्ष्य करके प्रयत्न पूर्वक होता है, इसीसे वह बाह्य चित्प्रकाश कहलाता है।

२४. ज्ञान व अनुभव में क्या अन्तर है ?

'मैं इस पदार्थ को जानता हूँ' ऐसा बाह्य की ओर का विकल्प ज्ञान कहलाता है। और उस पदार्थ के निमित्त से जो सुख दुख की अन्तर्प्रतीति होती है वही उस पदार्थ का अनुभव कहलाता है। जैसे आंख से अग्नि का ज्ञान होता है और हाथ द्वारा उसे छूने पर हाथ जलने के दुःख की प्रतीति उसका अनुभव है।

२५. **अनुभव गुण का होता है या पर्याय का ?**
पर्याय का होता है, क्योंकि पर्याय के साथ ही उस उस समय उपयोग तन्मय होता है। द्रव्य व गुण तो पर्याय के कारण रूप से केवल जाने जाते हैं।

२६. **क्या ज्ञान गुण अपने को भी जान सकता है ?**
स्व पर प्रकाशक होने से अपने को भी जानना आवश्यक है, पर ज्ञेय रूप से प्राप्त व आत्मा का आकार भी चित्स्वभाव की अपेक्षा परपने को ही प्राप्त होता है।

२७. **ज्ञान चेतना (ज्ञानोपयोग) कितने प्रकार की है ?**
दो प्रकार की—परोक्ष व प्रत्यक्ष।

(२८) **परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?**
जो दूसरे की सहायता से (अर्थात इन्द्रिय मन व प्रकाशादि की सहायता से) पदार्थ को स्पष्ट जाने।

२९. **परोक्ष ज्ञान के कितने भेद हैं ?**
दो हैं—एक मति ज्ञान दूसरा श्रुत ज्ञान।

(३०) **प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?**
जो पदार्थ को स्पष्ट जाने।

३१. **प्रत्यक्ष ज्ञान के कितने भेद हैं ?**
दो हैं—एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

(३२) **सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?**
जो इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को एक देश स्पष्ट जाने (इन्द्रिय ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है)।

३३. **इन्द्रिय ज्ञान को तो ऊपर परोक्ष कहा गया है ?**
अन्य की सहायता की अपेक्षा रखने से वास्तव में वह परोक्ष ही है, पर लोक व्यवहार में प्रत्यक्ष माना जाने से ही उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है।

(३४) **पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?**
जो बिना किसी की सहायता के पदार्थ को स्पष्ट जाने।

(३५) पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—एक विकल प्रत्यक्ष दूसरा सकल प्रत्यक्ष ।

(३६) विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

जो रूपी पदार्थों को बिना किसी की सहायता के स्पष्ट जाने ।

(३७) विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक अवधि ज्ञान दूसरा मनःपर्याय ज्ञान ।

(३८) सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

केवल ज्ञान को ।

३९. प्रत्यक्ष व परोक्ष में क्या अन्तर है ?

विषय के आकार की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं । विशदता व अविशदता में अन्तर है । प्रत्यक्ष विशद होता है और परोक्ष अविशद । जैसे अन्धे को गुलाब के फूल का ज्ञान होना अविशद है और नेत्रवान को विशद ।

(३. मति ज्ञान)

(४०) मति ज्ञान किसको कहते हैं ?

इन्द्रिय व मन की सहायता से जो ज्ञान हो उसे मति ज्ञान कहते हैं (जैसे आंख से रूप का ज्ञान) ।

४१. मति ज्ञान किसको होता है ?

एकेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के सब जीवों को अपने अपने योग्य मतिज्ञान होता है ।

४२. अपने अपने योग्य से क्या समझे ?

उपलब्ध इन्द्रियों विषयक ही ज्ञान होता है अन्य इन्द्रियों जनित नहीं ।

(४३) मति ज्ञान के कितने भेद हैं ?

चार हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ।

(४४) अवग्रह किसे कहते हैं ?

इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य स्थान में (मौजूद जगह में) रहने पर, सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन के पीछे, अवान्तर सत्ता

सहित विशेष वस्तु के ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। जैसे यह मनुष्य है (अथवा यह सफेद सफेद सा कुछ है तो सही) इत्यादि। (नोट:—दर्शन का कथन आगे किया जायेगा)

(४५) ईहा ज्ञान किसको कहते हैं?

अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए अभिलाष स्वरूप ज्ञान को ईहाज्ञान कहते हैं। जैसे—ये ठाकुरदास प्रतीत होते हैं। (अथवा यह ध्वजा या बक पंक्ति सरीखी प्रतीत होती है)। यह ज्ञान इतना कमजोर होता है कि किसी पदार्थ की ईहा होकर छूट जाये तो कालान्तर में संशय या विस्मरण हो जाता है।

(४६) अवाय किसे कहते हैं?

ईहा से जाने हुए पदार्थ को यह वही है अन्य नहीं, ऐसे मजबूत ज्ञान को अवाय कहते हैं; जैसे—यह ठाकुरदास ही हैं अन्य नहीं हैं। (अथवा यह ध्वजा ही है बक पंक्ति नहीं)। अवाय से जाने हुए पदार्थ में संशय तो नहीं होता, परन्तु विस्मरण हो जाता है।

(४७) धारणा किसे कहते हैं?

जिस ज्ञान से जाने हुए पदार्थ में कालान्तर में संशय तथा विस्मरण नहीं होवे, उसे धारणा कहते हैं?

४८. प्रति ज्ञान के इन चारों भावों का स्पष्ट रूप व क्रम दर्शाओ?

(क) इन्द्रिय और पदार्थ का संयोग होते ही दर्शनोपयोग के अनन्तर प्रथम क्षण में पदार्थ का धुंधला सा सामान्य रूप ग्रहण होता है, जिसे अवग्रह कहते हैं। 'यह कुछ है तो सही' ऐसा प्रतिभास ही उसका रूप है?

(ख) तदनन्तर द्वितीय क्षण में ईहा होता है, अर्थात उस पदार्थ की ओर उपयोग को कुछ केन्द्रित करके निर्णय करने का प्रयत्न होता है।

(ग) तदनन्तर तृतीय क्षण में अवाय होता है अर्थात उस विषय का निश्चित ज्ञान हो जाता है।

(घ) तदन्तर धारणा होती है। अवाय और धारणा में इतना अन्तर है कि जब तक उस निर्णीत ज्ञान का संस्कार दृढ़ नहीं होता तब तक वह अवाय कहलाता है और उसका संस्कार इतना दृढ़ हो जाये कि कालान्तर में भी स्मरण किया जा सके तब वही ज्ञान धारणा नाम पाता है।

४६. अवग्रह आदि का यह क्रम प्रतीति में क्यों नहीं आता?
ये चारों बातें इतनी शीघ्रता के साथ हो जाती हैं कि साधारण बुद्धि से पकड़ में नहीं आतीं। विशेष उपयोग देने पर अवश्य प्रतीति में आती हैं।

५०. क्या मति ज्ञान का इतना ही कार्य है या कुछ और भी?
मतिज्ञान दो प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष व परोक्ष। उपरोक्त चार बातें तो उसका सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष रूप हैं। इसके पश्चात उसका परोक्ष रूप प्रारम्भ होता है, जिसके ३ भेद हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान व चिन्ता या तर्क। इन तीनों के लक्षण पहिले बता दिये गये हैं, देखो अध्याय १ अधिकार ३।

५१. मति ज्ञान के परोक्ष भेदों का क्रम दर्शाओ?
धारणा के संस्कार में बैठे हुए पदार्थ की कालान्तर में कदाचित स्मृति हो सकती है। स्मृति होने पर ही प्रत्यभिज्ञान होना संभव है, क्योंकि वर्तमान प्रत्यक्ष से पूर्व स्मृति का जोड़ अन्यथा हो नहीं सकता। एक ही विषय का पुनः पुनः प्रत्य-भिज्ञान होता रहे तब उस विषय सम्बन्धी व्याप्ति या तर्क ज्ञान उत्पन्न हो जाता है; अर्थात ऐसी धारणा दृढ़ हो जाती है कि जब जब और जहां जहां भी यह होगा तब तब व तहां तहां ही यह भी होगा और यदि यह न होगा तो यह भी न होगा। तर्क या व्याप्ति ज्ञान का ही हेतु रूप से प्रयोग करने पर अनुमान ज्ञान होता है जो श्रुतज्ञान के अन्तर्गत है।

५२. क्या प्रत्येक पदार्थ विषय मति ज्ञान में ये आठों बातें होती हैं?
नहीं, किसी को अथवा किसी समय केवल अवग्रह होकर छूट

जाता है अर्थात अभी अवग्रह हुआ ही था कि उपयोग अन्य विषय की ओर खिच गया। इसी प्रकार किसी को अवग्रह व ईहा होकर छूट जाते हैं, अवाय होने नहीं पाता। किसको अवग्रह ईहा अवाय ये तीनों हो जाने पर भी धारणा नहीं हो पाती। किसी को किसी समय धारणा सहित चारों ज्ञान भी हो जाते हैं; पर स्मृति का कभी काम ही नहीं पड़ता। इसी प्रकार किसी को स्मृति तो हो जाती है, पर प्रत्यभिज्ञान का अवसर प्राप्त नहीं होता। किसी को स्मृति व प्रत्यभिज्ञान हो जाने पर भी व्याप्ति या तर्क ज्ञान जागृत नहीं होता और किसी को व्याप्ति ज्ञान सहित उपरोक्त सर्वभेद हो जाते हैं। व्याप्ति हो जाने पर भी उसका अनुमान के लिए प्रयोग करे ही करे यह आवश्यक नहीं, पर कोई कोई कहीं कहीं उससे अनुमान भी कर लेता है।

इतनी बात अवश्य है कि आगे आगे के ज्ञान वालों को उससे पूर्व के सर्वज्ञान अवश्य होते हैं, क्योंकि पूर्व भेद के अभाव में अगला ज्ञान होना सम्भव नहीं। ऐसा नहीं हो सकता कि अवाय तो हो जाये और अवग्रह ईहा न हो। अवग्रह व ईहा होने पर ही अवाय सम्भव है, और इसी प्रकार धारणा होने पर ही स्मृति प्रत्यभिज्ञान आदि होने सम्भव हैं।

(५३) मति ज्ञान के विषयभूत पदार्थों के कितने भेद हैं ?

दो हैं—व्यक्त व अव्यक्त। (अथवा अर्थ व व्यञ्जन)

(५४) अवग्रहादि ज्ञान दोनों ही प्रकार के पदार्थों में होते हैं या कैसे ?

व्यक्त पदार्थों के अवग्रह आदि चारों होते हैं परन्तु अव्यक्त पदार्थ का केवल अवग्रह ही होता है।

(५५) अर्थावग्रह (व्यक्तावग्रह) किसे कहते हैं ?

व्यक्त पदार्थ के अवग्रह को अर्थावग्रह कहते हैं (जैसे नेत्र द्वारा देखना)

(५६) व्यञ्जनावग्रह किसे कहते हैं ?

अव्यक्त पदार्थ के अवग्रह को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं (जैसे

रमे हुए नाक में गन्ध का ग्रहण)।

(५७) व्यञ्जनावग्रह भी अर्थावग्रह की तरह सब इन्द्रियों और मन से होता है या कैसे ?

व्यञ्जनावग्रह चक्षु व मन के अतिरिक्त सभी इन्द्रियों से होता है।

(५८) व्यक्त व अव्यक्त पदार्थों के कितने भेद हैं ?

हर एक के १२ भेद हैं—बहु-एक, बहुविध-एकविध, क्षिप्र-अक्षिप्र, निःसृत-अनिःसृत, उक्त-अनुक्त, ध्रुव-अध्रुव।

५९. अवाय होने वाले को कितने ज्ञान हैं ?

तीन हैं—अवग्रह, ईहा व अवाय।

६०. देवदत्त को देखते ही पहिचान गया, बताओ मुझे कितने ज्ञान हुए ?

छह ज्ञान हुए—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, स्मृति व प्रत्यभिज्ञान। कुछ काल पूर्व उसे देखा था तब अवग्रह आदि चार ज्ञान हुए थे और अब उसे देखा है तब छहों हुए हैं।

६१. उपरोक्त सर्व विकल्पों को मिलाने पर मति ज्ञान के कुल कितने भेद हुए ?

अर्थावग्रह योग्य १२ पदार्थों के छहों इन्द्रियों द्वारा अवग्रह आदि चारों होते हैं। अतः ६×१२×४=२८८ हुए। व्यञ्जन या अव्यक्त १२ पदार्थ का नेत्र व मन रहित चार इन्द्रियों द्वारा केवल अवग्रह होता है। अतः ४×१२×१=४८। कुल मिलकर ३३६ भेद हुए। (ये तो प्रत्यक्ष मति ज्ञान के भेद हैं। इनमें ४८ की स्मृति आदि सम्भव नहीं। २८८ के स्मृति आदि तीनों परोक्ष भेद भी हो सकते हैं। अतः परोक्ष भेद कुल ४८+२८८×३=९१२ हुए। कुल मिलकर ३३६+९१२=१२४८ हुए)

(४. श्रुत ज्ञान)

(६२) **श्रुत ज्ञान किसे कहते हैं ?**

मति ज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्ध लिये हुए किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुत ज्ञान कहते हैं। जैसे घट शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कम्बुग्रीवादि रूप घटका ज्ञान (अथवा किसी व्यक्ति की आवाज सुनकर बिना देखे ही उस व्यक्ति का ज्ञान)।

६३. **श्रुत ज्ञात के कितने भेद हैं ?**

तीन भेद हैं—हिताहित ज्ञान; शब्द ज्ञान व कल्पना ज्ञान।

६४. **हिताहित रूप श्रुत ज्ञान किसे कहते हैं ?**

किसी पदार्थ को मतिज्ञान द्वारा जानकर 'यह मेरे लिये इष्ट है अथवा अनिष्ट, मैं इस विषय को प्राप्त करूं अथवा त्याग करूं, इत्यादि प्रकार का जो निर्णय अन्दर में होता है उसे हिताहित ज्ञान कहते हैं। जैसे—सुगन्धि मात्र को नासिका द्वारा मति ज्ञान से ग्रहण करके, चींटी 'खाद्य' मिष्टान्न है' यह न जानती हुई भी 'यह मेरा कोई इष्ट पदार्थ है' इतना मात्र जानकर, उस ओर चल देती है और अग्निको 'यह मेरे लिये कुछ अनिष्ट है' ऐसा जानकर वहां से हट जाती है।

६५. **शब्द ज्ञान किसे कहते हैं ?**

कर्णेन्द्रिय से या नेत्रेन्द्रिय से मतिज्ञान द्वारा कोई शब्द सुन कर या पढ़कर उसके वाच्य का ज्ञान हो जाना शब्द ज्ञान है।

६६. **शब्द ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?**

दो प्रकार का—द्रव्य श्रुत व भाव श्रुत।

६७. **द्रव्य श्रुत किसे कहते हैं ?**

शास्त्रों का अथवा किन्हीं पुस्तकों का अथवा केवल सुने व पढ़े शब्दों मात्र का ज्ञान द्रव्य श्रुत कहलाता है, जैसे अमुक शास्त्र में यह बात लिखी है और अमुक व्यक्ति यह कहता था इत्यादि।

६८. भाव श्रुत किसे कहते हैं ?

शास्त्र आदि के शब्द पढ़कर अथवा किसी वक्ता से सुनकर, उन शब्दों का वाच्य वाचक सम्बन्ध जैसा पहिले समझ रखा है वैसा स्मरण करके, शब्द पर से वाच्य पदार्थ का निर्णय कर लेना भाव श्रुत कहलाता है।

६९. कल्पना ज्ञान किसे कहते हैं ?

किसी विषय को देखकर या सुनकर अथवा अन्य किसी इन्द्रिय से जानकर जो मन में तत्सम्बन्धी विकल्प आदि उत्पन्न होते हैं, उसे कल्पना ज्ञान कहा जाता है; जैसे घर को देखकर 'इसमें जल भर देने से वह ठण्डा हो जाता है, गर्मियों में इसका प्रयोग अत्यन्त इष्ट है' इत्यादि।

७०. कल्पना ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—शृंखलाबद्ध व्यर्थ विकल्प और अनुमान ज्ञान।

७१. शृंखलाबद्ध विकल्प कैसे होते हैं ?

शेखचिल्ली की कल्पनाओं का जो मन में कदाचित एक के पीछे एक रूप से धारा प्रवाही कड़ीबद्ध कल्पनायें आने लगती हैं, वही यहाँ शृंखलाबद्ध विकल्प कहे गए हैं। जैसे—एक भिखारी को मतिज्ञान द्वारा देख व जानकर पहिले देश की भुखमरी का विकल्प जागृत हो जाता है और तदनन्तर 'सरकार में घूसखोरी ही इसका कारण है' ऐसा विकल्प स्वत: सामने आ धमकता है। इसी प्रकार दलबन्दी, चीन की दुष्टता, अमरीका की सहानुभूति, भावी भय की आशंका आदि अनेकों धारावाही कल्पनाओं की शृंखला चल निकलती है।

कल्पना की यह अटूट शृंखला किस विषय पर से प्रारम्भ होकर कहाँ पहुँच जायेगी, यह कहा नहीं जा सकता; जैसे भिखारी से प्रारम्भ होकर अमरीका व रूस के युद्ध में प्रविष्ट

हो ऐटम बमों द्वारा यह कल्पना एक क्षण में इस पृथ्वी को प्रलयंकर अग्नि में जलती देखने लगती है।

(७२) अनुमान ज्ञान किसे कहते हैं ?

साधन से साध्य के ज्ञान को कहते हैं जैसे—धूम देखकर अग्नि का ज्ञान अथवा किसी व्यक्ति की आवाज सुनकर उस व्यक्ति का ज्ञान।

७३. अनुमान ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान।

७४. स्वर्थानुमान किसे कहते हैं ?

बिना किसी अन्य के उपदेश के या हेतु आदि के या तर्क वितर्क के, जो ज्ञान स्वत: किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष करने के अनन्तर हो जाता है, वह स्वार्थानुमान है; जैसे धूम को देखकर अग्नि का ज्ञान स्वयं हो जाता है।

७५. परार्थानुमान किसे कहते हैं ?

किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा हेतु आदि देकर समझाये जाने पर जा ज्ञान होता है, वह परार्थानुमान है। (इस ज्ञान के अंगोपांगों का विशेष विस्तार पहले अध्याय १ के अधिकार ३ में किया है)।

७६. श्रुत ज्ञान के होने का क्या क्रम है ?

मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुत ज्ञान होता है।

७७. मतिज्ञान पूर्वक से क्या समझे ?

पहले किसी इन्द्रिय द्वारा विषय का प्रत्यक्ष होता है और फिर उससे सम्बन्धित अन्य विकल्प होते हैं, भले ही वे विकल्प हिताहित रूप हों अथवा कल्पना रूप अथवा वाच्यवाचक रूप या अनुमान रूप। अथवा स्मृति द्वारा किसी विषय का परोक्ष ज्ञान करके इसी प्रकार के विकल्प होते हैं। अथवा किसी वक्ता के शब्द व वाक्यों को मति ज्ञान द्वारा सुनकर उसके

द्वारा दिये गये हेतु उदाहरण आदि पर से किसी अन्य विषय का निर्णय किया जाता है, इत्यादि ।

७८. क्या मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुत ज्ञान होता है या अन्य प्रकार भी ?

कल्पना ज्ञान में पहिली कल्पना तो मतिज्ञान पूर्वक होती है और आगे आगे की सर्व कल्पनायें अपने से पूर्व वाली कल्पनाओं के आधार पर होने से श्रुतज्ञान पूर्वक होती हैं ।

७९. मति ज्ञान व श्रुत ज्ञान में क्या अन्तर है ?

इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा या स्मृति द्वारा जो प्रथम ज्ञान होता है वह तो मतिज्ञान है। उस विषय से सम्बन्ध रखने वाला अगला जो कड़ीबद्ध ज्ञान होता है, वह सब श्रुतज्ञान है ।

८०. मति व श्रुतज्ञान में कौन प्रत्यक्ष है और कौन परोक्ष ?

इन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, स्मृति आदि रूप मतिज्ञान परोक्ष है और श्रुतज्ञान के सारे विकल्प परोक्ष हैं ।

८१. श्रुत ज्ञान किस इन्द्रिय के निमित्त से होता है ?

हिताहित रूप श्रुतज्ञान में कोई इन्द्रिय विशेष निमित्त नहीं है, क्योंकि वह संस्कारवश केवल हिताहित के अभिप्राय की अवधारणा रूप से होता है, पदार्थ के आकार रूप से नहीं । श्रुत ज्ञान के अन्य सर्व विकल्प मन के निमित्त से होते हैं। अन्य कोई भी इन्द्रिय श्रुतज्ञान में निमित्त नहीं ।

८२. तब मनोमति ज्ञान व श्रुतज्ञान में क्या अन्तर है ?

पूर्व दृष्ट श्रुत या अनुभूत पदार्थ की स्मृति प्रत्यभिज्ञान व तर्क तो मनोमति ज्ञान के विकल्प हैं और तदाश्रित अन्य अन्य विषयों का ज्ञान श्रुत है ।

८३. श्रुत ज्ञान किसे होता है ?

सभी जीवों को होता है ।

८४. एकेन्द्रियादि असंज्ञी पर्यंत जीवों को मन के अभाव में वह कैसे सम्भव है?

उन्हें केवल हिताहित रूप ही श्रुत ज्ञान होता है अन्य नहीं। और संस्कारवश होने से उसमें मन का निमित्त होता नहीं।

८५. श्रुत ज्ञान का क्या विषय है?

रूपी व अरूपी, चेतन व अचेत सभी द्रव्यों की स्थूल सूक्ष्म कुछ पर्यायें इसका विषय है। अतः वह लगभग केवल ज्ञान के बराबर है।

८६. मोक्ष मार्ग में श्रुत ज्ञान का क्या स्थान है?

केवल ज्ञान की बराबरी करने से छद्मस्थ के ज्ञानों में इसका मूल्य सर्वोपरि है। अवधि व मन पर्यय ज्ञान यद्यपि चमत्कारिक हैं पर आत्मानुभूति में समर्थ होने से श्रुत ज्ञान ही मोक्ष मार्ग में प्रयोजनीय है, अवधि व मनः पर्यय नहीं।

(५. अवधिज्ञान)

(८७) अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव की मर्यादा लिये जो रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने। (नोट:—द्रव्य क्षेत्रादि की मर्यादा; रूपी पदार्थ आदि का क्या तात्पर्य है यह बात पहिले अध्याय १ अधिकार २ में बता दी गई)

८८. अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

देश प्रत्यक्ष है सर्व प्रत्यक्ष नहीं, क्योंकि सकल द्रव्य क्षेत्र काल भाव को नहीं जानता। लक्षण में आये मर्यादा शब्द से यह बात सूचित होती है।

८९. क्या अवधिज्ञानभूत भविष्यत की भी बात को जानता है?

हां, सात आठ भवों आगे पीछे तक की बात जान सकता है, परन्तु केवल पुद्गल द्रव्य की या उसके निमित्त से होने वाले अशुद्ध भावों की ही जान सकता है, शुद्ध जीव व उसके भावों

की नहीं। (अशुद्ध जीव व उसके भावों को कैसे जान सकता है, यह बात पहले अध्याय १ अधिकार २ में बता दी गई)।

९०. **स्मृति व अवधिज्ञान में क्या अन्तर है?**

यद्यपि किन्हीं जीवों को अपने व अपने से सम्बन्ध रखने वाले कुछ अन्य जीवों के पूर्व भवों की स्मृति हो जाती है, पर वह मति ज्ञान है और मन के निमित्त से होने के कारण परोक्ष है। अवधिज्ञान प्रत्यक्ष होता है। स्मृति ज्ञान के लिये पूर्व धारणा या संस्कार की आवश्यकता है, अवधि ज्ञान को उसकी आवश्यकता नहीं। वह नवीन व अदृष्ट विषय को भी जान सकता है।

९१. **अनुमान व अवधिज्ञान में क्या अन्तर है?**

अनुमान में भी पूर्व स्मृति आदि की अपेक्षा पड़ती है, तथा उसके लिये विशेष रूप से बुद्धि पूर्वक विचार करना पड़ता है। परन्तु अवधिज्ञान में विचार करने की आवश्यकता नहीं। जैसे पदार्थ के प्रति नेत्र जाते ही बिना विचारे उसका प्रत्यक्ष हो जाता है, उसी प्रकार विषय के प्रति अवधिज्ञान के उपयुक्त होते ही बिना विचारे उसका प्रत्यक्ष हो जाता है।

९२. **ज्योतिष ज्ञान से भी भूत भविष्यत का ज्ञान हो जाता है?**

ठीक है, पर वह श्रुत ज्ञान है, अवधिज्ञान नहीं। क्योंकि वह भी कुछ बाह्य लक्षणों आदि को देखकर ही अनुमान द्वारा उसका फलादेश करता है। अवधिज्ञान में लक्षण आदि का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं।

९३. **अवधिज्ञान कितने प्रकार का होता है?**

दो प्रकार का—क्षयोपशम निमित्तक व भव प्रत्यय।

९४. **क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान किसे कहते हैं?**

सम्यक्त्व व चारित्र के प्रभाव से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशमविशेष हो जाने पर जो मनुष्य व तिर्यञ्चों को

कदाचित उत्पन्न हो जाता है, वह क्षयोपशम निमित्तक कहलाता है।

९५. क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

तीन प्रकार का होता है—देशावधि, परमावधि व सर्वावधि।

९६. देशावधि किसे कहते हैं और किसे होता है ?

अत्यन्त अल्प शक्ति का धारण करने वाला देशावधि कहलाता है। तिर्यंच व मनुष्य दोनों को हो जाता है।

९७ देशावधि ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

छः प्रकार होता है—वर्द्धमान-हीयमान, अवस्थित-अनवस्थित, अनुगामी-अननुगामी।

९८. वर्द्धमान अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्पत्ति के पश्चात जो निरन्तर उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे।

९९. हीयमान अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्पत्ति के पश्चात जो निरन्तर उत्तरोत्तर घटता चला जाये।

१००. अवस्थित अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्पत्ति के पश्चात जो जैसा का तैसा रहे, न घटे न बढ़े।

१०१. अनवस्थित अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्पत्ति के पश्चात जो निश्चल रहे, एक रूप न टिके। कभी घटे कभी बढ़े।

१०२. अनुगामी अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

यह दो प्रकार का होता है—क्षेत्रानुगामी और भवानुगामी। उत्पत्ति वाले स्थान से उठकर अन्यत्र चले जाने पर भी जो ज्ञान व्यक्ति के साथ ही रहे वह क्षेत्रानुगामी है, और मृत्यु के पश्चात दूसरे भव में भी साथ जाये सो भवानुगामी है।

१०३ अननुगामी अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

अनुगामी से उलटा अननुगामी है। यह भी दो प्रकार का है—क्षेत्राननुगामी और भवाननुगामी। उत्पत्ति वाले स्थान से उठकर अन्यत्र जाने पर जो व्यक्ति के साथ न जाये बल्कि छूट

जाये वह क्षेत्राननुगामी है। इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात अगले भव में साथ न जाये वह भवाननुगामी है।

१०४. इनमें से तिर्यंचों को कौन से होते हैं और मनुष्यों को कौन से कारण सहित बताओ ?

तिर्यंचों को तो हीयमान, अनवस्थित व अननुगामी ही होते हैं, पर मनुष्यों को छहों हो सकते हैं। कारण कि तिर्यंचों के सम्यक्त्वादि गुण जघन्य होते हैं, वृद्धिगत नहीं होते; मनुष्यों के वृद्धिगत भी हो सकते हैं गुण की ही वृद्धि आदि के साथ ज्ञान की वृद्धि आदि का अविनाभाव सम्बन्ध है।

१०५. परमावधि किसे कहते हैं और किसे होता है ?

तपश्चरण विशेष के प्रभाव से तद्भव मोक्षगामी पुरुषों को ही होता है। जघन्य अवस्था में भी इसका विषय उत्कृष्ट देशावधि से असंख्यात गुणा होता है। वर्द्धमान व अनुगामी ही होता है हीयमान आदि चार भेद सम्भव नहीं।

१०६. सर्वावधि किसे कहते हैं और किसे होता है ?

तपश्चरण विशेष से चरम शरीरी मुनियों को ही होता है। इसका विषय उत्कृष्ट परमावधि से भी असंख्यात गुणा होता है। इसमें जघन्य उत्कृष्ट का भेद नहीं। सदा एक रूप अवस्थित व अनुगामी ही रहता है। वर्द्धमान आदि शेष चार भेद इसमें सम्भव नहीं।

१०७. परमावधि व सर्वावधि में क्या अन्तर है ?

यद्यपि दोनों ही चरम शरीरियों को साधु दशा में विशेष तपश्चरण से ही होते हैं, परन्तु परमावधि में तो जघन्य उत्कृष्ट के विकल्प होते हैं, सर्वावधि में नहीं। वह एक रूप ही होता है।

१०८. अवधिज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ?

सम्यग्दर्शन, चारित्र व तप विशेष द्वारा उत्पन्न होता है।

१०९. भव प्रत्यय अवधिज्ञान किसे कहते हैं और किनको होता है ?
केवल भव के सम्बन्ध से जो सभी देवों व नारकीयों का सामान्य रूप से होता है, वह भव प्रत्यय कहलाता है।

११०. क्या भव प्रत्यय में ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम की आवश्यकता नहीं ?
नहीं, कर्म के क्षयोपशम बिना तो कोई भी ज्ञान होना सम्भव नहीं। इतनी बात है कि यहां वह क्षयोपशम बिना किसी चारित्र आदि की साधना के स्वतः उस भव के निमित्त मात्र से हो जाता है, जब कि क्षयोपशम निमित्तक में वह सम्यक्त्वादि की विशेष साधना के प्रभाव से होता है।

१११. मिथ्यादृष्टियों को भी तो अवधिज्ञान कहा गया है ?
उसे विभंग ज्ञान कहते हैं और प्राय भवः प्रत्यय ही होता है। कदाचित मनुष्य व तिर्यंचों को होता है तो वह क्षणमात्र पश्चात ही नष्ट हो जाता है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि मनुष्य तिर्यंचों में वह उत्पन्न नहीं होता, बल्कि अवधिज्ञानी सम्यदृष्टियों का सम्यक्त्व टूट जाने पर जब वे मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त होते हैं तब उनमें क्षण मात्र के लिये वह पहिला ही अवधिज्ञान कदाचित पाया जाता है।

११२. भव प्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि होता है या परमावधि कारण, सहित बताओ ?
वह देशावधि ही होता है और वह भी जघन्य दशा वाला। परमावधि व सर्वावधि वहां सम्भव नहीं। कारण कि तपश्चरण व चारित्र को देव नारकियों में अवकाश नहीं, जिसके निमित्त से कि उत्कृष्ट ज्ञान हो सके। सम्यग्दर्शन अवश्य किसी किसी को होता है पर चारित्रहीन वह अकेला उत्कृष्ट ज्ञान को कारण नहीं।

११३. प्रतिपाती ज्ञान किसे कहते हैं ?
जो होकर छूट जावे उसे प्रतिपाती कहते हैं।

११४. अप्रतिपाती ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्पन्न होने के पश्चात केवल ज्ञान होने तक जो न छूटे उसे अप्रतिपाती कहते हैं।

११५. देशावधि आदि में कौन प्रतिपाती और कौन अप्रतिपाती ?

देशावधि प्रतिपाती है और परमावधि व सर्वावधि अप्रतिपाती ही।

११६. तो क्या देशावधि वाले को केवल ज्ञान नहीं होता ?

कोई नियम नहीं, हो भी जाये और न भी होय। पर परमावधि व सर्वावधि वाले को नियम से होता है।

(६. मनः पर्यय ज्ञान)

(११७) मनः पर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

द्रव्य क्षेत्र काल व भाव की मर्यादा लिये हुए जो दूसरे के मन में तिष्ठते रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने।

११८. दूसरे के मन में तिष्ठते पदार्थ क्या ?

मन द्वारा जिस विषय का स्मरण या विचार किया जाता है, वही मन में स्थित पदार्थ है। ज्ञान में पड़ा ज्ञेय का आकार ही इस का तात्पर्य है।

११९. मन में स्थित रूपी पदार्थ से क्या समझे ?

यदि मन में स्थित वह ज्ञेयाकार पुद्गल का है अथवा तन्निमित्तक जीव के अशुद्ध भावों का है, अर्थात यदि मन इन चीजों का विचार कर रहा है, तब तो उसमें मनः पर्यय का व्यापार चल सकता है अन्यथा नहीं। वीतरागी जनों के मन में स्थित साक्षी रूप साम्य भाव अथवा ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय की त्रिपुटी से रहित आत्म प्रकाश में रमणता का भाव, वह नहीं जान सकता।

१२०. मनः पर्यय ज्ञान भूत भविष्यत को भी विषय करता है ?

हां, किसी व्यक्ति ने आज से कुछ काल पहले क्या विचारा या जाना था, अब क्या विचार रहा है और आगे क्या

विचारेगा, ऐसे त्रिकाली मनोगत विषय को यह ज्ञान ग्रहण करने में समर्थ है।

१२१. मनः पर्यय ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का होता है—ऋजुमति व विपुलमति।

१२२. ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

मन में स्थित सरल या सीधे साधे पदार्थ को जानना ऋजुमति है।

१२३. विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

मन में स्थित वक्र या टेढ़े पदार्थ का जानना विपुलमति है।

१२४. सरल या वक्र विषय क्या ?

मायाचारी युक्त मन का विचार वक्रविषय है और सरल मन का विचार सरल विषय है।

१२५. मनः पर्यय ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ?

सम्यक्त्व व तप विशेष के प्रभाव से ही होता है।

१२६. मनः पर्यय ज्ञान किनको होता है ?

वीतरागी साधुओं को ही होता है। अन्य साधारण मनुष्यों का या तिर्यंच नारकी व देवों को नहीं होता है। तीर्थंकरों व गणधरों को दीक्षा धारण करते समय ही प्रगट हो जाता है।

१२७. ऋजुमति व विपुलमति में क्या अन्तर है ?

(क) ऋजुमति का विषय सरल व स्थूल है तथा विपुलमति का सरल स्थूल के साथ साथ वक्र व सूक्ष्म भी।

(ख) ऋजुमति प्रतिपाती है अर्थात उत्पन्न होने के पश्चात छूट भी जाता है, पर विपुलमति अप्रतिपाती है, बिना केवल ज्ञान हुए नहीं छूटता।

(ग) ऋजुमति अन्य मुनियों को भी हो सकता है पर विपुलमति चरम शरीरी मुनियों को ही होता है।

(घ) इसलिये ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति अधिक विशुद्ध है।

१२८ मनः पर्यय में निमित्त क्या ?

मनोमति ज्ञान पूर्वक होने से मनोनिमित्तक है।

१२९. मन के निमित्त से होने के कारण इसे परोक्ष कहना चाहिये ?

नहीं, क्योंकि यहां मतिज्ञान की भांति मन का साक्षात निमित्त नहीं है, परम्परा निमित्त है। अर्थात यह ज्ञान मनोगति पूर्वक 'इसके मन क्या है' ऐसा कुछ विचार होने के पश्चात प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न होता है।

१३०. हम भी तो दूसरे मन की अनेकों बातें जान लेते हैं ?

जान अवश्य लेते हैं, पर वचन मुखाकृति व शरीर की क्रिया आदि बाह्य लक्षणों पर से अनुमान लगाकर जानते हैं, प्रत्यक्ष नहीं। इसलिये वह श्रुतज्ञान है मनः पर्यय नहीं।

१३१. अवधि व मनः पर्यय में क्या अन्तर है ?

अवधिज्ञान बाह्य के भौतिक पदार्थों के विषय में अथवा जीव की अशुद्ध द्रव्य पर्यायों के विषय में ही जानता है, जब कि मनःपर्यय जीव के अशुद्ध भाव पर्यायों के विषय में जानता है इसलिये अवधि ज्ञान का विषय यद्यपि मनःपर्यय से अधिक है, परन्तु स्थूल है। मनः पर्यय का विषय भावात्मक होने से सूक्ष्म है। इसी से अवधि की अपेक्षा मनः पर्यय विशुद्ध है।

१३२. अवधि व मनपर्यय ज्ञान तो बड़े चमत्कारिक हैं। किसी को हो जाये तो ?

लौकिक जनों के लिये ही आकर्षण हैं। मोक्षमार्गियों के लिये इनका कोई मूल्य नहीं। उन्हें तो श्रुतज्ञान ही चमत्कारिक है, जो यद्यपि परोक्ष है पर सर्व लोकालोक सहित निज शुद्धात्म तत्व को भी ग्रहण करने में समर्थ होने से मोक्ष का साधन है।

(७. केवल ज्ञान)

१३३. केवल ज्ञान किस को कहते हैं ?

जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को युगवत (एक साथ स्पष्ट जाने।

१३४. त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों से क्या समझे ?

छहों द्रव्य, उनकी पृथक पृथक अनन्तानन्त व्यक्ति में, प्रत्येक के अनन्तानन्त गुण धर्म शक्ति व स्वभाव, उनमें से प्रत्येक की तीनों कालों में होने योग्य सर्व पर्यायें। यह सब कुछ केवल ज्ञान युगपत जानता है।

१३५. युगपत से क्या समझे ?

जिस प्रकार हम तुम एक विषय को छोड़कर दूसरे को और उसे छोड़कर तीसरे को अटक अटक कर जानते हैं, उस प्रकार यह ज्ञान विषयों को आगे पीछे के क्रम से नहीं जानता, बल्कि सब को एक साथ जानता है; जैसे कि सारे दिल्ली नगर का ज्ञान।

१३६. केवल ज्ञान में 'केवल' शब्द से क्या समझे ?

केवल का अर्थ निःसहाय है। अर्थात् उस ज्ञान को इन्द्रिय प्रकाश की सहायता की अथवा ज्ञेय पदार्थ के आश्रय को, अथवा जानने के प्रति कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सहज जानना ही उसका स्वभाव है।

१३७. केवल ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

इसके कोई भेद प्रभेद नहीं होते। एक ही प्रकार का होता है।

१३८ केवल ज्ञान किनको होता है ?

अर्हंत व सिद्ध भगवान को ही होता है, अन्य संसारी जीवों को नहीं।

१३९. ज्ञान का लक्षण सविकल्प उपयोग है। क्या केवल ज्ञान में भी किसी प्रकार का विकल्प होता है ?

हां होता है, अन्यथा वह ज्ञान ही न रहे। 'विकल्प' शब्द के दो अर्थ हैं—एक राग और दूसरा ज्ञान में ज्ञेयों के विशेष आकार। यहां विकल्प का अर्थ मोहजनित राग न समझना परन्तु ज्ञानात्मक आकार समझना। वास्तव में यह ज्ञान सविकल्प निर्विकल्प है।

१४०. सविकल्पक निर्विकल्प से क्या समझे ?

ज्ञान में ज्ञेयों के आकार प्रत्यक्ष होते हैं, इसलिये सविकल्पक हैं। 'मैं इस पदार्थ को जानूं' इस प्रकार का विकल्प नहीं होता इसलिये निर्विकल्प है।

१४१. केवल ज्ञानी निश्चय से आत्मा को जानते हैं, व्यवहार से जगत को भी जानते हैं। क्या समझे ?

केवल ज्ञान में समस्त पदार्थ ज्ञेयाकार रूप से प्रतिभासित मात्र होते हैं। दर्पण की भांति वह प्रतिभास उसका निज रूप है, ज्ञेय पदार्थों का रूप नहीं है। इसलिये वे वास्तव में ज्ञानात्मक निज आत्मा को अथवा प्रतिभास युक्त निज ज्ञान को ही जानते हैं, जगत को नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि ज्ञेयाकार रूप से भी जगत न जाना जा रहा हो। ज्ञान में पड़े उन ज्ञेयाकारों को ही जगत का ज्ञान कहना व्यवहार है।

१४२. केवली भगवान तो जगत को व्यवहार से जानते हैं तो क्या हम उसे निश्चय से जानते हैं ?

नहीं, कोई भी दूसरे पदार्थ को निश्चय से नहीं जान सकता, क्योंकि निश्चयनय अभेद या तन्मयता अर्थात तत्स्वरूपता को दर्शाता है। तन्मय होकर पदार्थ का अनुभव किया जाता है पदार्थ को जाना नहीं जाता। अनुभव भी वास्तव उस पदार्थ के निमित्त से उत्पन्न निज सुख दुख का ही होता है पदार्थ का नहीं। इसलिये पदार्थ को जानना व्यवहार से ही है निश्चय से नहीं क्योंकि व्यवहार नय ही अन्य में अन्य का उपचार करता है।

नोट:—(यह कथन जैनागम का अभिप्राय व्यक्त करने मात्र के लिये समझना अन्यथा शुद्धात्मा को प्राप्त केवली में ऐसा होना युक्ति सिद्ध नहीं है, क्योंकि उसका स्वरूप तो चित्प्रकाश मात्र है।)

(८. दर्शनोपयोग)

(१४३) दर्शन चेतना (दर्शनोपयोग) किसको कहते हैं ?

जिसमें महासत्ता (सामान्य का) प्रतिभास (निराकार झलक) हो उसको दर्शनचेतना या दर्शनोपयोग कहते हैं।

(१४४) महासत्ता किसको कहते हैं ?

समस्त पदार्थों के अस्तित्व को ग्रहण करने वाली सत्ता को महासत्ता कहते हैं; जैसे—सर्व पदार्थ सत् की अपेक्षा सामान्य है।

१४५. दर्शनोपयोग के कितने लक्षण प्रसिद्ध हैं ?

चार हैं—सामान्य प्रतिभास, निराकार प्रतिभास, निर्विकल्प प्रतिभास और अन्तर्चित्प्रकाश।

१४६. सामान्य प्रतिभास से क्या समझें ?

'मैं इसको जानता हूँ' अथवा 'यह ऐसा है' 'वह वैसा है' इत्यादि विकल्प जिस उपयोग में नहीं होते उसे सामान्य प्रतिभास कहते हैं; जैसे—प्रतिबिम्बित दर्पण में प्रतिबिम्बों की ओर लक्ष्य न करके केवल दर्पण की स्वच्छता की ओर लक्ष्य करना। अथवा ज्ञेयकारों से रहित केवल चेतना प्रकाश की अन्तर्प्रतीति सामान्य प्रतिभास है।

१४७. निराकार व निर्विकल्प प्रतिभास से क्या समझें ?

ज्ञेयाकारों से रहित होने से वह उपरोक्त प्रतिभास ही निराकार है, और ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय के अथवा ज्ञेय की विशेषताओं के विकल्पों से शून्य होने के कारण वही निर्विकल्प है।

१४८. अन्तर्चित्प्रकाश से क्या समझें ?

चेतन प्रकाश की इस प्रतीति में उसकी वृत्ति अन्तर्मुखी होने से वही अन्तर्चित्प्रकाश है। अथवा स्वच्छता का सामान्य प्रतिभास ही अन्तरात्मा का स्वरूप है, इसलिये वह अन्तर्चित्प्रकाश है।

१४९. दर्शन के चारों लक्षणों का समन्वय करो ?

(देखो ऊपर प्रश्न नं १४६-१४८)

१५०. दर्शन व अनुभव में क्या अन्तर है ?

चित्प्रकाश की अन्तर्प्रतीति की अपेक्षा वह दर्शन है और तज्जनित निर्विकल्प आनन्द की प्रतीति युक्त होने से वही आत्मानुभव या अनुभूति है। क्योंकि अनुभव का तन्मयता वाला लक्षण यहां पूर्णतया घटित होता है।

१५१. दर्शन तो सर्व जीवों को होता है तो क्या वे सब आत्मानुभवी हैं ?

नहीं, उनको दर्शन का भी स्वरूप यद्यपि होता तो ऐसा ही है, पर उसकी विशेष प्रतीति न होने से वहां आनन्दानुभूति नहीं हो पाती।

(१५२) दर्शन कब होता है ?

ज्ञान से पहिले दर्शन होता है। बिना दर्शन के अल्पज्ञ जनों को ज्ञान नहीं होता। परन्तु सर्वज्ञदेव के ज्ञान व दर्शन साथ साथ होते हैं।

१५३. छद्मस्थों को ज्ञान से पहले दर्शन कैसा होता है ?

एक इन्द्रिय से जानते जानते जब व्यक्ति दूसरी इन्द्रिय से जानने के सम्मुख होता है, तब एक क्षण के लिये पहली इन्द्रिय का व्यापार तो रुक जाता है और अभी दूसरी इन्द्रिय का व्यापार प्रारम्भ नहीं हुआ होता। इस बीच के अन्तराल में उपयोग की जो क्षणिक अवस्था रहती है, वही छद्मस्थों के ज्ञान से पहले होने वाला दर्शनोपयोग है। किसी भी ज्ञेय का ग्रहण न होने से वह उस समय सामान्य प्रतिभासमात्र ही होता है, परन्तु वह क्षण इतना सूक्ष्म है कि साधारण बुद्धि की पकड़ में नहीं आता। इसी से वहां निर्विकल्पता की अनुभूति नहीं होती।

१५४ सर्वज्ञ का ज्ञान व दर्शन युगपत कैसे होता है ?

जैसे दर्पण व तद्गत प्रतिबिम्ब दोनों में से किसी भी एक की ओर लक्ष्य न करें तो दोनों बातें युगपत दिखाई देती हैं, वैसे ही सर्वज्ञ को आत्मा की स्वच्छता तथा तद्भत्र ज्ञेयाकार युगपत दिखाई देते हैं। वहां आत्मा की स्वच्छता के सामान्य प्रतिभास वाला अंश दर्शन है और प्रतिबिम्बों के विशेष प्रतिभास वाला अंश ज्ञान है। (यह कथन भी जैनागम का अभिप्राय व्यक्त करने के लिये किया गया समझना, अन्यथा शुद्धात्मा को प्राप्त केवली में ऐसा होना युक्ति सिद्ध नहीं है क्योंकि उसका स्वरूप तो चित्प्रकाश मात्र है)

१५५. छद्मस्थों को इस प्रकार दर्शन व ज्ञान युगपत क्यों नहीं होता ?

अल्प मात्र पदार्थों को जानने की शक्ति रखने वाले छद्मस्थों में 'मैं इस पदार्थ को छोड़ कर अब दूसरे पदार्थ को जानूं' इस प्रकार का विकल्प या प्रयत्न विशेष पाया जाता है। इसलिये उनका उपयोग बराबर बदलता रहता है, अतः उसमें आगे पीछे का क्रम पड़ना स्वाभाविक है।

१५६. सर्वज्ञ के उपयोग में क्रम क्यों नहीं पड़ता ?

सर्व को युगपत जान लेने के कारण सर्वज्ञ को नवीन जानने के लिये कुछ शेष नहीं रहता, जिससे कि वह एक को छोड़ कर दूसरे को जानने के प्रति उद्यम करे।

(१५७) दर्शन चेतना (दर्शनोपयोग) के कितने भेद हैं ?

चार हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन।

(१५८) चक्षु दर्शन किसे कहते हैं ?

नेत्र इन्द्रिय जन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते हैं।

(१५९) अचक्षु दर्शन किसे कहते हैं ?

चक्षु के सिवाय अन्य इन्द्रियों और मन सम्बन्धित मतिज्ञान से

पहले होने वाला सामान्य प्रतिभास या अवलोकन चक्षुदर्शन कहलाता है ।

(१६०) अवधि दर्शन किसे कहते हैं ?

अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधि-दर्शन कहते हैं ।

(१६१) केवल दर्शन किसे कहते हैं ?

केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को केवल-दर्शन कहते हैं ।

१६२. 'दर्शन' सामान्य प्रतिभास का नाम है फिर उसमें भेद होने कैसे सम्भव हैं ?

वास्तव में दर्शन तो एक ही प्रकार का है, यह भेद भिन्न ज्ञानों के कारणपने की अपेक्षा कर दिये गये हैं । जिस ज्ञान से पहिले हो वह नाम उस दर्शन को दे। दया जाता है ।

१६३. मतिज्ञान से पहिले कौन सा दर्शन होता है और क्यों ?

चक्षु अचक्षु दर्शन ही मतिज्ञान के दर्शन हैं, क्योंकि इन्द्रिय जन्य ज्ञान की ही मतिज्ञान संज्ञा है ।

१६४. चक्षु इन्द्रिय की भांति अन्य इन्द्रियों के पृथक पृथक दर्शन कहने चाहिये थे ?

यह कोई दोष नहीं है । भेद करने पर प्रत्येक इन्द्रिय के पृथक पृथक दर्शन कह सकते हैं ।

१६५. फिर चक्षु दर्शन को पृथक क्यों कहा ?

क्योंकि चक्षु इन्द्रिय जन्य ज्ञान को भी लोक में देखना या दर्शन करना कहते हैं । उस ज्ञान से उस इन्द्रिय के दर्शन को पृथक करने के लिये उसका विशेष निर्देश करना न्याय है ।

१६६. श्रुत ज्ञान से पूर्व कौन सा दर्शन होता है ?

मतिज्ञान पूर्वक होने से श्रुतज्ञान का पृथक से कोई दर्शन नहीं । पहले दर्शन तदनन्तर मतिज्ञान और तदनन्त तत्सम्बन्धी श्रुत ज्ञान, ऐसा क्रम है ।

१६७. अवधि ज्ञान से पूर्व कौन सा दर्शन होता है ?

अवधि दर्शन

१६८. मन पर्यय ज्ञान से पहिले कौन सा दर्शन होता है ?

मनोमति ज्ञान पूर्वक होने से वह ज्ञान ही इसके दर्शन के स्थान पर है। अतः पृथक से इसके दर्शन की कोई आवश्यकता नहीं।

१६९. केवल ज्ञान से पहिले कौन सा दर्शन होता है ?

केवल ज्ञान से पहले नहीं बल्कि उसके साथ साथ केवल दर्शन होता है, क्योंकि उसमें दर्शन ज्ञान का क्रम नहीं होता।

(९. सम्यक्त्व)

(१७०) सम्यक्त्व गुण किसको कहते हैं ?

जिस गुण के प्रगट (व्यक्त) होने पर अपने शुद्ध आत्मा का प्रतिभास हो उसको सम्यक्त्व गुण कहते हैं।

१७१. सम्यक्त्व व सम्यग्दर्शन में क्या अन्तर है ?

सम्यक्त्व गुण है और सम्यग्दर्शन उसकी पर्याय।

१७२. सम्यक्त्व गुण की कितनी पर्याय होती है ?

दो होती हैं-एक मिथ्यादर्शन, दूसरी सम्यग्दर्शन।

१७३. मिथ्या दर्शन किसे कहते हैं ?

तत्वों में तथा आत्मा के स्वरूप में विपरीत व अन्यथा श्रद्धा को मिथ्यादर्शन कहते हैं जैसे शरीर को 'मैं' रूप समझना।

१७४. मिथ्यादर्शन के कितने भेद हैं ?

एकान्त, विपरीत संशय, अज्ञान व विषय इस प्रकार पांच भेद हैं। उनका विस्तार आगे अध्याय ३ में किया गया है।

१७५. सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

तत्वों में तथा आत्म के स्वरूप में समीचीन श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं; जैसे शरीर को जड़ और आत्मा को चेतन प्रकाश रूप समझना।

१७६. सम्यग्दर्शन कितने प्रकार का है ?

तीन प्रकार का है—औपशमिक, क्षायिक व क्षयोपशमिक।

१७७. औपशमिकादि सम्यग्दर्शन किन्हें कहते हैं ?

मिथ्यात्व कर्म के उपशमादि के निमित्त से आविर्भूत होने के कारण उनकी औपशमिकादि संज्ञा है । इन का अर्थ आगे अध्याय ३ में दिया गया है ।

(१० चारित्र)

(१७८) चरित्र किसको कहते हैं ?

बाह्य व अभ्यन्तर क्रिया के निरोध से प्रादुर्भूत आत्मा की शुद्धि विशेष को चारित्र कहते हैं ।

(१७९) बाह्य क्रिया किसको कहते हैं ?

हिंसा करना, झूठ करना, चोरी करना मैथुन करना और परिग्रह संचय करना ।

(१८०) आभ्यान्तर क्रिया किसे कहते हैं ?

योग व कषाय (उपयोग) को आभ्यन्तर क्रिया कहते हैं।

(योग व उपयोग का विस्तार आगे पृथक शीर्षक में किया गया है)

(१८१) कषाय किसे कहते हैं ?

क्रोध, मान, माया, लोभ रूप आत्म के विभाव परिणामों को कषाय कहते हैं ।

(१८२) चारित्र के कितने भेद हैं ?

चार हैं—स्वरूपाचरण चरित्र, देश चारित्र, सकल चारित्र व यथाख्यात चरित्र ।

(१८३) स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

शुद्धानुभव के अविनाभावी चारित्र विशेष को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं ।

(१८४) देश-चारित्र किसे कहते हैं ?

श्रावक के व्रतों को देश चारित्र कहते हैं । (देखो रत्नकाण्ड श्रावकाचार)

(१८५) सकल चारित्र किसे कहते हैं ?

मुनियों के व्रतों को सकल चरित्र कहते हैं ।

(१८६) यथाख्याव चारित्र किसे कहते हैं ?

कषायो के सर्वथा अभाव से प्रादुर्भूत आत्मा की शुद्धि विशेष को यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

१८७. चारों चारित्र किन- किन को होते हैं ?

स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थान से १३ वें गुणस्थान तक होता । उसका जघन्य अंश चौथे में और उत्कृष्ट अंश १४ वें में होता है । देश चारित्र पंचम गुणस्थान की ११ प्रतिमाओं में होता है । जघन्य अंश पहली प्रतिमा में और उत्कृष्ट अंश ११ वीं प्रतिमा में । सफल चारित्र छटे से दसवें गुण स्थान तक होता है । जघन्य छटे में और उत्कृष्ट १० वें में ।

यथाख्यात चरित्र ११ वें से १४ वें गुण स्थान तक होता है । जघन्व १० वें में और उत्कृष्ट १४ वें में । (विशेष आगे देखो अध्याय ४)

१८८. सकल चारित्र के भेद बताओ ?

पांच है–सामायिक, छेदापस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म-साम्पराय और यथाख्यात ।

१८९. सामायिक चरित्र किसे कहते हैं ?

लाभ अलाभ में, शत्रु मित्र में, दुःख सुख में, नगर अरण्य में, निन्दा प्रशंसा में, इत्यादि सब द्वन्दों में समता रखना । राग द्वेष, इष्टानिष्ट बुद्धि या हर्ष विषाद जागृत न हो सामायिक चरित्र है ।

१९०. माला जपने को भी सामायिक कहते हैं ?

वह केवल उपचार कथन है, क्योंकि वहां भी कुछ काल के

लिये इन द्वन्दों से उपयोग हटा कर पंचपरमेष्ठी आदि के प्रति लगाने का अभ्यास किया जाता है, और इस प्रकार उतने के। लिये उसमें भी आंशिक समता के चिन्ह प्रगट हो जाते हैं।

१६१. **सामायिक चारित्र किसको होता है ?**

छटे गुण स्थानवर्ती मुनि से लेकर ९ गुणस्थान तक होता है छटे गुणस्थान में उसका जघन्य अंश होता है और ९ वें में उत्कृष्ट।

१६२. **देश चारित्र में भी तो सामायिक व्रत होता है ?**

वह सामायिक चरित्र का अभ्यास है, जो निश्चित काल पर्यन्त प्रतिज्ञा पूर्वक किया जाता है, पर यहां उन गुणस्थानवर्ती मुनियों का स्वभाव ही ऐसा हो जाता है, और इसी लिये वह चारित्र नाम पाता है।

१६३. **ध्यान रूप सामायिक समय होता है या अन्य समयों में भी ?**

उन वीतरागी साधुओं का जीवन या स्वभाव ही समता मयी हो जाने से उन्हे वह चारित्र २४ घन्टे होता है, भले ध्यान करो या उपदेश दो या आहार विहार आदि क्रिया करो। इतनी बात अवश्य है कि ध्यान के समय वह विशेष वृद्धिगत होता है।

१६४. **छेदोपस्थापना चारित्र किसे कहते हैं ?**

पूर्व संस्कार वश या कर्मोदय वश जब साधु को जो व्रतों आदि के धारण पोषण के विकल्प रहते हैं उसे छेदो पस्थापना चारित्र कहते हैं। सामायिक रूप यथार्थ स्वभाव का छेद हो जाना तथा उपयोग को अशुभ से रोक कर व्रतों आदि के शुभ भावों में स्थापित करना, ऐसा इसका अर्थ है।

१६५. **छेदोपस्थाना चारित्र किसको होता है ?**

यह भी छटे से ९ वें गुणस्थान तक होता है। पर यहां छटे में उत्कृष्ट तथा ९ वें में जघन्य होता है, क्योंकि विकल्पात्मक होने से यह वास्तव में सामायिक से उलटा है। जूं जूं साधु ऊपर की भूमिका में पहुँचता है तूं तूं अधिक अधिक सम होता

जाता है और विकल्प उत्तरोत्तर घटते जाते हैं।

१९६. परिहार विशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं ?

सामायिक चारित्र के प्रभाव से कषायों की अत्यन्त क्षति या परिहार होकर भावों में अत्यन्त विशुद्धि या उज्जवलता की प्रगटता होना परिहार विशुद्धि चारित्र है।

१९७. परिहार विशुद्धि किनको होता है ?

यह भी उपरोक्त प्रकार ही छटे से ९वें गुणस्थान तक होता है।

१९८. सूक्ष्म साम्पराय चारित्र किसे कहते हैं ?

क्रोध, मान, माया व स्थूल लोभ का सर्वथा अभाव हो जाने पर जब उस साधु में लोभ का अन्तिम सूक्ष्म अंश अवशेष रहता है। उस समय उसके चारित्र को सूक्ष्म साम्पराय या सूक्ष्म-कषाय कहते हैं।

१९९. सूक्ष्म साम्पराय किनको होता है ?

केवल १०वें गुणस्थान में होता है।

२००. यथा ख्यात चारित्र किसे कहते हैं और किन्हें होता है ?

इसका स्वरूप कह दिया गया है। यहां विशेष इतना समझना कि १०वें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म लोभ भी समाप्त हो जाने पर सम्पूर्ण कषायें निखशेष हो जाती हैं। तब जीव का जो ज्ञाता दृष्टास्वभाव है वह प्रगट हो जाता है, क्योंकि कषाय ही उसकी मलिनता का कारण थीं। जैसे स्वभाव कहा गया है वैसा ही प्रगट हो जाने से इस चारित्र का नाम यथाख्यात है। इसका स्वामित्व पहिले कह दिया गया, ११ वें से १४ वें तक होता है।

२०१. पूर्ण यथाख्यात चारित्र में जघन्य उत्कृष्ट का भेद कैसे सम्भव है ?

यद्यपि उपयोग पूर्ण होने से यथाख्यात है, पर योग में कमी है। निश्चल योग ही यथाख्यात है। जब तक वह प्राप्त नहीं होता तब जंघन्यता उत्कृष्टता मानना ठीक ही है।

(११ सुख)

(२०२) सुख किसको कहते हैं ?

आल्हाद स्वरूप आत्मा के परिणाम विशेष को सुख कहते हैं (विशेष देखो अध्याय ५ अधिकार)।

२०३. सुख कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—ऐन्द्रिय सुख और दूसरा अतीन्द्रिय सुख।

२०४. ऐन्द्रिय सुख किसे कहते हैं ?

पांचों इन्द्रियों के विषय भोगने से जो सुख होता है उसे ऐन्द्रिय सुख कहते हैं। यह सुख लौकिक होने से सर्व परिचित है।

२०५. अतीन्द्रिय सुख किसे कहते हैं ?

स्वरूप स्थिरता द्वारा, जो ज्ञाता दृष्टा रूप स्वाभाविक भावमें जो निराकुलता व निर्विकल्पता उत्पन्न होती है, उसे अतीन्द्रिय सुख कहते हैं। अलौकिक होने से सम्यग्दृष्टि जीवों के परिचय में आता है।

२०६. मोक्षमार्ग व मोक्ष में कौन सा सुख इष्ट है ?

अतीन्द्रिय ही स्वाभाविक व निराश्रय होने से वहां इष्ट है, क्योंकि पराश्रित होने से इन्द्रिय सुख तो अनेकों आकुलतायें उत्पन्न करने वाला है और इसलिये दुःख ही माना गया है।

(१२ वीर्य)

(२०७) वीर्य किसको कहते हैं ?

आत्मा की शक्ति को वीर्य कहते हैं।

२०८. आत्मा की शक्ति से क्या समझे ?

आत्मा की शक्ति उसके सर्व गुणों में ओत प्रोत है, जैसे जानने की हीनाधिक शक्ति, संकल्प शक्ति आदि।

२०९. वीर्य कितने प्रकार का है ?

दो प्रकार का-शारीरिक व आत्मिक। अथवा तीन प्रकार का शारीरिक, व वाचासिक मानसिक।

२१०. शारीरिक बल किसे कहते हैं ?

भार ढोने अथवा कुश्ते लड़ने का बल शारीरिक है।

२११. वाचसिक बल किसे कहते हैं ?

वचन बोलने की शक्ति अथवा वाद विवाद शक्ति।

२१२. मानसिक बल किसे कहते हैं ?

विचारणा, धारणा, स्मरण, संकल्प आदि की शक्ति।

२१३. आत्मिक बल किसे कहते हैं ?

उपसर्ग आने पर स्वरूप स्थिरता भंग न होना आत्मिक बल है। मनो चाञ्चल्य आत्मिक निर्बलता है।

२१४. मोक्ष मार्ग या मोक्ष में कौन सा बल इष्ट हैं ?

आत्मिक बल।

२१५. वीर्य गुण जीव मे ही होता है या अन्य द्रव्यों में भी ?

सभी द्रव्यों में अपनी अपनी जाति का वीर्य होता; जैसे कि पुद्गल में स्कन्ध निर्माण करने का; तथा एक समय में समस्त लोक को उल्लंघन कर जाने का वीर्य।

२१६. जीव व अजीव के वीर्य में क्या अन्तर है ?

जीव का वीर्य चेतन शक्ति द्वारा आंका जाता है और अजीव का वीर्य उनके अनेक विशेष गुणों की शक्ति द्वारा आंका जाता है, यथा बिजली की शक्ति वाष्प शक्ति, ताप शक्ति, चुम्बक शक्ति इत्यादि। इसलिये जीव का वीर्य चेतनात्मक है और अजीवका जड़ात्मक।

(१३ भव्यत्व)

(२१७) भव्यत्वगुण गुण किसे कहते हैं ?

जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा के सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र प्रगट होने की योग्यता हो उसे भव्यत्व गुण कहते हैं।

(२१८) अभव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा में सम्यग्दर्शन ज्ञान व चारित्र

प्रगट होने की योग्यता न हो उसे अभव्यत्व गुण कहते हैं।

२१९. **क्या अभव्य जीव मुक्त हो सकता है ?**

नहीं, क्योंकि उसको सम्यग्दर्श प्रकट होने की योग्यता नहीं है।

२२०. **क्या भव्य जीव अवश्य मुक्त होता है ?**

सभी भव्य जीवों को मुक्त होना अयश्यम्भावी नहीं है। हां जो कोई भी मुक्त होता है, वह भव्य ही होता हैं।

२२१. **भव्य कितने प्रकार के हैं ?**

वैसे तो एक ही प्रकार का है, पर मुक्ति की निकटता व दूरता की अपेक्षा कई प्रकार के हैं; जैसे आसन्न भव्य, दूर भव्य, दूरातिदूर भव्य, अभव्य समभव्य इत्यादि।

२२२. **भव्य के उपरोक्त भेदो के लक्षण करो ?**

निकट काल में भक्ति की योग्यता रखने वाले सम्यग्दृष्टि आसन्न भव्य हैं। कुछ काल पश्चात मुक्त होने वाले धर्म के श्रद्धालु दूर भव्य है। अति दूर काल में काललब्धि वश कदाचित मुक्त होने वाले दूरातिदूर भव्य हैं। और कभी भी सम्याक्त्व सम्पादन के प्रति उद्धत न होंगे ऐसे अभव्य समभव्य हैं।

२२३. **दूरातिदूर भव्य और अभव्य में क्या अन्तर है ?**

यह अन्तर केवल ज्ञान गम्य है, छद्मस्थ गोचर नहीं।

२२४. **यदि कदाचित हम अभव्य हो तो मोक्ष का पुरुषार्थ किस लिये करें ?**

पुरुषार्थी कभी अपने को अभव्य नहीं समझता; जैसे कि व्यापारी टोटे की शंका नहीं करता। प्रमादी के हृदय में ही ऐसी शंका होती है।

(१४ जीवत्व व प्राण)

(२२५) **जीवत्व गुण किसको कहते हैं ?**

जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा प्राण धारण करे उसको जीवत्व गुण कहते हैं।

(२२६) **प्राण किसको कहते हैं ?**

जिनके संयोग से यह जीव जीवन अवस्था को प्राप्त हो, और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त हो उसको प्राण कहते हैं।

(२२७) **प्राण के कितने भेद हैं ?**

दो हैं—द्रव्य प्राण और भाव प्राण।

(२२८) **द्रव्य प्राण किसे कहते हैं ?**

शरीर के जिन अवयवों या श्वास आदि के निमित्त से जीव आयु धारण किये रहता है उन्हें द्रव्य प्राण कहते हैं।

२२९. **द्रव्य प्राण के कितने भेद हैं ?**

(चार हैं—इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छवास।) अथवा दश है—पांच इन्द्रिय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण; तीन बल--मन, वचन व काय; तथा आयु व श्वासोच्छवास।

(२३०) **किस जीव के कितने प्राण होते हैं ?**

एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण—स्पर्शनेन्द्रिय, काव्य बल, आयु व श्वासोच्छवास। द्वीन्द्रिय के छह प्राण—दो इन्द्रिय, वचन व काय बल, आयु व श्वासोच्छवास। त्रीन्द्रिय के सात प्राण—पूर्वोक्त छः और एक घ्राणेन्द्रिय। चतुरेन्द्रिय के आठ प्राण—पूर्वोक्त सात और एक चक्षु इन्द्रिय। पंचेन्द्रिय असैनी के नौ प्राण—पूर्वोक्त आठ और एक कर्णेन्द्रिय। पंचेन्द्रिय सैनी के दस—पूर्वोक्त नौ और एक मन बल।

(२३१) **भाव प्राण किसको कहते हैं ?**

आत्मा की जिस शक्ति के निमित्त से इन्द्रियादिक अपने कार्य में प्रवर्ते उसे भाव प्राण कहते हैं।

(२३२) **भाव प्राण के कितने भेद हैं ?**

(दो भेद हैं—उपयोग और योग अथवा दो भेद हैं—भावेन्द्रिय और भाव बल।

(२३३) **भावेन्द्रिय के कितने भेद हैं ?**

पांच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण।

२३४. द्रव्येन्द्रिय व भावेन्द्रिय में क्या अन्तर है ?

'द्रव्येन्द्रिय' शरीर में अथवा आत्म प्रदेशों में नेत्रादि ही आकार रचना है, और भवेन्द्रिय उन नेत्रादि गोलकों में जानने देखने की चेतना शक्ति या उपयोग। इनके भेद प्रभेदादि का विस्तार आगे अध्याय ४ में दिया है।

२३५. बल प्राण किसे कहते हैं ?

मन, वचन, काय द्वारा प्रवृत्ति करने की चेतन शक्ति को बलप्राण कहते हैं। इसी का दूसरा नाम योग है।

(२३६) बल प्राण के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—मनोबल, वचनबल, कायबल।

(१५. योग व उपयोग)

(२३७) योग किसे कहते हैं ?

मन, वचन व काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में हलन चलन होने को योग कहते हैं।

२३८. योग के कितने भेद हैं ?

तीन भेद हैं—मन, वचन व काय। अथवा दो हैं—शुभ व अशुभ।

२३९. प्रदेश कम्पन तो एक ही प्रकार का होता है, फिर तीन भेद क्यों ?

वास्तव में योग एक ही है, पर निमित्तों की अपेक्षा ये तीन भेद करके बताया जाता है। मन के निमित्त से हो तो वही परिस्पन्दन मनोयोग कहलाता है और वचन व काय के निमित्त से हो तो वचन व काय योग कहलाता है।

२४०. शुभ योग किसे कहते हैं ?

मन वचन व काय की पुण्यात्मक प्रवृत्ति को शुभ योग कहते हैं।

२४१. अशुभ योग किसे कहते हैं ?

मन वचन काय की पापात्मक प्रवृत्ति को अशुभ योग कहते हैं।

२४२ प्रवृत्ति को योग क्यों कहते हैं ?

क्योंकि प्रवृत्ति मन वचन व काय की हलन चलन क्रिया रूप होती है। (द्रव्य व भाव योग के लिये देखो अध्याय ४ अधि-कार २)

(२४३) उपयोग किसे कहते हैं ?

क्षयोपशम के हेतु से चेतना के परिणाम (या परिणति) विशेष को उपयोग कहते हैं।

२४४. उपयोग कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग। अथवा तीन प्रकार का—शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग।

२४५. शुभोपयोग किसे कहते हैं ?

चेतन के पुण्यात्मक परिणामों को या परिणति को कहते हैं।

२४६. अशुभोपयोग किसे कहते हैं ?

चेतन के पापात्मक परिणामों को या परिणति को कहते हैं।

२४७. शुद्धापयोग किसे कहते हैं ?

चेतन के ज्ञाता दृष्टा रूप वीतराग व साम्य परिणामों को या परिणति को कहते हैं।

२४८. योग व उपयोग में क्या अन्तर है ?

योग का सम्बन्ध जीव के प्रदेशों के साथ होने से वह द्रव्या-त्मक है और उपयोग का सम्बन्ध जीव के चेतन भाव के साथ होने से वह भावात्मक है। योग में परिस्पन्दन या हलन डुलन रूप प्रवृत्ति होती है और उपयोग में भावों की परिणति।

२४९. प्रवृत्ति व परिणति में क्या अन्तर है ?

प्रवृत्ति क्रिया या परिस्पन्दन रूप होती है अर्थात हलन डुलन रूप होती है और परिणति केवल परिणमन रूप होती है अर्थात भावों की शक्ति मैं तरतमता रूप होती है। प्रवृत्ति कराना क्रियावती शक्ति का काम है और परिणति कराना

भाववति शक्ति का। प्रवृत्ति द्रव्य या व्यंजन पर्याय है और परिणति भाव या अर्थ पर्याय।

२५०. उपयोग की भांति योग के भेदों में भी शुद्धोपयोग क्यों नहीं कहा ?

योग अशुद्ध ही होता है शुद्ध नहीं, क्योंकि मन वचन काय के निमित्त बिना स्वतंत्र नहीं होता। ज्ञाता दृष्टा भाव बिना किसी निमित्त के अथवा सर्व निमित्तों का अभाव हो जाने पर स्वभाव से होता है। पर का संयोग न हो उसे ही शुद्ध कहते हैं। इसलिये उपयोग में ही शुद्धपना सम्भव है योग में नहीं।

२५१. मोक्ष मार्ग में योग व उपयोग का सार्थक्य दर्शाओ।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप रत्नत्रय मोक्ष मार्ग है। तहां सम्यग्दर्शन व ज्ञान उपयोग रूप है और सम्यग्चारित्र योग रूप।

२५२. समता रूप भाव को चारित्र कहा है, वह तो उपयोग है।

वास्तव में अशुभ से हटकर शुभ में प्रवृत्ति करने तक ही चारित्र रहता है, इसके आगे प्रयत्न का अभाव हो जाने से चारित्र का भी अभाव हो जाता है। भूतपूर्व नय के उपचार से ही वहां चारित्र कहा जाता है। समता रूप वह स्थान सर्वथा शुद्धोपयोग रूप होता है, अतः वहां परिणति होती है प्रवृत्ति या योग नहीं।

२५३. कषाय भाव योग रूप हैं या उपयोग रूप ?

भावात्मक होने से वह उपयोग रूप है योग रूप नहीं, क्योंकि उसमें प्रवृत्ति नहीं अन्तरंग परिणति ही होती है।

२५४. कषाय, लेश्या व वासना का स्वरूप दर्शाओ।

(देखो आगे अध्याय ४ में प्रथम अधिकार)

(१६. क्रियावती व भाववती शक्ति)

२५५. शक्ति किसे कहते हैं ?

गुण की भांति जो हर समय पर्याय या व्यक्ति रूप न रहती

हो, बल्कि योग्य निमित्तादि मिलने पर कदाचित व्यक्त होती हो वह शक्ति है।

२५६. जीव में गुणों के अतिरिक्त कितनी शक्तियें हैं ?

तीन प्रधान हैं—क्रियावती शक्ति; भाववती शक्ति व वैभाविकी शक्ति।

२५७. क्रियावती शक्ति किसे कहते हैं ?

जिस शक्ति के योग से द्रव्य गमनागमन या हिलन डुलन कर सके उसे क्रियावती शक्ति कहते हैं।

२५८. क्रियावती शक्ति के कितने कार्य हैं ?

दो हैं—परिस्पन्दन व क्रिया।

२५९. परिस्पन्दन व क्रिया में क्या अन्तर है ?

द्रव्य के प्रदेशों का भीतरी कम्पन परिस्पन्दन कहलाता है और पूरे द्रव्य का बाहरी गमनागमन क्रिया कहलाती है।

२६०. क्रियावती को शक्ति क्यों कहा गुण क्यों नहीं ?

क्योंकि द्रव्य सदा गमन करता रहे ऐसा नहीं होता, न ही उसके प्रदेशों में नित्य परिस्पन्दन पाया जाता है। जैसे कि संसारी जीव के प्रदेशों में परिस्पन्दन होता रहने पर भी मुक्त जीव में वह नहीं पाया जाता और इसी प्रकार स्कन्ध में होता रहने पर भी परमाणु में नहीं पाया जाता अर्थात द्रव्य की अशुद्धावस्था में ही परिस्पन्दन होता है शुद्धावस्था में नहीं, अतः उसके कारण को गुण न कहकर शक्ति कहा गया है।

२६१. भाववती शक्ति किसे कहते हैं ?

क्रियावती शक्ति को छोड़कर द्रव्य के अन्य सर्व गुण नित्य परिणमन करते रहते हैं यही उस द्रव्य की भाववती शक्ति हैं।

२६२. भाववती को शक्ति क्यों कहा ?

क्योंकि इसकी कोई स्वतंत्र व्यक्ति नहीं होती। द्रव्य में भावों की अवस्थिति की द्योतक मात्र है।

२६३. वैभाविकी शक्ति किसे कहते हैं ?

जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध होने पर विभाव परिणमन हो (अर्थात अशुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाये।)

२६४. वैभाविकी गुण क्यों न कहा ?

क्यों कि द्रव्य सदा अशुद्ध परिणमन करे ऐसा नहीं होता। दूसरे वैभाविकी शक्ति की कोई पृथक व्यक्ति उपलब्ध नहीं होती। द्रव्य में विभाव परिणमन की सामर्थ्य की द्योतक मात्र है।

२६५. विभाव से क्या समझे ?

अनेक द्रव्यों के परस्पर बन्ध को प्राप्त हो जाने से उसमें जो अशुद्धता आ जाती है, उसे विभाव कहते हैं—जैसे जीव में शरीर व रागद्वेषादि और पुद्गल में स्कन्ध।

२६६. क्रियावती व भाववती शक्ति में क्या अन्तर है ?

क्रियावती शक्ति का व्यापार प्रदेशत्व गुण में है या द्रव्य के प्रदेशों में होता है और भाववती शक्ति का व्यापार अन्य सब गुणों में।

२६७. भाववती शक्ति व वैभाविकी शक्ति में क्या अन्तर है ?

भाववती शक्ति का शुद्ध व अशुद्ध सभी द्रव्यों के गुणों में सामान्य रूप से परिणमन कराना है और वैभाविकी शक्ति का व्यापार अन्य द्रव्य का संयोग कराकर उसमें अशुद्धता कराना है।

२६८. ये तीनों "शक्तियें" किन-किन द्रव्यों में पाई जाती हैं ?

भाव शक्ति सामान्य है क्योंकि सभी द्रव्यों में सामान्य रूप से पाई जाती है, अर्थात सभी द्रव्य परिणमन करने की सामर्थ्य से युक्त हैं। परन्तु क्रियावती व वैभाविकी शक्ति विशेष हैं। ये जीव व पुद्गल में ही पाई जाती हैं, क्योंकि वे दोनों गमन करने तथा परस्पर में बंध कर अशुद्ध होने में समर्थ हैं।

२६६. **क्या शुद्ध जीव व पुद्गल में भी वैभाविकी शक्ति है ?**

हां है, पर निमित्तों का अभाव होने के कारण व्यक्त नहीं हो पाती। कारण कि वह शक्ति है गुण नहीं, जो कि उसका नित्य कुछ न कुछ परिणमन पाया जाये।

२७०. **क्या सिद्ध भगवान में क्रियावती व वैभाविक शक्ति हैं ?**

हां हैं, पर व्यक्त नहीं हो सकतीं। व्यर्थ पड़ी रहती हैं।

२७१. **क्या स्थित हुए जीव व पुद्गल में क्रियावती शक्ति है ?**

हां है, परन्तु इस समय व्यक्त नहीं है, द्रव्य के चलने पर व्यक्त हो जायेगी। अथवा प्रदेश परिस्पन्दन रूप से उनके भीतर अब भी व्यक्त है।

२७२. **जीव द्रव्य में क्रियावती व भाववती शक्ति का द्योतन किन नामों से किया जाता है ?**

योग व उपयोग शब्द से, क्योंकि योग परिस्पन्दन स्वरूप है और उपयोग परिणमन स्वरूप।

२७३. **वैभाविकी शक्ति के रहते सिद्ध भगवान पुन: अशुद्ध क्यों नहीं हो जाते ?**

वैभाविकी शक्ति गुण नहीं जो इसे हर अवस्था में व्यक्त होना ही पड़े। निमित्तादि मिलने पर व्यक्त होती है। और सिद्धावस्था में उनका अभाव है।

२/५ पर्यायाधिकार

(1 सहभावी व क्रमभावी पर्याय)

१. पर्याय किसे कहते हैं ?

द्रव्य के विशेष को पर्याय कहते है।

२. पर्याय व विशेष कितने प्रकार के होते हैं ?

दो प्रकार के—सहभावी व क्रमभावी। अथवा तिर्यक् विशेष व ऊर्ध्व विशेष

३. सहभावी व क्रमभावी विशेष अर्थात क्या ?

सर्व अवस्थाओं में एक साथ रहने से गुण सहभावी विशेष हैं और क्रमपूर्वक आगे पीछे होने से पर्याय क्रमभावी विशेष हैं।

४. तिर्यक व ऊर्ध्व विशेष अर्थात क्या ?

जिनका काल एक हो पर क्षेत्र भिन्न ऐसे विशेष तिर्यक विशेष हैं; जैसे द्रव्य की अपेक्षा एक जाति के अनेक द्रव्य, क्षेत्र की अपेक्षा एक द्रव्य के अनेक प्रदेश, भाव की अपेक्षा एक ·द्रव्य के अनेक गुण। जिनका क्षेत्र एक हो पर काल भिन्न ऐसे विशेष ऊर्ध्व विशेष हैं; जैसे द्रव्य की अपेक्षा एक ही जीव की आगे पीछे होने वाली नर नारकादि व्यञ्जन पर्यायें; और भाव की अपेक्षा एक ही गुण की क्रमवर्ती अर्थ पर्यायें।

५. आगम में तो अवस्थाओं को ही पर्याय कहा है ?

द्रव्य, गुण व पर्याय तीनों प्रकार के विशेष ही पर्याय शब्द वाच्य हैं, पर रूढि वश केवल अवस्थाओं के लिये ही पर्याय शब्द प्रयुक्त हुआ है।

(२. द्रव्य व गुण पर्याय)

६. **क्रमभावी पर्याय कितने प्रकार की होती हैं ?**
दो प्रकार की—द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय।

७. **द्रव्य पर्याय किसे कहते हैं ?**
अनेक द्रव्यों में एकता की प्रतिपत्ति को द्रव्य पर्याय कहते हैं।

८. **अनेक द्रव्यों में एकता की प्रतिपत्ति क्या ?**
अनेक द्रव्यों के मिलकर परस्पर एकमेक हो जाने से जो संयोगी द्रव्य बनता है उसे एक द्रव्यरूप ग्रहण करना ही अनेकता में एकता की प्रतिपत्ति है; जैसे ताम्बे व जस्ते के संयोग से उत्पन्न एक पीतल नाम का द्रव्य।

९. **द्रव्य पर्याय कितने प्रकार की होती है ?**
दो प्रकार की—एक समान जातीय दूसरी असमान जातीय।

१०. **समान जातीय द्रव्य पर्याय किसे कहते हैं ?**
अनेक परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न स्कन्ध समान जातीय द्रव्य पर्याय है; क्योंकि उसके कारणभूत मूल परमाणु सब एक ही पुद्गल जाति के हैं।

११. **असमान जातीय द्रव्य पर्याय किसे कहते हैं ?**
जीव पुद्गल के संयोग से उत्पन्न नर नारकादि पर्यायें असमान जातीय द्रव्य पर्याय हैं, क्योंकि उसके कारणभूत मूल जीव व पुद्गल भिन्न जातीय द्रव्य हैं।

१२. **अन्य प्रकार के द्रव्य पर्याय किसे कहते हैं ?**
द्रव्य के आकार की अवस्थाओं को, अथवा उसकी गमनागमन रूप क्रिया को अथवा प्रदेश परिस्पन्दन को द्रव्य पर्याय कहते हैं।

१३. **आकार आदि को द्रव्य पर्याय कैसे कहते हैं ?**
क्योंकि गुणों का आश्रयभूत द्रव्य क्षेत्रात्मक है इसलिये उसके क्षेत्र या प्रदेशों की सर्व अवस्थायें द्रव्य पर्यायें कहलायेंगी, भले ही वह उनकी रचना विशेष हो या क्रिया व परिस्पन्दन।

१४. द्रव्य पर्याय कितने प्रकार की होती है ?

दो प्रकार की—स्वभाव द्रव्य पर्याय व विभाव द्रव्य पर्याय

१५. स्वभाव व विभाव अर्थात् क्या ?

जो बिना किसी दूसरे पदार्थ की अपेक्षा किये द्रव्य में स्वतः व्यक्त हो वह स्वभाव होता है और पर संयोग के निमित्त से प्रगट हो सो विभाव कहलाता है। स्वभाव शुद्ध होता है और विभाव अशुद्ध।

१६. स्वभाव द्रव्य पर्याय किसे कहते हैं ?

शुद्ध द्रव्यों के आकार को स्वभाव द्रव्य पर्याय कहते हैं; जैसे मुक्तात्मा का अथवा धर्मास्तिकाय का आकार।

१७. विभाव द्रव्य पर्याय किसे कहते हैं ?

अनेक द्रव्यात्मक संयोगी आकार को विभाव द्रव्य पर्याय कहते हैं, जैसे शरीरधारी संसारी जीव का आकार या स्कन्ध।

१८. एक द्रव्यात्मक होने से स्वभाव द्रव्य पर्याय नहीं होती ?

नहीं, होती है, क्योंकि वह भी अनेक प्रदेश प्रचय रूप है।

१९. क्रिया व परिस्पन्दन को द्रव्य पर्याय कहना ठीक नहीं ?

ठीक है, साधारणतः उसे द्रव्य पर्याय न कहकर क्रियावती शक्ति की पर्याय कह दिया जाता है, पर वास्तव में वह भी द्रव्य पर्याय ही है। कारण कि एक तो वह प्रदेशों में प्रदेश प्रचयरूप सम्पूर्ण द्रव्य में होती हैं और दूसरे द्रव्य के आकार निर्माण में कारण है।

२०. गुण पर्याय किसे कहते हैं ?

आकार से अतिरिक्त अन्य सर्व भावात्मक गुणों की पर्याय गुणपर्याय कहलाती हैं, जैसे चारित्र गुण की राग पर्याय और रस गुण की मीठी पर्याय।

२१. गुण पर्याय कितने प्रकार की होती है ?

दो प्रकार की—स्वभाव गुण पर्याय व विभाव गुण पर्याय।

२२. स्वभाव गुण पर्याय किसे कहते हैं ?

शुद्ध द्रव्यों के गुणों की पर्याय को स्वभाव गुण पर्याय कहते हैं;

जैसे मुक्तात्मा के ज्ञान गुण की केवल ज्ञान पर्याय तथा परमाणु के इस गुण को तद्योग्य सूक्ष्म पर्याय।

२३. **विभाव गुण पर्याय किसे कहते हैं ?**
अशुद्ध द्रव्यों के गुणों की पर्याय को विभाव गुण पर्याय कहते हैं; जैसे संसारी आत्मा के ज्ञान गुण की मति ज्ञान पर्याय और स्कन्ध के रस गुण की मीठी पर्याय।

(३. अर्थ व व्यंजन पर्याय)

(२४) **पर्याय किसे कहते हैं ?**
गुण के विकार को पर्याय कहते हैं।

२५. **विकार अर्थात क्या ?**
यहां विकार का अर्थ विकृत भाव ग्रहण न करना। इसका अर्थ है विशेष कार्य अर्थात गुण की परिणति से प्राप्त अवस्था विशेष।

(२६) **पर्याय के कितने भेद हैं ?**
दो हैं—व्यञ्जन पर्याय और अर्थ पर्याय (या द्रव्य पर्याय व गुण पर्याय)

(२७) **व्यञ्जन पर्याय किसे कहते हैं ?**
प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यञ्जन पर्याय कहते हैं।

२८. **प्रदेशत्व गुण के विकार से क्या समझें ?**
द्रव्य का आकार ही प्रदेशत्व गुण का विकार या विशेष कार्य है; जैसे मनुष्य पर्याय का दो हाथ पैर वाला आकार।

२९. **द्रव्य पर्याय व व्यञ्जन पर्याय में क्या अन्तर है ?**
दोनों एकार्थ वाची हैं, क्योंकि दोनों का सम्बन्ध प्रदेशत्व गुण से है।

(३०) **व्यञ्जन पर्याय के कितने भेद हैं?**
दो हैं--स्वभाव व्यञ्जन पर्याय और बिभाव व्यञ्जन पर्याय।

(३१) **स्वभाव व्यञ्जन पर्याय किसे कहते हैं ?**
बिना दूसरे निमित्त से जो व्यञ्जन पर्याय हो उसे स्वभाव

व्यञ्जन पर्याय कहते हैं। जैसे जीव की सिद्ध पर्याय।

(३२) विभाव व्यञ्जन पर्याय किसे कहते हैं ?

दूसरे के निमित्त से जो व्यञ्जन पर्याय हो उसे विभाव व्यञ्जन पर्याय कहते हैं, जैसे जीव की नारकादि पर्याय।

(३३) अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

प्रदेशत्व गुण के सिवाय अन्य समस्त गुणों के विकार को अर्थ पर्याय कहते हैं।

३४. गुण पर्याय व अर्थ पर्याय में क्या अन्तर है ?

दोनों एकार्थवाची हैं, क्योंकि दोनों का सम्बन्ध द्रव्य के भावात्मक गुणों से है।

(३५) अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—स्वभाव अर्थ पर्याय व विभाव अर्थ पर्याय।

(३६) स्वभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

बिना दूसरे निमित्त के जो अर्थ पर्याय हो उसे स्वभाव अर्थ पर्याय कहते हैं; जैसे जीव की केवल ज्ञान पर्याय।

(३७) विभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

पर के निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो उसे द्वि में वह भी पर्याय कहते हैं; जैसे जीव के रागद्वेषादि। देशों में प्रदेश

३८. व्यञ्जन व अर्थ पर्याय की अन्य विशेषतायें द्य के आकार

व्यञ्जन पर्याय छद्मस्थ ज्ञानगम्य, चिरस्थायी, स्थूल होती है, और अर्थ पर्याय केवलज्ञान ग ..., वचन अगोचर व सूक्ष्म होती है।

३९. स्थूल व सूक्ष्म पर्याय से क्या समझे ?

बाहर में व्यक्त होने वाली पर्याय स्थूल तथा अव्यक्त रहकर अन्दर ही अन्दर होने वाली सूक्ष्म होती है।

४०. चिर स्थायी व क्षण स्थायी से क्या समझे ?

कुछ मिनट, घन्टे, दिन, महीने, वर्ष या सागरों पर्यन्त टिकने वाली पर्याय चिरस्थायी होती है और एक समय या क्षुद्र

अन्तर्मुहूर्त मात्र टिकने वाली क्षण स्थायी कही जाती है।

४१. व्यञ्जन व अर्थ पर्याय पर ये लक्षण घटित करो ?

व्यञ्जन या द्रव्य पर्याय चिरकाल स्थायी हैं, क्योंकि द्रव्य का आकार क्षण क्षण में बदलता दिखाई नहीं देता, सारी आयु पर्यंत एक ही रहता है जैसे मनुष्य का आकार। बाहर में व्यक्त होने से यह स्थूल व छद्मस्थ ज्ञान गम्य है। अर्थ या गुण पर्याय अन्दर ही अन्दर परिणमन करने से अव्यक्त है और इसी लिये सूक्ष्म। परिणम क्षण प्रति क्षण बराबर होता रहता है इसलिये केवल ज्ञान गम्य है।

४२. व्यञ्जन पर्याय भी तो क्षण प्रति क्षण बदलती है ?

एक ही मनुष्य पर्याय में बालक युवा वृद्ध आदि पर्यायों के रूप में यद्यपि व्यञ्जन पर्यायें भी क्षण क्षण में बदलती हैं पर उसका बाह्य व्यक्त रूप फिर भी चिरस्थायी ही रहता है; जैसे २ वर्ष शिशु. २ वर्ष किशोर, ४ वर्ष बालक, २० वर्ष युवा, २० वर्ष प्रौढ़ आदि। इनमें जो क्षण क्षण प्रति सूक्ष्म परिवर्तन होता है वह व्यवहार गम्य नहीं है।

४३. विभाव व स्वभाव व्यञ्जन पर्यायें कितनी कितनी देर टिकती हैं ?

विभाव व्यञ्जन पर्यायें अन्तर्मुहूर्त से लेकर सागरों पर्यंत टिकती हैं, जैसे निगोदिया पर्याय व सर्वार्थसिद्धि देव पर्याय। स्वभाव व्यञ्जन पर्याय सदा एक सी रहती है, बदलती नहीं, न ही वहां प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है, जैसे सिद्ध पर्याय या धर्मास्तिकाय का आकार।

४४. विभाव व स्वभाव अर्थ पर्यायें कितनी कितनी देर टिकती हैं ?

विभाव अर्थ पर्यायें कम से कम क्षुद्र अन्तर्मुहुर्त और अधिक से अधिक कुछ बड़ा अन्तर्मुहुर्त पर्यन्त ही टिकती हैं। जैसे सूक्ष्म व स्थूल क्रोध। स्वभाव अर्थ पर्याय केवल एक समय स्थायी है।

४५. विभाव अर्थ पर्याय तो छद्मस्थ ज्ञान गम्य होती है ?

हां अन्तर्मुहुर्त स्थायी होने से क्रोधादि विभाव अर्थ पर्याय स्थूल व छद्मस्थ ज्ञान गोचर होती हैं, और इस लिये उन्हें भी कदाचित व्यञ्जन पर्याय कहा जा सकता है, पर रूढ़ न होने से उसके लिये उस शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता।

४६. एक समय स्थायी पर्याय कैसी होती है ?

वह केवल ज्ञान गम्य ही है तथा अत्यन्त सूक्ष्म। षट् गुण हानि वृद्धि ही उसका रूप है।

४७. षट्गुण हानि वृद्धि किसे कहते हैं ?

अगुरुलघुत्व गुण के कारण गुणों में जो निरन्तर परिणमन होता रहता है वही षट् गुण हानि वृद्धि का वाच्य है। गुणों के अविभाग प्रतिच्छेदों में अन्दर ही अन्दर बराबर घटोतरी बढ़ोतरी द्वारा सूक्ष्म तरतमता आते रहना ही उसका रूप है।

४८. यह सूक्ष्म अर्थ पर्याय स्वभाविक होती है या विभाविक ?

सूक्ष्म अर्थ पर्याय शुद्ध द्रव्यों में ही होती है अशुद्ध में नहीं अतः वह स्वभाव अर्थ पर्याय है।

४९. विभाव अर्थ पर्याय भी तो प्रति क्षण बदलती ही होगी ?

बदलती अवश्य है, पर वह रूढ़ नहीं है।

(४. सादि सन्तादि पर्याय)

५०. आदि अन्त की अपेक्षा पर्याय के कितने भेद हैं ?

चार भेद हैं—सादि सान्त, आदि अनन्त, अनादि सान्त, अनादि अनन्त।

५१. सादि सान्त पर्याय किसे कहते हैं ?

जिस पर्याय का आदि भी हो और अन्त भी, जैसे हर्ष विषाद।

५२ सभी पर्यायों का आदि अन्त होता है ?

सूक्ष्म रूप से सभी अर्थ पर्याय सादि सान्त है, पर स्थूल रूप से कुछ सादि सान्त व सादि अनन्त आदि भी है।

५३. व्यञ्जन पर्याय क्या नियम से सादि सान्त नहीं होती ?

नहीं; अशुद्ध द्रव्यों में वे नियम से सादि सान्त होती हैं और शुद्ध द्रव्यों में सादि सान्त व सादि अनन्त भी।

५४. सादि अनन्त पर्याय किसे कहते हैं ?

जो पर्याय उत्पन्न तो होती हो पर जिसका अन्त न होता हो; जैसे जीव की सिद्ध पर्याय।

५५. अनादि सान्त पर्याय किसे कहते हैं ?

जो पर्याय कभी उत्पन्न न हुई हो, अर्थात अनादि से हो पर जिसका अन्त हो जाता है; जैसे जीव की संसारी पर्याय।

५६. अनादि अनन्त पर्याय किसे कहते हैं ?

जिस पर्याय का न आदि हो न अन्त; जैसे धर्मास्तिकाय की शुद्ध द्रव्य पर्याय और अभव्य जीव की अशुद्ध पर्यायें।

५७. सादि सान्त स्वभाव व्यञ्जन पर्याय व स्वभाव अर्थ पर्याय किस द्रव्य में होती है ?

परमाणु में; क्योंकि स्कन्ध से बिछुड़ कर शुद्ध हो जाता है, और पुन: स्कन्ध में बंधकर अशुद्ध हो जाता है।

५८. सादि अनन्त स्वभाव व विभाव अर्थ व्यञ्जन पर्याय किन द्रव्यों में होती है ?

स्वभाव रूप दोनों पर्यायें मुक्त जीव में होती हैं; क्योंकि एक बार सिद्ध हो जाने पर वह पुनः संसारी नहीं होता। विभाव पर्याय में आदि अनन्त का विकल्प सम्भव नहीं, क्योंकि वह नियम से नष्ट होने वाला होता है।

५९. अनादि सान्त स्वभाव व विभाव पर्यायें किसमें हैं ?

अनादि सान्त विभाव पर्याय तो संसारी जीव में होती हैं। स्वभाव पर्यायों में अनादि सान्त का विकल्प नहीं क्योंकि न कोई जीव अनादि से शुद्ध है और न परमाणु।

६०. अनादि अनन्त स्वभाव व विभाव पर्याय किसमें होती है ?

अनादि अनन्त स्वभाव पर्यायें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश व काल इन चार नित्य शुद्ध द्रव्यों में हैं, जीव पुद्गल में सम्भव नहीं क्योंकि उनमें अनादि से कोई शुद्ध नहीं है। अनादि अनन्त विभाव पर्याय केवल अभव्य जीव में ही सम्भव

है, क्योंकि वह कभी शुद्ध नहीं होता। स्थूल रूप से अकृत्रिम चैत्यालय, सूर्य बिम्ब आदि पुद्गल स्कन्धों की अनादि अनन्त विभाव व्यञ्जन पर्यायें मानी गई हैं। वहां भी अर्थ पर्याय सादि सान्त ही होती हैं अनादि अनन्त नहीं।

(५ अभ्यास)

६१. **पर्याय किसका अंश है ?**
द्रव्य व गुण दोनों का अंश है। द्रव्य का अंश होने से वह सह-भावी कहलाती है और गुण का अंश होने से क्रमभावी।

६२. **किन किन द्रव्यों में कौन कौन पर्याय होती है ?**
जीव व पुद्गल में वैभाविकी शक्ति होने से स्वभाव व विभाव दोनों प्रकार की अर्थ व व्यञ्जन पर्यायें होती हैं। शेष चार द्रव्यों में उस शक्ति का अभाव होने से केवल स्वभाव व्यञ्जन व अर्थपर्याय ही होती हैं, विभाव नहीं।

६३. **द्रव्य में कौन सी पर्याय एक होती है और कौन सी अनेक ?**
व्यञ्जन पर्याय एक होती है और अर्थ पर्याय अनेक। क्योंकि उनके कारणभूत प्रदेशात्वगुण एक है और अन्य गुण अनेक।

६४. **एक समय में जीव कितनी पर्याय धारण कर सकता है ?**
व्यञ्जन पर्याय तो स्वभाव या विभाव में से कोई एक हो सकती है, क्योंकि वह एक ही गुण की होती है, और अर्थ पर्याय एक ही समय में स्वभाव व विभाव दोनों हो सकती हैं, क्योंकि वे अनेक हैं। कुछ गुणों की स्वभाव अर्थ पर्याय हो सकती है और कुछ की विभाव। जैसे—चौथे गुण स्थान में सम्यक्त्व गुण की स्वभाव पर्याय है और शेष गुणों की विभाव।

६५. **एक समय में पुद्गल कितनी पर्याय धारण कर सकता है ?**
केवल दो—दोनों ही प्रकार की स्वभाव पर्याय या दोनों ही विभाव पर्याय। क्योंकि स्कन्ध सर्वथा अशुद्ध द्रव्य होने के

कारण उसमें दोनों विभाव पर्याय होती है और परमाणु सर्वथा शुद्ध होने के कारण उसकी दोनों पर्याय शुद्ध होती हैं।

६६. **पुद्गल में स्वभाव व विभाव दोनों पर्याय क्यों नहीं हो सकती और जीव में क्यों हो सकती है** ?

पुद्गल में कर्तृत्व का अभाव होने के कारण वह दो ही अवस्था में उपलब्ध होता है—सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध। वह अपनी अशुद्ध अवस्था को कर्तृत्व पूर्वक शुद्ध करने का प्रयत्न करते हुए आंशिक शुद्ध दशा को स्पर्श नहीं कर सकता। जब कि जीव में कर्तृत्व बुद्धि होने से वह अपनी अशुद्ध दशा को शुद्ध करने की साधना करता हुआ आंशिक शुद्ध दशा को स्पर्श कर सकता है। वहां आंशिक शुद्ध में ही स्वभाव व विभाव दोनों सम्भव हैं, केवल शुद्ध या केवल अशुद्ध में नहीं।

६७. **अर्हन्त भगवान व सम्यग्दृष्टि में कितनी २ पर्याय हैं** ?

दोनों में तीन तीन प्रकार की पर्याय होती हैं—विभाव व्यंजन तथा स्वभाव व विभाव अर्थ पर्याय; क्योंकि अर्हंत भगवान के भावात्मक अंश या उपयोग शुद्ध हो जाने पर भी द्रव्यात्मक भाव अशुद्ध है, जिसके कारण कि उन्हें योगों का सद्भाव बर्तता है।

६८. **सिद्ध भगवान में कितनी पर्याय हैं** ?

केवल दो—स्वभाव व्यञ्जन व स्वभाव अर्थ।

६९. **सिद्ध भगवान की व्यञ्जन पर्याय कैसी होती है** ?

अन्तिम शरीर से किंचित न्यून।

७०. **क्या कोई सिद्ध गाय के आकार के भी होते हैं** ?

सिद्ध पुरुषाकार ही होते हैं, अन्य किसी आकार के नहीं, क्योंकि अन्य पर्याय से मुक्ति सम्भव नहीं, स्त्री पर्याय से भी नहीं।

७१. **ऐसे द्रव्य बताओ जिनकी व्यञ्जन पर्याय समान हो** ?

केवल समुद्घातगत अर्हंत, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, इन

तीनों की व्यञ्जन पर्याय लोकाकाश प्रमाण है। कालाणु व परमाणु दोनों की व्यंजन पर्याय अणुरूप है।

७२. **सबसे बड़ी व सबसे छोटी व्यञ्जन पर्याय किसकी ?**

आकाश की सबसे बड़ी और कालाणु व परमाणु की सबसे छोटी।

७३. **व्यञ्जन व अर्थ पर्याय में परस्पर क्या सम्बन्ध ?**

व्यञ्जन पर्याय शुद्ध होने पर तो सभी अर्थ पर्याय भी अवश्य शुद्ध ही होंगी, जैसे सिद्ध भगवान। परन्तु अर्थ पर्याय शुद्ध होने पर व्यञ्जन पर्याय शुद्ध हो अथवा न भी हो; जैसे अर्हंत।

७४. **अर्थ पर्याय के शुद्ध होने पर व्यञ्जन पर्याय को भी शुद्ध होना पड़े क्या यह ठीक है ?**

नहीं, जीव में सम्यक्तवादी गुणों की अर्थ पर्याय शुद्ध होने पर भी व्यञ्जन पर्याय अशुद्ध रह सकती है।

७५. **बड़ी व्यञ्जन पर्याय में अधिक पर्याय समा सकती है ?**

नहीं, व्यंजन पर्याय के छोटे व बड़े होने से, अर्थ पर्याय की संख्या में अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि सभी पर्याय द्रव्य के सर्व क्षेत्र में व्यापकर एक साथ रहती हैं।

७६. **ज्ञान गुण की कितनी पर्याय होती हैं ?**

मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्याय ये चारों विभाव अर्थ पर्याय हैं और केवल ज्ञान स्वभाव अर्थ पर्याय।

७७. **रूप रस गन्ध व वर्ण की कितनी कितनी पर्याय होती हैं ?**

रूप गुण की पांच—काला, पीला, लाल, नीला, सफेद;

रस गुण की पांच—खट्टा, मीठा, कड़ुवा, कसायला, चरपरा;
गन्ध गुण की दो—सुगन्ध, दुर्गन्ध
स्पर्श गुण की आठ—ठण्डा-गर्म, चिकना-रूखा, हल्का-भारी, कठोर-नर्म।

७८. **रूप रस आदि की स्वभाव व विभाव पर्याय क्या होती है ?**

उपरोक्त सर्व पर्यायें विभाव हैं। उन गुणों की स्वभाव पर्याय

स्वत्व योग्य कुछ होती अवश्य है, पर सूक्ष्म होने से केवल ज्ञान गम्य हैं, छद्मस्थ ज्ञान गम्य नहीं। वे परमाणु में ही होती हैं।

७९. **परमाणु में एक समय कितनी पर्याय होती हैं ?**
पांच रूप रस गन्ध की पर्यायों में एक एक तथा स्पर्श की दो पर्याय। ये सभी वहां स्वभाव रूप सूक्ष्म होती हैं।

८०. **परमाणु में हल्का भारी तथा कठोर नर्म क्यों नहीं ?**
क्योंकि वे स्कन्ध के ही धर्म हैं।

८१. **स्कन्ध में एक समय कितनी पर्याय होती हैं ?**
सात—रूप रस गन्ध की एक एक और स्पर्श की चार युगल पर्यायों में से एक एक कर कोई सी चार; जैसे ठण्डा-गर्म युगल में से कोई एक, चिकने-रूखे में से कोई एक। ये सभी विभाव रूप होती हैं।

८२. **'शब्द' क्या है ?**
पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य पर्याय है, क्योंकि स्कन्ध के प्रदेशों में परिस्पन्दन रूप से होती है, परमाणु में नहीं।

८३. **आकार को द्रव्य पर्याय क्यों कहा ?**
क्योंकि पदार्थ के प्रदेशात्म विभाग को द्रव्य कहते हैं, इसलिए उसकी पर्याय को द्रव्य पर्याय कहना ठीक ही है।

८४. **द्रव्य व गुण पर्याय को मापने के यूनिट क्या हैं ?**
द्रव्य पर्याय को मापने का यूनिट प्रदेश है, और गुण पर्याय को मापने का अविभाग प्रतिच्छेद है; क्योंकि द्रव्य प्रर्याय क्षेत्रात्मक होती है और गुण पर्याय भावात्मक।

८५. **अनेक द्रव्यों की एक पर्याय और एक द्रव्य की अनेक पर्यायें क्या ?**
शरीर धारी जीव तथा पुद्गल स्कन्ध अनेक द्रव्यात्म एक द्रव्य पर्याय है। प्रत्येक द्रव्य में अनेक अर्थ पर्याय होती ही हैं।

८६. **द्रव्य गुण व पर्याय इन तीनों में साक्षात प्रयोजनीय क्या ?**
केवल पर्याय ही साक्षात व्यक्त होने से उपभोग्य है; गुण व

द्रव्य तो उनके कारण रूप से मात्र ज्ञेय हैं।

८७. **द्रव्य व गुण का अनुभव क्यों नहीं होता ?**
क्योंकि वे सामान्य है। अनुभव विशेष का होता है सामान्य का नहीं; जैसे आम ही खाया जाता है, मात्र वनस्पति नहीं।

८८. **द्रव्य गुण का अनुभव नहीं होता तो वे हैं ही नहीं।**
नहीं, पर्यायों पर से उनका अनुमान होता है, क्योंकि सामान्य के विशेष कुछ नहीं होता; जैसे वनस्पति के अभाव में आम कल्पना मात्र बनकर रह जायेगा।

८९. **व्यञ्जन व अर्थ पर्याय में कौन पहले शुद्ध होती है ?**
जीव की अर्हत अवस्था में पहिले अर्थ पर्याय शुद्ध होती है, पीछे सिद्ध होने पर व्यञ्जन पर्याय शुद्ध होती है। पुद्गल में परमाणु के पृथक हो जाने पर उसकी दोनों पर्याय युगपत हो जाती हैं।

९०. **जीव में विभाव पर्याय कहां तक रहती है ?**
चौदहवें गुणस्थान के अन्त तक, अर्थात मुक्त होने से पहिले तक।

९१. **व्यञ्जन पर्याय असमान होने पर भी अर्थ पर्याय समान हों ऐसे द्रव्य कौन से ?**
मुक्त जीव; क्योंकि उनके आकार भिन्न हैं पर भाव समान।

९२. **५०० हाथ अवगाहना वाले सिद्धों में ज्ञान व आनन्द अधिक तथा ७ हाथ अवगाहना वालों में कम है ?**
नहीं, अवगाहना व्यञ्जन पर्याय है और ज्ञान व आनन्द अर्थ पर्याय। अवगाहना छोटी बड़ी होने से अर्थ पर्याय छोटी बड़ी नहीं होती, क्योंकि वे भावात्मक हैं।

९३. **विभाव अर्थ पर्याय कितने प्रकार की होती हैं ?**
दो प्रकार की—गुण की शक्ति घट जाना तथा गुण विकृत हो जाना।

६४. शक्ति घट जाने से क्या समझे ?

जिस पर्याय में गुण की कुछ शक्ति व्यक्त रहे और कुछ अव्यक्त। जैसे घनाच्छादि सूर्य प्रकाश की कुछ शक्ति व्यक्त होती है और शेष ढकी रहती है ऐसे ही संसारी जीव के मति ज्ञानादि में व अल्प वीर्य में कुछ मात्र ही शक्ति व्यक्त होती है, शेष नहीं।

६५. विकृत गुण से क्या समझे ?

जिस पर्याय में गुण की शक्ति विपरीत दिशा में व्यक्त हो। जैसे दूध सड़ जाने की भांति जीव के सम्यक्त्व व चारित्र गुण विकृत होकर आनन्दरूप से व्यक्त होने की बजाये मिथ्यात्व व व्याकुलता रूप बन जाते हैं।

६६. क्या आम्रफल की व्यञ्जन पर्याय उसके ऊपरी आकार में ही होती है ?

नहीं, व्यञ्जन पर्याय प्रदेशों की घनाकार रचना को कहते हैं, जो भीतर व बाहर सर्वत्र रहती है।

६७. स्वभाव व्यञ्जन पर्याय के साथ विभाव अर्थ पर्याय रहे ऐसा द्रव्य कौन ?

ऐसा कोई द्रव्य सम्भव नहीं; क्योंकि व्यञ्जन पर्याय शुद्ध होने पर तो सभी पर्याय अवश्य शुद्ध ही होती हैं।

६८. विभाव व्यञ्जन पर्याय साथ स्वभाव अर्थ पर्यायें रहे ऐसा द्रव्य कौन सा ?

सम्यग्दृष्टि जीव अथवा अर्हन्त भगवान, इन दोनों की व्यञ्जन पर्याय विभाविक है पर सम्यग्दृष्टि का एक सम्यक्त्व गुण और अर्हन्त भगवान के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य आदि अनेक गुणों की स्वभाविक पर्याय होती है।

प्रश्नावली

१. निम्न पदार्थों में स्वभाव विभाव अर्थ व व्यञ्जन पर्याय दर्शाओ।

स्कन्ध, परमाणु, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल। अस्तित्व, ज्ञान, रूप, प्रदेशत्व, चारित्र, श्रद्धा, सुख, रस, अवगाहना हेतुत्व, गति हेतुत्व, अचेतनत्व, क्रियावती शक्ति।

२. निम्न किस किस पदार्थ के स्वभाव या विभाव अर्थ या व्यंजन पर्याय हैं ?

ध्वनि, प्रतिध्वनि, छाया, प्रतिबिम्ब, सूर्य, विमान, घड़ी के पिण्डोलमका हिलना, दुख, मोक्ष केवलज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, कुज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान।

३. निम्न पदार्थ पर्याय हैं या गुण तथा क्यों ?

मति ज्ञान, केवल ज्ञान, खट्टा स्वाद, इन्द्रिय सुख, लाल रंग, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ठण्डा, गर्म, नर्म।

४. निम्न गुणों की कितनी व कौन सी पर्याय होती हैं ?

ज्ञान, दर्शन, सुख, सम्यक्त्व, चारित्र, रस, रूप, गंध, स्पर्श, अवगाहना हेतुत्व।

५. उपरोक्त सर्व पर्यायों में सादि सान्त, सादि अनन्त, अनादि सान्त व अनादि अनन्त पर्याय बताओ।

६. स्वभाव व विभाव पर्यायों की उत्पत्ति व विनाश में कितने कितने काल का अन्तराल पड़ता है ?

७. वर्तमान अज्ञान दूर होकर ज्ञान प्रगट होने में कितना अन्तराल पड़ता है ?

२/६ अन्य विषयाधिकार

(१. विग्रह गति)

(१) विग्रह गति किसको कहते हैं ?

एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिये जीव के जाने को विग्रह गति कहते हैं।

(२) विग्रह गति कितने प्रकार की होती है ?

चार—ऋजुगति, पाणिमुक्ता गति, लांगलिका गति, गोमूत्रिका गति ।

३. ऋजु गति किसे कहते हैं ?

सीधी गति अर्थात बिना मुड़े सीधे जाने को ऋजुगति कहते हैं।

४. पाणिमुक्ता गति किसे कहते हैं ?

गमन करते हुए बीच में एक बार मुड़ना पड़े ऐसी गति।

५. लांगलिका गति किसे कहते हैं ?

गमन करते हुए बीच में दो बार मुड़ना पड़े ऐसी हलाकार गति ।

६. गोमूत्रिका गति किसे कहते हैं ?

गमन करते हुए बीच में तीन बार मुड़ना पड़े ऐसी गति।

७. सीधा चलने से क्या समझे ?

ऊर्ध्व रेखा पर (Vertical axis पर) या तिर्यक् रेखा पर (Horizontal axis पर) ही चलना तिरछा (Diagonal axis पर) नहीं।

८. गमन करते हुए मुड़ने से क्या समझे ?

विग्रह गति में जीव सीधा ही चलता है तिरछा (diagonally) नहीं। यदि उसका इष्ट स्थान सीधे मार्ग (Horizontal या Vertical) से हटकर हो तो उसे वहाँ पहुँचने के लिये ऊर्ध्व रेखा पर (Vertical axis पर) या तिर्यक रेखा पर (Horizontal axis पर) चलकर आगे मुड़कर कोण बनाना पड़ेगा, अन्यथा वह वहां पहुँच नहीं सकता।

९. विग्रह गति में अधिक से अधिक कितने मोड़ संभव हैं ?

तीन से अधिक सम्भव नहीं, क्योंकि एक दो या तीन कोण बनाकर लोक के किसी भी कोने में पहुँचा जा सकता है।

(१०) इन विग्रह गतियों में कितना-२ काल लगता है ?

ऋजुगति में एक समय, पाणिमुक्ता में अर्थात एक मोड़े वाली में दो समय, लांगलिका (दो मोड़े वाली में) में तीन समय और गोमूत्रिका (तीन मोड़े वाली) में चार समय लगते हैं।

११. एक मोड़ में दो समय कैसे लगते हैं ?

एक समय से कम की कोई गति नहीं होती। मोड़ पर जाकर रुकना आवश्यक है, अतः मुड़ने के पश्चात नई गति प्रारम्भ होती है। इस प्रकार मुड़ने से पहिले और पीछे दो गतियों में दो समय लगना युक्त है। इसी प्रकार २ मोड़े वाली में ३ समय और तीन मोड़े वाली में चार समय समझना।

(१२) मुक्त होने पर जीव कौन सी गति से गमन करता है ?

केवल ऋजु गति से। वह अनाहारक ही होता है।

(२. समुद्घात)

(१३) समुद्घात किसे कहते हैं ?

मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है।

१४. शरीर को छोड़े बिना प्रदेश बाहर निकलना क्या ?

कारण विशेष को प्राप्त करके जीव के प्रदेश फैल जाते हैं। तब वे अपने मूल शरीर में भी रहते हैं और उससे बाहर चारों तरफ आकाश में भी।

१५. क्या समुद्धात सभी जीवों को होता है ?

नहीं, किसी किसी जीव को क्वचित कदाचित कारण विशेष मिलने पर होता है।

१६. समुद्धात कितने प्रकार का होता है ?

सात प्रकार का—मारणान्तिक समुद्धात्, कषाय समुद्धात्, वेदना समुद्धात्, वैक्रियक समुद्धात्, तैजस समुद्धात्, आहारका समुद्धात् और केवली समुद्धात्।

१७. मारणान्तिक समुद्धात किसे कहते हैं ?

मरण समय किसी किसी जीव के प्रदेश फैल कर अपना इष्ट स्थान तलाश करने जाते हैं। इस स्थान का स्पर्श करके वापस शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इसे मारणान्तिक समुद्धात् कहते हैं।

१८. कषाय समुद्धात किसे कहते हैं ?

कषाय वश जीव के प्रदेशों का कदाचित फैलना कषाय समुद्धात है।

१९. वेदना समुद्धात किसे कहते हैं ?

तीव्र वेदना में किसी जीव के प्रदेश कदाचित फैल कर योग्य औषध या जड़ी बूटी का स्पर्श करके वापस शरीर में प्रवेश करे सो वेदना समुद्धात है।

२०. मारणान्तिक, कषाय व वेदना समुद्धात किसे होता है ?

सभी प्रकार के जीवों को होने सम्भव हैं।

२१. वैक्रियक समुद्धात किसे कहते हैं व किसे होता है ?

अपने शरीर को बड़ा या छोटा बना लेने में; अथवा विक्रिया द्वारा अनेक शरीर बना लेने में उस जीव के प्रदेशों का फैलना या सुकड़ना तथा फैलकर सब शरीरों को क्रियाशील बना

देना वैक्रियक समुद्घात कहलाता है। यह अग्नि व वायु कायिक जीवों में तथा विद्याधरों में किसी किसी को अथवा विक्रिया ऋद्धिधारी साधुओं में होता है।

२२. **तैजस समुद्घात क्या है व किसे होता है ?**

यह दो प्रकार का होता है—शुभ तैजस व अशुभ तैजस। किसी मुनि को कदाचित तीव्र क्रोध आ जाने पर उसके बायें कन्धे से एक तेजोमय पुतला निकलकर अपने विरोधी व्यक्ति या पदार्थ को भस्म करके लौट आता है, तथा उस मुनि को भी अपने तेज से भस्म कर देता है। यह अशुभ तैजस है।

किसी मुनि को कदाचित करुणा उत्पन्न होने पर उसके दायें कन्धे से एक तेजोमय पुतला निकलकर लक्ष्य व्यक्ति या देश आदि का कष्ट रोग अथवा दुर्भिक्षादि निवारण कर वापस लौट आता है, और शरीर में प्रवेश कर जाता है। यह मुनि को भस्म नहीं करता। यह शुभ तैजस है। ये दोनों किसी किसी ऋद्धिधारी मुनि को ही होते हैं।

२३. **आहारक समुद्घात क्या है और किसे होता है ?**

किसी मुनि को कदाचित तत्वों में शंका होने पर या तीर्थंकर देव के दर्शनों की उत्कण्ठा होने पर उसके मस्तक एक हाथ प्रमाण धवल पुरुषाकार पुतला निकलता है और तीर्थंकर, केवली या श्रुतकेवलीका वे जहां कहीं भी स्थित हो स्पर्श करके लौट आता है। इतने मात्र से ही उसकी शंका आदि निवृत्त हो जाती हैं। इसे आहारक समुद्घात कहते हैं और किसी किसी महान ऋद्धिधारी मुनि को ही होता है।

२४. **केवली समुद्घात क्या व किसे होता है ?**

किसी किसी अर्हन्त केवली भगवन्त की आयु के अन्तिम क्षण में कदाचित उनके प्रदेश फैलकर समस्त लोकाकाश में व्याप्त हो जाते हैं; और पुनः लौटकर शरीर में समा जाते हैं। इसे

केवली समुद्घात् कहते हैं और तेरहवें गुण स्थान के अन्त में किसी किसी अर्हंत देव को ही होता है।

२५. **अर्हन्त भगवान केवली समुद्घात क्यों करते हैं?**
कदाचित उनकी आयु की स्थिति अन्य तीन अघातिय कर्मों की स्थिति की अपेक्षा कुछ हीन या अधिक रह जाये तो उन सब कर्मों की स्थिति को समान करने के लिये करते हैं।

२६. **केवली समुद्घात का क्या क्रम है और इसमें कितना समय लगता है?**
केवली समुद्घात् के अन्तर्गत चार विभाग हैं—दण्ड, कपाट, प्रतर व लोकपूर्ण।

(क) पहिले समय में उनके प्रदेश शरीर प्रमाण मोटाई में ही दण्डे की भांति ऊपर नीचे लोक की सीमाओं पर्यन्त फैल जाते हैं। इसे दण्ड समुद्घात् कहते हैं।

(ख) द्वितीय समय में दण्डाकार वे प्रदेश उतने ही मोटे रहकर दांई बांई दिशा में कपाट खुलने की भांति लोक की सीमाओं पर्यन्त फैल जाते हैं। इसे कपाट समुद्घात कहते हैं।

(ग) तृतीय समय में कपाटाकार वे प्रदेश उतने के उतने चौड़े रहते हुए आगे पीछे वाली मोटाई की दिशाओं में लोक की सीमाओं पर्यंत फैल जाते है। इसे प्रतर समुद्घात कहते हैं।

(घ) चतुर्थ समय में वे प्रदेश लोक के शेष बचे हुए नीचे ऊपर के कोनों में भी ज्ूं केतू चौड़े व मोटे रहते हुए फैलकर समस्त लोक को पूर्ण कर देते हैं। इसे लोकपूर्ण समुद्घात कहते हैं।

(च) पंचम समय में लोकपूर्ण समुद्घात संकुचित होकर प्रतराकार बन जाता है। छटे समय में प्रतराकार भी सिमट कर कपाटाकार हो जाता है। सप्तम समय में वह

कपाटाकार भी सुकड़ कर दण्डाकार और आठवें समय में वह दण्डाकार भी सिमटकर मूल शरीर में समा जाता है। इस प्रकार केवली समुद्घात में कुल आठ समय लगते हैं।

(३. कारण कार्य)

(२७) कारण किसे कहते हैं ?

कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं।

२८ उत्पादक सामग्री से क्या समझे ?

जिन पदार्थों की सहायता से कार्य उत्पन्न हो उन्हें उत्पादक कहते हैं।

(२९) कारण के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक समर्थ कारण दूसरा असमर्थ कारण।

(३०) समर्थ कारण किसे कहते हैं ?

प्रतिबन्धक का अभाव होने पर सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थ कारण कहते हैं। समर्थ कारण के होने पर अनन्तर (अगले ही क्षण) कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।

(३१) असमर्थ कारण किसे कहते हैं ?

भिन्न भिन्न प्रत्येक सामग्री को असमर्थ कारण कहते हैं। असमर्थ कारण कार्य का नियामक नहीं (अर्थात इसके होने पर कार्य हो अथवा न भी हो)।

३२. प्रतिबन्धक का अभाव व सहकारी का सद्भाव क्या ?

किसी भी कार्य की उत्पत्ति के लिये दो बातें आवश्यक हैं। विघ्नकारी कारणों का अभाव और सहायक कारणों का सद्भाव, दोनों में से एक शर्त भी पूरी न हो तो कार्य होना सम्भव नहीं। दो शर्तों के पूरी होने पर ही कार्य होता है। दोनों शर्तों का होना ही समर्थ कारण है।

(३३) सहकारी सामग्री के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक निमित्त दूसरा उपादान।

(३४) निमित्त कारण किसे कहते हैं ?

जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप न परिणमे, किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो, उसे निमित्त कारण कहते हैं। जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्हार, दण्ड व चक्रादि।

३५. निमित्त कितने प्रकार के होते हैं ?

दो प्रकार के साधारण व असाधारण।

३६. साधारण निमित्त किसे कहते हैं ?

जो सभी कार्यों के सामान्य रूप से सहकारी हों; जैसे गमन के लिये पृथिवी।

३७. असाधारण निमित्त किसे कहते हैं ?

कार्य में सहायक विशेष सामग्री को असाधारण निमित्त कहते हैं; जैसे गमन करने में रथ घोड़ा आदि।

३८. लोक के पदार्थों में साधारण असाधारण निमित्त का विभाग करो।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश व काल, क्रमशः गमन, स्थिति, अवगाह व परिणमन में साधारण निमित्त हैं; अन्य सर्व लौकिक पदार्थ असाधारण निमित्त हैं। तिनमें भी सामान्यपने व विशेषपने की अपेक्षा भेद हो सकता है; जैसे घड़े की उत्पत्ति में पृथिवी साधारण निमित्त, कुम्हार, चक्र आदि असाधारण निमित्त इत्यादि।

३९. अन्य प्रकार से निमित्त कितने प्रकार के हैं ?

तीन प्रकार के—प्रेरक, उदासीन, बलाधान।

४०. प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं ?

इच्छा तथा क्रिया द्वारा सहकारी होने वाले पदार्थ प्रेरक निमित्त हैं; जैसे घर की उत्पत्ति में कुम्हार व चक्र तथा ध्वजा के हिलाने में वायु। प्रेरक निमित्त कार्य का नियामक है, अर्थात उसके होने पर कार्य की उत्पत्ति अवश्य होती है।

४१. उदासीन निमित्त किसे कहते हैं ?

जिस तकारी पदार्थ में इच्छा व क्रिया न हो परन्तु उसके

अभाव में कार्य न हो सके, उसे उदासीन निमित्त कहते हैं। जैसे घट की उत्पत्ति में चक्र के नीचे की कीली अथवा ध्वजा हिलाने में ध्वज दण्ड। उदासीन निमित्त कार्य का नियामक नहीं होता, अर्थात इसके होने पर कार्य हो अथवा न भी हो। पर इसके बिना कार्य होना सम्भव नहीं।

४२. बलाधान निमित्त किसे कहते हैं ?

जिस निमित्त में इच्छा व क्रिया न हो, पर फिर भी वह कार्य का नियामक हो अर्थात उसके होने पर कार्य अवश्य हो, उसे बलाधान निमित्त कहते हैं। जैसे राग द्वेष की उत्पत्ति में मोहनीय कर्म का उदय तथा दर्पण के प्रतिबिम्ब के लिये बाह्य पदार्थ।

(४३) उपादान कारण किसे कहते हैं ?

(क) जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप परिणमे उसे उपादान कारण कहते हैं; जैसे घट की उत्पत्ति में मृत्रिका।

(ख) (अनादि काल में द्रव्यों में पर्यायों का प्रवाह चला आ रहा है उसमें, अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय युक्त द्रव्य उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय युक्त द्रव्य उसका कार्य है।)

४४. उपादान कारण कितने प्रकार का होता है ?

एक त्रिकाली दूसरा क्षणिक।

४५. त्रिकाली उपादान कारण किसे कहते हैं ?

त्रिकाली द्रव्य अपनी पर्याय का उपादान कारण है, क्योंकि सदा वह ही पर्याय रूप परिणमन करता है।

४६. क्षणिक उपादान कारण किसे कहते हैं ?

पूर्वक्षणवर्ती पर्याययुक्त द्रव्य उत्तरक्षणवर्ती पर्याययुक्त द्रव्य को कारण पड़ता है; क्योंकि उसका व्यय ही उत्तर पर्याय का उत्पाद है। अथवा उसका व्यय हुए बिना उत्तर पर्याय का उत्पाद नहीं हो सकता; जैसे कि घट की उत्पत्ति में कुशल।

४७. कार्य किसे कहते हैं ?

द्रव्य की या गुण की पर्याय को उसका कार्य कहते हैं।

४८. कार्य कितने प्रकार के होते हैं ?

दो प्रकार के—सामान्य व विशेष।

४९. सामान्य कार्य किसको कहते हैं ?

प्रत्येक द्रव्य में प्रतिक्षण जो स्वाभाविक परिणमन होता रहता है वही सामान्य कार्य है। अर्थात स्वभाव अर्थ व व्यञ्जन पर्याय सामान्य कार्य है, क्योंकि इसके बिना विशेष कार्य अर्थात विभाव पर्याय हो नहीं सकती।

५०. सामान्य कार्य किसमें होता है ?

शुद्ध व अशुद्ध सभी द्रव्यों में होता है।

५१. अशुद्ध द्रव्य में स्वभाव पर्याय रूप सामान्य कार्य कैसे सम्भव है ?

परिणमन प्रत्येक द्रव्य में ही होता है, पर अशुद्ध द्रव्यों की स्थूल अशुद्धि पर्यायों में अन्तर्लीन रहने से वह वहां प्रतीति में नहीं आता अथवा प्रधान नहीं होता है।

५२. सामान्य कार्य कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—परिणमन व परिस्पन्दन।

५३. सामान्य कार्य में किस प्रकार के निमित्त की आवश्यकता होती है ?

केवल साधारण निमित्त की। तहां परिणमन में काल द्रव्य और परिस्पन्दन में धर्मास्तिकाय साधारण निमित्त हैं।

५४. विशेष कार्य किसको कहते हैं ?

विशेष प्रकार से व्यक्त अशुद्ध या विभाव पर्याय विशेष कार्य हैं;-जैसे अग्नि के संयोग से जल ऊष्णता।

५५. विशेष कार्य कितने प्रकार के हैं ?

चार प्रकार—स्कन्ध रूप समान जातीय विभाव व्यञ्जन पर्याय, मनुष्यादि रूप असमान जातीय विभाव व्यञ्जन पर्याय

स्कन्धों व मनुष्यादि की गमनागमन क्रिया रूप विभाव द्रव्य पर्याय और दोनों द्रव्यों के गुणों की विभाव अर्थ पर्याय।

५६. **विशेष कार्य में किस प्रकार का निमित्त चाहिये ?**
साधारण व असाधारण दोनों।

५७. **क्या विभाव पर्याय बिना असाधारण निमित्त के होती है ?**
नहीं, क्योंकि क्योंकि विभाव या अशुद्ध नाम ही संयोगका है। संयोगी कार्य बिना संयोग या बाह्य निमित्त के हो जावे सो असम्भव है।

५८. **क्या स्वाभाविक पर्याय को भी असाधारण निमित्त चाहिये ?**
नहीं; स्वाभाविक कार्य केवल अपनी शक्ति से होता है, क्योंकि स्वभाव कहते ही उसे हैं जिसमें अन्य की अपेक्षा न हो। निमित्त रूप से वहां काल या धर्मास्तिकाय साधारण निमित्त होते हैं। असाधारण निमित्त कोई नहीं होता।

५९. **शुद्ध व अशुद्ध सभी कार्यों को असाधारण निमित्त निरपेक्ष बताने में क्या भूल है ?**
तहां दृष्टि में तो शुद्ध पर्याय या सामान्य बैठा रहता है और बातें की जाती हैं अशुद्ध पर्यायों की। सो घटित नहीं होता, प्रत्यक्ष विरोध आता है।

६०. **स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु का स्वतन्त्र परिणमन मानने में क्या दोष ?**
दृष्टि में तो परमाणु रहता है और स्कन्ध की बात की जाती है, जो घटित नहीं होता। दूसरी बात यह है कि संश्लेष बन्ध की अवस्था में परमाणु की स्वतंत्रता रह नहीं जाती। क्योंकि बन्ध को प्राप्त दो द्रव्य विजातीय रूप परिणत हो जाते हैं।

६१. **बिना पैट्रोल केवल क्रियावती शक्ति से मोटर चले, क्या दोष ?**
मोटर स्वयं कोई शुद्ध द्रव्य नहीं। जिस प्रकार शुद्ध होने से परमाणु असाधारण निमित्त के बिना भी स्वयं गमन व परिणमन कर सकता है, उस प्रकार कोई भी स्कन्ध नहीं कर सकता।

तृतीय अध्याय

(कर्म सिद्धान्त)

३/१ चतुः श्रेणी बन्ध अधिकार

(१. मूलोत्तर प्रकृति परिचय)

(१) जीव के कितने भेद हैं ?

दो हैं—संसारी व मुक्त ।

(२) संसारी जीव किसको कहते हैं ?

कर्म सहित जीव को संसारी जीव कहते हैं ।

(३) मुक्त जीव किसे कहते हैं ?

कर्म रहित जीव को मुक्त जीव कहते हैं ।

(४) कर्म किसको कहते हैं ?

जीव के रागद्वेषादि परिणामों के निमित्त से कार्माण वर्गणा रूप जो पुद्गल स्कन्ध जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन्हें कर्म कहते हैं ।

५. कर्म कितने प्रकार का होता ह ?

तीन प्रकार का—भाव कर्म, नोकर्म व द्रव्य बन्ध ।

६. भाव क र्म किसे कहते हैं ?

जीव के रागद्वेषात्य परिणाम को भाव कर्म कहते हैं ।

७. नोकर्म किसे कहते हैं ?

जीव के पंचभौतिक बाह्य शरीर को नोकर्म कहते हैं, अथवा लोक के सभी दृष्ट पदार्थ नोकर्म हैं, क्योंकि वे सभी किसी न किसी जीव के मृत शरीर ही हैं; जैसे चौको वनस्पति कायिक जीव का मृत शरीर है और स्वर्ण पृथिवी कायिक का ।

८. द्रव्य कर्म किसे कहते हैं ?

राग द्वेषादि के निमित्त से जो सूक्ष्म कार्माण वर्गणायें जीव के साथ बंधती हैं, और जो ज्ञानावरणीय आदि अनेक रूप होती हुई कार्माण शरीर का निर्माण करती हैं, उसे द्रव्य कर्म कहते हैं।

९. द्रव्य कर्म का बन्धना क्या ?

कार्माण वर्गणाओं का विशेष प्रवृत्तियों आदि को धारण करके जीव प्रदेशों के साथ दूध पानी एकमेक हो जाना ही उनका संश्लेष बन्ध है।

(१०) बन्ध के कितने भेद हैं ?

चार भेद हैं—प्रकृति बन्ध, प्रदेश बन्ध, स्थिति बन्ध व अनुभाग बन्ध ।

(११) इन चारों प्रकार के बन्धों का कारण क्या है ?

प्रकृति व प्रदेश बन्ध योग से होते हैं और स्थिति व अनुभाग बन्ध कषाय से ।

१२. बन्ध के कारणों में योग व कषाय का विभाग करो।

प्रकृति व प्रदेश बन्ध द्रव्यात्मक व प्रदेशात्म होने से उस का कारण भी प्रदेशात्मक होना चाहिये और वह जीव का योग है। स्थिति व अनुभाग भावात्मक परिणमन रूप होने से इसका कारण भी भावात्मक ही होना चाहिये और वह जीव का उपयोग या कषाय है।

(१३) प्रकृति बन्ध किसको कहते हैं ?

मोहादि जनक तथा ज्ञानादि घातक तत्तत्स्वभाव वाले कार्माण पुद्गल स्कन्धों का आत्मा से सम्बन्ध होने को प्रकृतिबन्ध कहते हैं।

(१४) प्रकृति बन्ध के कितने भेद हैं ?

आठ हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ।

(१५) ज्ञानावरणीय कर्म (प्रकृति) किसको कहते हैं ?

जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को घाते उसको ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

१६. ज्ञान गुण का घातना क्या ?

ज्ञान की शक्ति एक समय में समस्त लोकालोक को सर्व द्रव्य गुण पर्याय समेत जान लेने की है। उसे घटा कर तुच्छ मात्र कर देना, जिससे कि वह अल्प मात्र ही जानने को समर्थ हो सके, यह ही ज्ञान गुण का घात है।

(१७) ज्ञानावरण के कितने भेद हैं ?

पांच हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवल ज्ञानावरण।

१८. मति ज्ञानावरण आदि किन्हें कहते हैं ?

उस उस जाति के ज्ञान को घातने से उस उस नाम का है।

(१९) दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं ?

जो आत्मा के दर्शन गुण को घाते उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

२०. दर्शन गुण का घात क्या ?

ज्ञान गुण की भांति उसकी शक्ति को घटाकर तुच्छ मात्र कर देना ही उसका घात है।

(२१) दर्शनावरण कर्म के कितने भेद हैं ?

नव हैं—चक्षु दर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण, अवधि-दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला स्त्यानगृद्धि।

२२. चक्षु दर्शनावरणीय आदि किन्हें कहते हैं ?

उस उस जाति के दर्शन को घातने से उस उस नाम का कर्म है।

२३. निद्रा आदि पांच भेदों के लक्षण करो ?

थकावट से सर भारी होना, तथा आधे सोने व आधे जागते रहना 'निद्रा' है। पुनः पुनः निद्रा में प्रवृत्ति अथवा अति निर्भर

सोना; उठाये से भी न उठना 'निद्रा निद्रा' है। शोक या नशे के कारण नेत्र गाल विकृत होना, सोते सोते भी सिर आगे पीछे गिरते रहना। इस प्रकार बैठे बैठे ही सोना 'प्रचला' है। पुनः पुनः प्रचला में प्रवृत्ति करना अथवा बैठे बैठे बार बार सोना, सिर धुनते या घूमते हुए सोना, अथवा चारों दिशाओं में लोटते हुए सोना प्रचला प्रचला है, । इसमें मुख से लार बहती है।

स्वप्न में वीर्य विशेष का आविर्भाव हो, सोते सोते बहुत से कर्म कर दे, सोते सोते खड़ा रहे, खड़ा खड़ा बैठ जाये, बैठकर भी पड़ जाये, उठाने पर भी न उठे, चलता सोता रहे, काटता और बड़बड़ाता रहे, वह स्तयानगृद्धि' है।

२४. निद्रा के कारणभूत कर्म की दर्शनावरण संज्ञा करो ?

क्योंकि दर्शनगुण के घात हुए बिना निद्रा सम्भव नहीं।

(२५) वेदनीय कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के फल से जीव को आकुलता होवे, अर्थात जो अव्याबाध (अतीन्द्रिय) सुख को घाते उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

२६. अव्याबाध सुख का घात क्या ?

अतीन्द्रिय सुख से विमुख होकर भौतिक सुख साधनों में उलझना ही उसका घात है, क्योंकि भौतिक सुख व भौतिक दुख दोनों ही व्याकुलता रूप हैं।

२७. अतीन्द्रिय सुख क्या ?

समस्त भौतिक साधनों से निरपेक्ष अन्तरंग सहज आल्हादि, शान्ति आनन्द या निराकुलता ही अतीन्द्रिय सुख है।

(२८) वेदनीय कर्म के कितने भेद हैं ?

दो हैं—साता वेदनीय और असाता वेदनीय।

२९. साता असाता वेदनीय किसे कहते हैं ?

भौतिक सुख व उसकी साधना सामग्री का संयोग तथा दु:ख की

साधन सामग्री का वियोग कराने में कारण हो वह साता वेदनीय कर्म है। इसी प्रकार भौतिक दुख व उसकी साधन सामग्री का संयोग तथा सुख की साधन सामग्री का वियोग करने में कारण हो वह असाता वेदनीय कर्म है।

(३०) मोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

जो आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण को घाते उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

३१. सम्यक्त्व व चारित्र गुण का घात क्या ?

अपने पदार्थ चेतन स्वरूप की प्रतीति न होने के कारण शरीर को मैं तथा शरीर की साधन बाह्य चेतन अचेतन सामग्री को इष्टानिष्ट मानते रहना सम्यक्त्व गुण का घात है। शरीर व शरीर साधन उपरोक्त सामग्री में अहंकार ममकार करते हुए उसमें ही कर्तृत्व व भोक्तृत्व भाव के कारण अत्यन्त व्यग्रता से उसी में राग द्वेष हर्ष विषाद करते रहना चारित्र गुण का घात है, क्योंकि समता भाव का नाम चरित्र कहा गया है।

३२. ज्ञान दर्शन गुण का घात और सम्यक्त्व चारित्र गुण का घात इन दोनों में क्या अन्तर है ?

ज्ञान दर्शन का घात केवल आवरण रूप है और सम्यक्त्व चारित्र का घात मूर्छा रूप है। अर्थात पहिले घात से जीव की शक्ति केवल कम हो जाती है पर मूर्छित होकर विकृत या विपरीत नहीं होती। दूसरे घात से वह मूर्छित होकर विकृत या विपरीत हो जाती है अर्थात वस्तु जैसी नहीं है वैसी भासने लगती है, और जो अपना कर्तव्य नहीं है वही कर्तव्य दीखने लगता है। ज्ञान दर्शन के घात से जीव की विशेष हानि नहीं पर सम्यक्त्व चारित्र का घात ही से उसे संसार बन्धन में डालने के कारण विशेष नाशकारी है।

(३३) मोहनीय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—दर्शनमोहनीय व चारित्र मोहनीय।

(३४) दर्शनमोहनीय किसे कहते हैं ?

आत्मा के सम्यक्त्व गुण को जो घाते उसे दर्शनमोहनीय कहते हैं।

(३५) दर्शन मोहनीय के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति।

(३६) मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से जीव को अतत्व श्रद्धान हो, उसको मिथ्यात्व कहते हैं।

(३७) सम्यग्मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से मिले हुए परिणाम; जिनको न सम्यक्त्व रूप कह सकते हैं न मिथ्यात्व रूप, उसको सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं।

(३८) सम्यक्प्रकृति किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्व गुण का मूल घात तो न हो परन्तु चल मलादि दोष उपजें उसको सम्यक्प्रकृति कहते हैं।

(३९) चारित्र मोहनीय किसे कहते हैं ?

जो आत्मा के चारित्र गुण को घाते उसको चारित्र मोहनीय कहते हैं।

(४०) चारित्र मोहनीय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—कषाय (वेदनीय) और नोकषाय (वेदनीय)।

४१. कषाय व नोकषाय वेदनी किसे कहते हैं ?

जिन प्रकृतियों के उदय से जीव में कषाय उत्पन्न हो वह कषाय वेदनीय कर्म है। किंचित कषाय को नोकषाय कहते हैं। जिस प्रकृति के उदय से जीव में नोकषाय उत्पन्न हो वह नोकषाय वेदनी है।

४२. कषाय के कितने भेद हैं ?

सोलह—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया, अनन्तानुबन्धी लोभ। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध,

अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया, अप्रत्याख्यानावरण लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ। संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया, संज्वलन लोभ।

४३. अनंतानुबन्धी आदि किन्हें कहते हैं ?

कषायों की वासना की तीव्रता मन्दता बनाने के लिये ये भेद हैं।

४४. वासना किसे कहते हैं ?

कषाय की अव्यक्त अन्तरंग धारणा को वासना कहते हैं।

४५. कषाय व वासना में क्या अन्तर है ?

वासना कारण है और कषाय उसका कार्य, जैसे गुण और उसकी पर्याय। वासना अव्यक्त रूप से अन्दर स्थित रहती है जैसे गुण और कषाय व्यक्त रूप से बाहर प्रगट होती है जैसे पर्याय। वासना अनुभव में नहीं आती कषाय अनुभव में आती है। उदाहरण के रूप में—एक व्यक्ति को किसी से ईर्ष्या हो गई, वह अन्दर में वासना बन कर पड़ गई। बाहरी व्यवहार में वह व्यक्ति अब भी उसके साथ मित्रवत् मधुर व्यवहार करता है, पर भीतर में कटाकटी है। कभी अवसर मिलने पर उसको विस्फोट होता है, जिसके कारण कदाचित क्रोध की तड़क भड़क व लड़ाई मार पीट प्रगट हो जाती है। वह क्रोध कुछ देर पश्चात दब जाता है, पर उसकी वह पूर्व वासना अब भी बनी रहती है। कालान्तर में पुनः उसका विस्फोट होता है। वाह्य विस्फोट पुनः दब जाता है पर वासना फिर भी बनी रहती है। यहां बाह्य विस्फोट को कषाय कहा गया है उस कषाय के भीतरी आशय को वासना।

४६. कषाय व वासना की तीव्रता मन्दता में क्या अन्तर है।

कषाय की तीव्रता का अर्थ है उसका तीव्र विस्फोट जैसे क्रोध

वश व्यक्ति को जान से मार देना और मन्दता का अर्थ है मन्द रूप में केवल कुछ लक्षणों का व्यक्त होना जैसे केवल एक घुड़की देकर क्रोध व्यक्त करना। वासना की तीव्रता का अर्थ है उसका भव भवान्तर तक जीव के अन्दर आशय रूप से स्थित रहना और मन्दता का अर्थ है उत्पन्न होने के कुछ क्षणों पश्चात ही धुल जाना।

४७. कषाय व वासना में अधिक घातक कौन ?

वासना अधिक घातक है, क्योंकि कषाय दब भी जाये तब भी वह अन्दर ही अन्दर व्यक्ति को संतप्त किये रहती है। दूसरी ओर वासना धुल जाये तो कषाय होनी सम्भव ही नहीं है।

४८. कषाय की तीव्रता मन्दता को आगम में क्या कहा है ?

लेश्या।

४९. लेश्या किसे कहते हैं ?

कषाय में रंगी हुई जीव की प्रवृत्ति या योग को लेश्या कहते हैं। इसी लिये इसे रंगों के नाम से बताया गया है।

५०. लेश्या कितने प्रकार की है ?

छः प्रकार की—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

५१. छहों लेश्याओं में तीव्रता मन्दता दिखाओ ?

कृष्णादि तीन अशुभ हैं और पीत आदि तीन शुभ। तहां कृष्ण लेश्या अत्यन्त तीव्र क्रोधादि रूप प्रवृत्ति का नाम है और कापोत अत्यन्त मन्द का। पीत लेश्या अत्यन्त तीव्र दया दान आदि रूप प्रवृत्ति का नाम है और शुक्ल अत्यन्त मन्द का।

५२. कषाय व लेश्या में क्या अन्तर है ?

कषाय उपयोग रूप है और लेश्या योग रूप। अन्तरंग उपयोग में कषाय भाव उदित होने पर तत्तद्योग्य प्रवृति मन वचन काय की प्रवृत्ति या योग होता ही है इसलिये दोनों एक हैं, पर समझाने के लिये दो भेद करके बताया है।

५३. वासना कितने प्रकार की है ?
चार प्रकार की—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान व संज्वलन ।

५४. वासना के भेदों को क्रोधादि कषायों का विशेषण क्यों बनाया ?
क्रोधादि चार कषाय अपनी अपनी तीव्र या मन्द वासना की अपेक्षा प्रत्येक चार चार प्रकार की हो जाती है; जैसे क्रोध भी अनन्तानुबन्धी आदि चार प्रकार का और मान आदि भी ।

(५५) नोकषाय के कितने भेद हैं ?
नव—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (ग्लानि), स्त्री वेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ।

५६. वेद किसे कहते हैं ?
स्त्री के पुरुष के साथ, पुरुष के स्त्री के साथ और नपुंसक के दोनों के साथ मैथुन करने का अन्तरंग भाव वेद कहलाता है ।

५७. वेद कितने प्रकार का है ?
दो प्रकार का—भाव वेद व द्रव्य वेद । इनमें से प्रत्येक के तीन तीन भेद हैं—स्त्री, पुरुष व नपुंसक ।

५८. द्रव्य व भाव वेद किसे कहते हैं ?
अन्तरंग में मैथुन भाव रूप कषाय का होना भाव वेद है और शरीर में स्त्री पुरुष आदि के अंगोपागों का होना द्रव्य वेद है ।

५९. नोकषायों के साथ अनन्तानुबन्धी आदि भेद क्यों न बताये ?
ये कषायें उदय काल मात्र को स्थित रहती हैं, पीछे पूर्ण विनष्ट हो जाती हैं । फिर निमितादि मिलने पर उदित हो जाती हैं । इनकी कोई वासना नहीं होती इसलिये इन्हें अनन्तानुबन्धी भेदों युक्त नहीं कहा जाता ।

६०. नोकषायों को 'नो' क्यों कहा गया ?
वासना विहीन होने से ये किंचित कषाय हैं पूरी नहीं ।

(६१) अनन्तानुबन्धी क्रोधमान, माया, लोभ किसे कहते हैं ?
जो आत्मा के स्वरूपाचरण चारित्र को घाते उनको अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ कहते हैं ।

६२. स्वरूपाचरण चारित्र को घात ने से क्या तात्पर्य ?

मिथ्यात्व के सहवर्ती होने से यह कषाय जीव को अन्तरंग की ओर लक्ष्य करने नहीं देती। इसी के उदय से वह बाह्य पदार्थों में इष्टानिष्ट भाव को धारण करता हुए उनके पीछे व्यग्र बना रहता है।

(६३) मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी में क्या अन्तर है ?

मिथ्यात्व सम्यक्त्वगुण का घातक होने से अभिप्राय व श्रद्धा को विपरीत करता है और अनन्तानुबन्धी चारित्र का घातक होने से अन्तर प्रवृत्ति को विपरीत करता है।

(६४) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किसे कहते हैं ?

जो आत्मा के देश चारित्र को घाते उनको अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

(६५) प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किसे कहते हैं ?

जो आत्मा के सकल चारित्र को घाते, उनको प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

(६६) संज्वलन क्रोध मान माया लोभ किसे कहते हैं ?

जो आत्मा के यथाख्यात चारित्र को घाते उनको संज्वलन कषाय क्रोध मान माया लोभ) और नोकषाय कहते हैं।

६७. देश चारित्र आदि को घातना क्या ?

इस इस प्रकृति के उदय में जीव की वैराग्य व त्याग शक्ति वृद्धिगत नहीं हो पाती। भोगों से विरक्त होना तथा साम्यता में स्थित होना चाहते हुए भी उस उस प्रकार के चारित्र को स्पर्श नहीं कर पाता। यही उस उस का घात है ?

६८. सम्यक्त्व होते हुए भी चारित्र धारणा क्यों नहीं करता ?

सम्यक्त्व का काम अन्तरंग में हेयोपादेय विवेक उत्पन्न कराना मात्र है। तदनन्तर हेय का त्याग वैराग्य की वृद्धि के आधीन है और वह चारित्र के अन्तर्गत है।

६९. अनन्तानुबन्धी का उत्कृष्ट वासना काल कितना ?

अनन्तानुबन्धी वासना अनन्त काल रहती है अर्थात भव भवान्तर तक साथ जाती है। अप्रत्याख्यान का उत्कृष्ट काल छः महीने है। प्रत्याख्यान का १५ दिन और संज्वलन का अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

७०. नोकषाय कौन से चारित्र को घातती है ?

यथाख्यात चारित्र को।

(७१) आयु कर्म किसे कहते हैं ?

जो कर्म आत्मा को नारक तिर्यञ्च मनुष्य देव के शरीर में रोक रखे उसको आयु कर्म कहते हैं। अर्थात आयु कर्म आत्मा के अवगाह गुण को घातता है।

(७२) आयु कर्म के कितने भेद हैं ?

चार-नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु व देवायु।

(७३) नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव को गत्यादिक नाना रूप परिणमावै अथवा शरीरादिक बनावे। भावार्थ–नामकर्म आत्मा के सूक्ष्मत्व गुण को घातता है।

(७४) नाम कर्म के कितने भेद हैं ?

तिरानवे—चार गति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव); पांच जाति (एकेन्द्रियादि पंचेन्द्रिय पर्यन्त); पांच शरीर (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण); तीन अंगोपांग (औदारिक वैक्रियक आहारक); एक निर्माण कर्म, पांच बन्धन कर्म (पांचों शरीरों के पांच); पांच संघात कर्म (पांचों शरीरों के); छः संस्थान समचतुरस्र, न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन व हुंडक); छः संहनन (वज्र ऋषभ नाराच, वज्र नाराच नाराच, अर्द्ध नाराच, कीलक, असंप्राप्त सृपाटिका); पांच वर्ण (कृष्ण नील रक्त पीत श्वेत); दो गन्ध (सुगन्ध दुर्गन्ध) पांच रस (खट्टा मीठा कडुआ कसायला चरपरा); आठ स्पर्श (कठोर, कोमल, हलका, भारी, ठण्डा, गर्म, चिकना, रूखा); चार

आनुपूर्वीय (नरक तिर्यंच मनुष्य व देव); एक अगुरु लघु, एक उपघात, एक परघात, एक आतप, एक उद्योत, दो विहायोगति (प्रशस्त अप्रशस्त)। (आगे सब एक एक) एक उच्छवास, एक त्रस, एक स्थावर, एक बादर, एक सूक्ष्म, पक पर्याप्ति, एक अपर्याप्ति, एक प्रत्येक, एक साधारण, एक स्थिर, एक अस्थिर, एक शुभ, एक अशुभ, एक सुभग एक दुर्भग, एक सुस्वर; एक दु:स्वर, एक आदेय, एक अनादेय, एक यश: कीर्ति, एक अयश: कीर्ति, एक तीर्थंकर नाम कर्म।

(७५) गति नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जो कर्म जीव का आकार नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य व देव के समान बनाये।

७६. गति व आयु में क्या अन्तर है ?

गति कर्म शरीर के आकार का निर्माण करता है और आयु कर्म उसे कुछ निश्चित काल तक उस आकार में या शरीर में बान्ध कर रखता है।

(७७) जाति किसको कहते हैं ?

अव्यभिचारी सदृशता से एक रूप करने वाले विशेष को जाति कहते हैं। अर्थात वह सदृश जाति वाले ही पदार्थों को ग्रहण करता है। (जैसे गो जाति से खण्डी मुण्डी सभी गौओं का ग्रहण हो जाता है)।

(७८) जाति नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय कहा जाये। (अर्थात जो कर्म इस इस जाति का शरीर बनावे)।

(७९) शरीर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से आत्मा के औदारिकादि शरीर बने।

(८०) निर्माण नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिसके उदय से अंगोपयांग की ठीक ठीक रचना हो (अर्थात

आंख के स्थान पर आंख और नाक के स्थान पर नाक हो) उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं।

(८१) बन्धन नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से औदारिकादि शरीरों के परमाणु परस्पर बन्ध को प्राप्त हो (बिखर कर पृथक पृथक न हो जायें) उसे बन्धन नाम कर्म कहते हैं।

(८२) संघात नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से औदारिकादि शरीर के परमाणु छिद्र रहित एकता को प्राप्त हों।

(८३) संस्थान नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति बने उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं।

(८४) समचतुरस्र संस्थान किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर की शकल ऊपर नीचे तथा बीच में समभाग से (Proportional) बने।

(८५) न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बड़ के वृक्ष की तरह का हो अर्थात जिसके नाभि से नीचे के अंग छोटे और ऊपर के अंग बड़े हों।

(८६) स्वाति संस्थान किसको कहते हैं ?

न्यग्रोध परिमण्डल से बिल्कुल विपरीत लक्षण को स्वाति संस्थान कहते हैं जैसे सर्प की नाभी। (अर्थात नीचे के अंग बड़े और ऊपर के छोटे हों)।

(८७) कुब्जक संस्थान किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर कुबड़ा हो।

(८८) वामन संस्थान किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से बौना शरीर हो।

(८९) हुण्डक संस्थान किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास शकल के न हों।

(९०) संहनन नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से हाड़ों का बन्धन विशेष हो, उसे संहनन नामकर्म कहते हैं।

(९१) वज्रर्षभनाराच संहनन किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़ हों, वज्र की ही कीली हों तथा वेष्टन (चमड़ा) भी वज्र के हों।

९२. वज्र के हाड़ आदि कैसे ?

अत्यंत कठोर, सुदृढ़ व मजबूत हड्डी, चमड़ा आदि वज्र का कहा जाता है।

(९३) वज्रनाराच संहनन किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़ व वज्र की कीली हों परन्तु वेष्टन वज्र का न हो।

(९४) नाराच संहनन किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से वेष्टन और कीली सहित हाड़ हों (पर कोई भी वस्तु वज्र की न हो)।

(९५) अर्द्धनाराच संहनन किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से हाड़ों की संधि अर्द्धकीलित हो।

(९६) कीलक संहनन किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से (बिना कीलों के) हाड़ परस्पर कीलित हों।

(९७) असंप्राप्त सुपाटिका संहनन किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से जुदे जुदे हाड़ नसों से बन्धे हों, परस्पर कीले हुए न हों।

९८. संहनन कौन से शरीर में होता है ?

केवल औदारिक शरीर में ही संहनन होता है, क्योंकि उसमें

ही हड्डी चमड़ा आदि होता है, वैक्रियक आदि शरीरों में नहीं ।

(९९) वर्ण नामकर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर में रंग हो।

(१००) गन्ध नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर में गन्ध हो ।

(१०१) रस नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर में रस हो ।

(१०२) स्पर्श नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श हो ।

१०३. वर्ण गन्ध रस व स्पर्श किस शरीर में होते हैं ?

सभी शरीर में होते हैं, क्योंकि वे पुद्गल के गुण हैं।

१०४. अंगोपांग नाम कर्म के तीन ही भेद क्यों किये ?

औदारिकादि तीन शरीर ही अंगोपांग युक्त होते है, तैजस व कर्माण के अपने कोई स्वतंत्र अंगोपांग नहीं होते ।

(१०५) आनुपूर्वी नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से आत्मा के प्रदेश मरण से पीछे और जन्म से पहले अर्थात विग्रहगति में मरण से पहले के शरीर के आकार रहें।

(१०६) अगुरु लघु नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर लोहे के गोले की तरह भारी और आक के तूल की तरह हलका न हो ।

१०७. अगुरुलघु गण को घाते सो अगुरुलघु कर्म ऐसा कहें तो ?

यह कर्म शरीर से सम्बन्ध रखता है, आत्मा से नहीं, अत: शरीर के भारी हलके पने में ही इसका व्यापार है।

(१०८) उपघात नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से अपना घात करने वाले ही अंग हों (जैसे बारह सींगे के सींग) ।

(१०९) परघात नामकर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से दूसरे का घात करने वाले अंग हों (जैसे सिंह के नख)।

(११०) आतप नामकर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से आतप रूप शरीर हो, जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब (और अग्नि)।

(१११) उद्योत नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से उद्योत रूप शरीर है। (अर्थात चन्द्रमा वत् शीतल प्रकाशयुक्त शरीर है जैसे खद्योत)

(११२) विहायोगति नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन हो। उसके शुभ और अशुभ ऐसे दो भेद हैं; (यथा मनुष्य की चाल व ऊंट की चाल)

(११३) उच्छ्वास नामकर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से श्वासोच्छ्वास हो।

(११४) त्रस नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादि जीवों में जन्म हो।

(११५) स्थावर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से पृथ्वी अप तेज वायु और वनस्पति में जन्म हो।

(११६) पर्याप्ति कर्म किसको कहते हैं ?

जिसके उदय से अपने अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो।

(११७) पर्याप्ति किसको कहते हैं ?

आहारक वर्गणा, भाषा वर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को शरीर इन्द्रियादि रूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं।

(११८) पर्याप्ति के कितने भेद हैं ?

छह—प्रथम आहार पर्याप्ति, दूसरी शरीर पर्याप्ति, तीसरी इन्द्रिय पर्याप्ति, चौथी श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, पांचवीं भाषा पर्याप्ति, छटी मनः पर्याप्ति।

११९. आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं ?
आहारक वर्गणा के परमाणुओं को खल रसभाव परिणमावने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता ।

१२०. शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं ?
आहार पर्याप्ति द्वारा खलभाग रूप परिणमने वाले परमाणुओं का मांस हाड़ आदि कठोर रूप में और रसभाग रूप परिणमने वालों को रुधिरादि द्रव रूप में परिणमावने की कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता ।

१२१. इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं ?
उपरोक्त पर्याप्तियों द्वारा हाड़ आदि रूप परिणमने को समर्थ उन्हीं आहारक वर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रियों के आकार रूप में परिमावने को कारण भूत जीव की शक्ति की पूर्णता ।

१२२. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं ?
उपरोक्त में से अतिरिक्त अन्य आहारक वर्गणाओं को ग्रहण करके उण्हें श्वासोच्छवास रूप में परिणमावने को कारण भूत जीव की शक्ति की पूर्णता ।

१२३. भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं ?
भाषा वर्गणाओं को ग्रहण करके उन्हें वचन रूप में परिणमावने को कारण भूत जीव की शक्ति की पूर्णता ।

१२४. मनः पर्याप्ति किसे कहते हैं ?
मनोवर्गणा को ग्रहण करके उन्हें मन हृदय स्थान में अष्ट पांखुड़ी के कमलाकार मन के रूप में परिणमावने को कारण भूत जीव को शक्ति की पूर्णता ।

१२५. छहों पर्याप्तियों में कितना कितना काल लगता है ?
उपरोक्त क्रम से ही एक के पश्चात एक पूरी होते हुए इन सबका पूरा काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है । पृथक पृथक एक एक का पूर्ति काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है । पहली पर्याप्ति से दूसरी का, दूसरी से तीसरी का इसी प्रकार आगे आगे वाली पर्याप्ति

का काल अपने से पूर्व पूर्व की अपेक्षा कुछ अधिक है। जघन्य से उत्कृष्ट पर्यन्त अन्तर्मुहूर्त के अनेक भेद हैं। सो यहां तत्-द्योग्य अन्तर्मुहुर्त समझना।

१२६. **छहों पर्याप्तियों का प्रारम्भ व अन्त किस क्रम से होता है ?**
आहार पर्याप्ति को आदि लेकर पूर्वोक्त क्रम से ही इन की पूर्णता तो आगे पीछे होती है, पर इन सब का प्रारम्भ एक दम भवधारण के प्रथम क्षण में ही हो जाता है।

१२७. **किस किस जीव को कितनी पर्याप्ति होती है ?**
एकेन्द्रिय जीव के भाषा व मन के बिना चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ओर असैनी पंचेन्द्रिय के मन बिना पांच और सैनी पंचेन्द्रिय के छहों पर्याप्तिमें होती हैं।

१२८. **पर्याप्त जीव कौन से हैं ?**
शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात जीव पर्याप्त संज्ञा को प्राप्त होता है, क्योंकि इसके पूर्ण होने पर अगली पांचों पर्याप्तियें से क्रम पूर्वक नियम से पूरी हो जाती हैं।

(१२९) **अपर्याप्ति नाम कर्म किसको कहते हैं ?**
जिस कर्म के उदय से लब्ध्य पर्याप्त अवस्था हो उसको अपर्याप्ति नाम को कहते हैं।

१३०. **अपर्याप्त जीव कौन से व कितने प्रकार के होते हैं ?**
अपर्याप्त जीव दो प्रकार के होते हैं—निवृत्ति अपर्याप्त और लब्धि अपर्याप्त। शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाने के पश्चात् जिस जीव को अवश्य पर्याप्त संज्ञा प्राप्त करनी है वह जब तक उसे (शरीर पर्याप्ति) को पूरी नहीं कर लेता तब तक निवृत्ति अपर्याप्त कहलाता है। पर जिस जीव को शरीर पर्याप्ति प्रारम्भ हो जाने पर भी उसे पूरी करने की शक्ति न हो, और उस पर्याप्ति के अधूरी रहते में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाये, वह लब्ध्यपर्याप्तक कहलाता है। श्वास के अठहारवें भाग प्रमाण ही उनकी आयु होती है।

(१३१) प्रत्येक नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो उसको प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं (जैसे मनुष्य आदि)।

(१३२) साधारण नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हों, उसको साधारण नाम कर्म कहते हैं।

१३३. प्रत्येक व साधारण शरीर को विशदता से समझाओ।

(देखो आगे अध्याय ४ अधिकार २ में काय मार्गणा)

(१३४) स्थिर और अस्थिर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु उपधातु अपने अपने ठिकाने रहें, उसको स्थिर नाम कर्म कहते हैं; और जिस नाम कर्म के उदय से शरीर के धातु उपधातु अपने अपने ठिकाने न रहें, उसको अस्थिर नाम कर्म कहते हैं।

(१३५) शुभ नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हों उसको शुभ नाम कर्म कहते हैं। (अथवा चक्रवर्ती बलदेव आदि के सूचक चिन्ह व अंगोपांग युक्त शरीर होवे सो शुभ है)।

(१३६) अशुभ नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों उसको अशुभ नाम कर्म कहते हैं। (अथवा शुभ से विपरीत लक्षणों वाला अशुभ है)।

(१३७) सुभग नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से अन्यजन प्रीतिकर अवस्था हो, अथवा स्त्री पुरुषों के सौभाग्य को उत्पन्न करने वाला शरीर हो, वह सुभग नाम कर्म है।

(१३८) दुर्भग नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से अन्यजन अप्रीतिकर अवस्था हो, अथवा

स्त्री पुरुषों के दुर्भाग्य को उत्पन्न करने वाला शरीर हो, वह दुर्भग नाम कर्म है।

(१३९) आदेय नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से कान्ति (प्रभा) युक्त शरीर उपजे उसको आदेय नाम कर्म कहते हैं।

(१४०) अनादेय नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से कान्ति (प्रभा) युक्त शरीर न हो उसको अनादेय नाम कर्म कहते हैं।

(१४१) सुस्वर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

जिसके उदय से अच्छा स्वर हो उसको सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

(१४२) दुस्वर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से अच्छा स्वर न हो उसको दुस्वरनामकर्म कहते हैं।

(१४३) यशः कीर्ति नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से संसार में जीव का यश हो उसे यशः-कीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

(१४४) अयशः कीर्ति नाम कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की तारीफ न होवे उसको अयशः कीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

(१४५) तीर्थंकर नाम कर्म किसको कहते हैं ?

अर्हन्त पद के कारणभूत कर्म को तीर्थकर नाम कर्म कहते हैं।

(१४६) गोत्र कर्म किसे कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से सन्तान के क्रम से चले आये जीव के आचरण रूप उच्च नीच कुल में जन्म हो।

(१४७) गोत्र कर्म के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—उच्च गोत्र और नीच गोत्र।

(१४८) उच्च गोत्र कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से उच्च गोत्र (कुल) में जन्म हो।

(१४९) नीच गोत्र कर्म किसको कहते हैं ?

जिस कर्म के उदय से नीच गोत्र (कुल) में जन्म हो।

(१५०) अन्तराय कर्म किसको कहते हैं ?

जो दानादि में विघ्न डाले।

(१५१) अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं ?

पांच—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

(२. पुण्य पाप आदि प्रकृति विभाग)

(१५२) पुण्य कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे।

(१५३) पाप कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे।

(१५४) घातिया कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव के ज्ञानादिक अनुजीवी गुण को घाते उसको घातिया कर्म कहते हैं।

(१५५) अघातिया कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव के ज्ञानादि अनुजीवी गुण को न घाते (प्रतिजीवी गुण को घाते अथवा शरीर व इसके साधनों का सम्पादन करे)।

(१५६) सर्वघाती कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव के अनुजीवी गुणों को पूरे तौर से घाते।

(१५७) देश घाती कर्म किसको कहते हैं ?

जो जीव के अनुजीवी गुणों को एक देश घाते उसको देशघाती कर्म कहते हैं।

१५८. पूरे घात व एक देश घात से क्या समझे ?

गुण की झलक मात्र भी व्यक्त न हो सो सर्वघात है, जैसे हमें तुम्हें केवल ज्ञान या मनः पर्यय ज्ञान की झलक मात्र भी नहीं है। गुण का कुछ अंश व्यक्त रहे, भले ही वह अत्यल्प हो; जैसे कि सूक्ष्म निगोदिया तक में मति ज्ञान का कुछ न कुछ अंश व्यक्त रहता, सो देशघात है।

(१५९) जीव विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

जिसका फल जीव में हो (अर्थात जीव के ज्ञानादि गुणों को घाते या प्रभावित करे)।

(१६०) पुद्गल विपाकी कर्म किसे कहते हैं ?

जिसका फल पुद्गल में हो (अर्थात जो शरीर का निर्माण करे)।

(१६१) भव विपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

जिसके फल से जीव संसार में रुके।

(१६२) क्षेत्र विपाकी कर्म किसको कहते हैं ?

जिसके फल से जीव का आकार विग्रह गति में पहले जैसा बना रहे।

(१६३) विग्रह गति किसको कहते हैं ?

एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिये जाने को विग्रहगति कहते हैं।

(१६४) घातिया कर्म कितने व कौन से हैं ?

सैतालीस—ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, मोहनीय २८, अन्तराय ५।

(१६५) अघातिया कर्म कितने व कौन से हैं ?

एक सौ एक—वेदनीय २, आयु ४, नाम ९३, गोत्र २।

(१६६) सर्वघाती प्रकृति कितनी व कौन सी हैं ?

इक्कीस हैं—ज्ञानावरण की १ (केवलज्ञानावरण), दर्शनावरण की ६ (केवल दर्शनावरण १ और निद्रा ५), मोहनीय की १४ (अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व)।

(१६७) देशघाती प्रकृति कितनी व कौन सी हैं ?

छब्बीस हैं—ज्ञानावरण ४ (मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यय ज्ञानावरण), दर्शनावरण ३ (चक्षु, अचक्षु व अवधि दर्शनावरण), मोहनीय १४ (संज्वलन ४, नोकषाय ९, सम्यक्प्रकृति) अन्तराय ५ (दान, लाभ, भोग, उपभोग व वीर्यान्तराय)।

१६८. अवधि व मनः पर्यय ज्ञानावरणी को देशघाती कैसे कहा जब कि उसका हममें सर्वघात पाया जाता है ?

कुछ प्रकृतियें ऐसी हैं जिनमें सर्वघात व देशघात दोनों प्रकार का कार्य करने की शक्ति है; जैसे अवधि व मन:पर्यय ज्ञानावरणीय, चक्षु व अवधि दर्शन । कारण इन प्रकृतियों का किन्हीं जीवों में सर्वघाती शक्ति युक्त उदय पाया जाता है और किन्हीं में देशघाती शक्ति युक्त । हममें चक्षु दर्शनावरण का देशघाती उदय है और त्रान्दिय जीवों में सर्व घाती । मति श्रुत ज्ञानावरण का किसी भी जीव में सर्वघाती उदय नहीं देखा जाता, इस लिये ये तथा अन्य प्रकृतियें सर्वथा देशघाती ही हैं ।

(१६९) क्षेत्र विपाकी प्रकृति कितनी और कौन सी हैं ?

चार हैं—नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्च गत्यानुपूर्वी, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी व देव गत्यानुपूर्वी ।

(१७०) भव विपाकी प्रकृति कितनी और कौन सी हैं ?

चार हैं—नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, देवायु ।

(१७१) जीव विपाकी प्रकृति कितनी और कौन सी हैं ?

अठहत्तर हैं—घातिया की ४७, गोत्र की २, वेदनीयकी २, नाम कर्म की २७ (तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशः कीर्ति, अयशः कीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, गति ४, जाति ५ । ये कुल मिलकर ७८ हैं ।

१७२. नाम कर्म की प्रकृतियों का फल जीव को कैसे हो ?

यद्यपि सभी अघातिया कर्मों का फल शरीर प्रधान है, पर उपरोक्त कुछ प्रकृतियें ऐसी हैं जिनका औपचारिक फल जीव को प्राप्त होता है, जैसे नीच ऊंच गोत्र से जीव ही कुछ ऊंचा या नीचा अनुभव करता है, पर्याप्ति रूप शक्ति जीव में ही पैदा होती है, प्रशस्त या अप्रशस्त गमन अथवा यश व अपयश में जीव ही उत्साह आदि प्राप्त करता है ।

(१७३) पुद्गल विपाकी प्रकृति कितनी व कौन सी हैं ?

बासठ हैं –(सर्व १४८ प्रकृतियों में से क्षेत्र विपाकी ४, भव-विपाकी ४ और जीव विपाकी ७८ ऐसे कुल ८६ प्रकृति घटाने पर ६२ शेष रहती हैं। वे सब पुद्गल विपाकी हैं।)

(१७४) पाप प्रकृति कितनी व कौन सी हैं ?

सौ हैं—घातिया ४७, असाता वेदनीय, नीच गोत्र, नरकायु और नाम कर्म की ५० (नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, अन्तिम ५ संहनन, अन्तिम ५ संस्थान, स्पर्श रसादिक २०, उपघात १, अप्रशस्त विहायो-गति १, स्थावर १, सूक्ष्म १, अपर्याप्ति १, अनादेय १, अयशः कीर्ति १, अशुभ १, दुर्भग १, दुःस्वर १, अस्थिर १, साधारण १)।

१७५. तिर्यंच गति को तो पाप में गिना पर आयु को न गिना ?

तिर्यंच आयु पुण्य में गिनाई है। इसका कारण यह है कि एक नरक आयु ही होती है जिसका कि जीव त्याग करना चाहता है। शेष तीन आयुओं का जीव त्याग करना नहीं चाहता, विष्ठा का कीड़ा भी स्वयं मरना नहीं चाहता। गति के दृष्ट दुखों को देखने पर तिर्यंच गति साक्षात दुःख रूप होने से पाप में गिनी जानी योग्य ही है।

(१७६) पुण्य प्रकृति कितनी व कौन सी हैं ?

अड़सठ हैं (सर्व १४८ प्रकृतियों में से पाप की १०० निकल कर शेष रही ४८ में नामकर्मकी स्पर्श रसादि २० मिला देने पर ६८ का योग प्राप्त होता है; क्योंकि स्पर्श रसादि की ये २० प्रकृति पुण्य जीव में पुण्य रूप से और पाप जीव में पाप रूप से फल देने के कारण उभय फल प्रदायी हैं।)

(३. स्थिति बन्ध)

(१७७) स्थिति बन्ध किसको कहते हैं ?

कर्मों में आत्मा के साथ (बन्धकर) रहने की मर्यादा पड़ने को (अर्थात् उनकी आयु को) स्थिति बन्ध कहते हैं।

(१७८) आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी कितनी है ?

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, अन्तराय इन चारों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस तीस कोड़ा कोड़ी सागर की है। मोहनीय कर्म की ७० कोड़ा कोड़ी सागर की है (तहां भी दर्शन मोहनीय की ७० और चारित्र मोहनीय की ३० कोड़ा कोड़ी सागर है), नाम कर्म व गोत्र कर्म की बीस बीस कोड़ा कोड़ी सागर और आयु की तेतीस कोड़ा कोड़ी सागर है।

(१७९) आठों कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी है ?

वेदनीय की १२ मुहूर्त, नाम तथा गोत्र की आठ मुहूर्त और शेष समस्त कर्मों की अन्तर्मुहूर्त जघन्य स्थिति है।

(१८०) कोड़ा कोड़ी किसे कहते हैं ?

एक क्रोड़ को एक क्रोड़ से गुणा करने पर जो लब्ध आवे उसको एक कोड़ा कोड़ी कहते हैं।

(१८१) सागर किसे कहते हैं ?

दस कोड़ा कोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है।

(१८२) अद्धापल्य किसे कहते हैं ?

२००० कोस गहरे और २००० कोस चौड़े गोल गड्ढे में, कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके, ऐसे मैंढे के बालों को भरना। जितने बाल उसमें समावें उनमें से एकएक बाल को सौ सौ वर्ष पश्चात निकालना। जितने वर्षों में वे सब बाल निकल जावें, उतने वर्षों के जितने समय हों, उसको व्यवहार पल्य कहते हैं। व्यवहार पल्य से असंख्यात गुणा उद्धारपल्य है और उद्धार पल्य से असंख्यात गुणा अद्धापल्य होता है।

(१८३) मुहूर्त किसको कहते हैं ?

अड़तालीस मिनट का एक मुहूर्त होता है।

(१८४) अन्तर्मुहूर्त किसको कहते हैं ?

आवली से ऊपर और मुहूर्त से नीचे के काल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।

(१८५) आवली किसको कहते हैं ?

एक श्वास में असंख्यात आवली होती हैं।

(१८६) श्वासोच्छ्वास काल किसको कहते हैं ?

नीरोग पुरुष की नाड़ी के एक बार चलने को श्वासोच्छवास कहते हैं।

(१८७) एक मुहूर्त में कितने श्वासोच्छ्वास होते हैं ?

तीन हजार सात सौ तेहत्तर होते हैं (३७७३)।

(४. अनुभाग व प्रदेश बन्ध)

(१८८) अनुभाग बन्ध किसको कहते हैं ?

फल देने की शक्ति की हीनाधिकता को अनुभाग बन्ध कहते हैं।

(१८९) प्रदेश बन्ध किसको कहते हैं ?

बन्धने वाले कर्मों की (वर्गणाओं की) संख्या के निर्णय करने को प्रदेश बन्ध कहते हैं।

१९०. प्रकृति व अनुभाग बन्ध में क्या भेद है ?

(देखो आगे बन्ध कारणाधिकार नं० ३)

३/२ उदय उपशम आदि अधिकार

(१) **उदय किसको कहते हैं ?**

स्थिति पूरी करके कर्म के फल देने को उदय कहते हैं।

(२) **उदीरणा किसको कहते हैं ?**

स्थिति पूरी किये विना ही (पाल में दबाकर पकाये गये आम-वत्) कर्म के फल देने को उदीरणा कहते हैं।

(३) **उपशम किसको कहते हैं ?**

द्रव्य क्षेत्र काल भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति की अनुद्भूति को उपशम कहते हैं।

(४) **उपशम के कितने भेद हैं ?**

दो हैं—एक अन्तःकरण रूप उपशम, दूसरा सदवस्था रूप उपशम।

(५) **अन्तःकरण रूप उपशम किसको कहते हैं ?**

आगामी काल में उदय आने योग्य कर्म परमाणुओं को आगे पीछे उदय आने योग्य करने को अन्तःकरण रूप उपशम कहते हैं।

(६) **सदवस्था रूप उपशम किसको कहते हैं ?**

वर्तमान समय को छोड़कर आगामी काल में उदय आने वाले अन्य कर्मों के सत्ता में रहने को सदवस्था रूप उपशम कहते हैं।

(७) **क्षय किसको कहते हैं ?**

कर्म की आत्यन्तिकी निवृत्ति को क्षय कहते हैं।

८. क्षय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—अत्यन्त क्षय और उदयाभाव क्षय।

९. अत्यन्त क्षय किसको कहते हैं ?

कर्मों के प्रदेशों का ही झड़ जाना या अन्य रूप हो जाना अत्यन्त क्षय है।

१०. उदयाभाव क्षय किसको कहते हैं ?

बिना फल दिये कर्मों के छूट जाने को उदयाभावी क्षय कहते हैं। अथवा कर्मों की शक्ति का अत्यन्त क्षीण हो जाना उदयाभावी क्षय है, क्योंकि अब वह प्रकृति सर्वघाती के रूप में उदय न आ कर देशघाती के रूप में उदय आयेगी।

(११) क्षयोपशम किसको कहते हैं ?

वर्तमान निषेकमें सर्वघाती स्पर्धक का उदयाभावी क्षय, तथा देशघाती स्पर्धकों का उदय और आगामी काल में उदय आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम; ऐसी कर्म की अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं।

१२. क्षयोपशम के उपरोक्त स्वरूप को स्पष्ट समझाओ।

क्षयोपशम की इस अवस्था में केवल देशघाती प्रकृति का उदय होता है सर्वघाती का नहीं, इसी कारण जीव के परिणाम धुंधले रहते हैं। सर्वघाती कर्मों का अनुभाग उदय में आने से पूर्व घट कर देशघाती बन जाता है और उस रूप से अगले समय में उदय आ जाता है। यही सर्वघाती स्पर्धक का उदयाभावी क्षय है। परन्तु सत्ता में अवश्य सर्वघाती स्पर्धक पड़े रहते हैं, जो आगे जाकर उदय में आयेंगे, परन्तु वर्तमान में किसी प्रकार भी उदय में नहीं आ सकते। यही आगामी निषेकों का सदवस्थारूप उपशम है। देशघाती प्रकृति दो हैं—एक तो पहली सत्ता में पड़ी हुई और दूसरी वह जो सर्वघाती प्रकृति के उदयाभावी क्षय द्वारा नई बनी है। दोनों का ही वर्तमान में उदय रहता है, जिसके कारण परिणामों में कुछ

धुंधलापन या दोष उत्पन्न होता रहता है। यही देशघाती स्पर्धकों का उदय कहलाता है। ये तीनों बातें जिसमें पाई जावें उसे क्षयोपशम कहते हैं।

(१३) निषेक किसको कहते हैं ?

एक समय में कर्म के जितने परमाणु उदय में आवें उन सबके समूह को निषेक कहते हैं।

(१४) स्पर्धक किसको कहते हैं ?

वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं।

(१५) वर्गणा किसको कहते हैं ?

वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

(१६) वर्ग किसको कहते हैं ?

समान अविभाग प्रतिच्छेदों के धारक प्रत्येक कर्म परमाणु को वर्ग कहते हैं।

(१७) अविभाग प्रतिच्छेद किसको कहते हैं ?

शक्ति के अविभागी अंशों को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं।

(१८) इस प्रकरण में 'शक्ति' शब्द से कौन सी शक्ति इष्ट है ?

यहां 'शक्ति' शब्द से कर्मों की अनुभाग रूप अर्थात फल देने की शक्ति इष्ट है।

(१९) उत्कर्षण किसे कहते हैं ?

कर्मों की स्थिति व शक्ति दोनों के बढ़ जाने को उत्कर्षण कहते हैं।

(२०) अपकर्षण किसको कहते हैं ?

कर्मों की स्थिति व शक्ति के घट जाने को अपकर्षण कहते हैं।

(२१) संक्रमण किसको कहते हैं ?

किसी कर्म के सजातीय एक भेद से दूसरे भेद रूप हो जाने को संक्रमण कहते हैं।

(२२) समय प्रबद्ध किसको कहते हैं ?

एक समय जितने कर्म व नोकर्म परमाणु बन्धें उतने सबको एक समय प्रबद्ध कहते हैं।

(२३) गुण हानि किसको कहते हैं ?

गुणाकार रूप हीन हीन द्रव्य जिसमें पाया जाये उसको गुण-हानि कहते हैं। जैसे—किसी जीव ने एक समय में ६३०० परमाणुओं के समूह रूप समय प्रबद्ध का बन्ध किया, और उसमें ४८ समय की स्थिति पड़ी। उसमें गुण हानियों के समूह रूप नाना गुणहानि ६ में से प्रथम गुणहानि के परमाणु ३२००, दूसरी गुणहानि के १६००, तीसरी गुणहानि के ८००, चौथी गुणहानि के ४००, पांचवीं गुणहानि के २०० और छटी गुण-हानि के १०० हैं। यहां उत्तरोत्तर गुणहानियों में गुणाकार रूप हीन हीन परमाणु (द्रव्य) पाये जाते हैं इसलिये इसको गुणहानि कहते हैं।

(२४) गुण आयाम किसको कहते हैं ?

एक गुण हानि के समय के समूह को गुणहानि आयाम कहते हैं। जैसे—ऊपर के दृष्टान्त में ४८ समय की स्थिति में ६ गुणहानि थीं, तो ४८ में ६ का भाग देने से प्रत्येक गुणहानि का परिमाण ८ आया। यही गुणहानि आयाम कहलाता है।

(२५) नाना गुणहानि किसको कहते हैं ?

गुण हानि के समूह को नाना गुणहानि कहते हैं। जैसे—ऊपर के दृष्टान्त में आठ-आठ समय की छः गुणहानि हैं, सो ही छः संख्या नाना गुणहानि का परिमाण जानना।

(२६) अन्योन्याभ्यस्त राशि किसको कहते हैं ?

नाना गुणहानि प्रमाण दूए माण्डकर परस्पर गुणाकार करने से जो गुणनफल हो उसको अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे—ऊपर के दृष्टान्त में ६ दूए माण्डकर परस्पर गुणा करने से ६४ होते हैं, सो ही अन्योन्याभ्यस्त राशि का परिमाण जानना।

(२७) अन्तिम गुण हानि का परिमाण किस प्रकार से निकलना ?

एक घाट अन्योन्याभ्यस्त राशि का भाग समय प्रबद्ध को देने

से अन्तिम गुण हानि के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे (ऊपर के दृष्टान्त में) ६०० में एक घाट ६४ (६३) का भाग देने से १०० पाये, सो अन्तिम गुण हानि का द्रव्य है।

(२८) अन्य गुण हानियों का परिमाण किस प्रकार निकालना चाहिये ?

अन्तिम गुण हानि के द्रव्य को प्रथम गुण हानि पर्यन्त दूना दूना (गुणा का प्रमाण) करने से अन्य गुण हानियों का परिमाण निकलता है। जैसे- ऊपर के दृष्टान्त में १०० को दूना दूना करने से २००, ४००, ८००, १६००, ३२०० आते हैं।

(२९) प्रत्येक गुणहानि में प्रथमादि समयों में द्रव्य का परिमाण किस प्रकार होता है ?

निषेकहार को चय से गुणा करने से प्रत्येक गुण हानि के प्रथम समय का द्रव्य निकलता है, और प्रथम समय के द्रव्य में से एक एक चय घटाने से उत्तरोत्तर समयों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे—निषेकहार १६ (गुण हानि आयाम × २) को चय ३२ से गुणा करने पर प्रथम गुण हानि के प्रथम समय का द्रव्य ५१२ होता है, और ५१२ में एक एक चय अर्थात ३२ ३२ घटाने से दूसरे समय के द्रव्य का परिमाण ४८०, तीसरे का ४४८, चौथे का ४१६, पांचवें का ३८४, छटे का ३५२, सातवें का ३२०, और आठवें का २८८ निकलता है। इसी प्रकार द्वितीयादि गुणहानियों में भी प्रथमादि समयों के द्रव्य का परिमाण निकाल लेना।

(३०) निषेकहार किसको कहते हैं ?

गुण हानि आयाम से दूने परिमाण को निषेकहार कहते हैं। जैसे (उपरोक्त दृष्टान्त में) गुण हानि आयाम ८ से दूने १६ को निषेकहार कहते हैं।

(३१) चय किसे कहते हैं ?

श्रेढ़ी व्यवहार गणित में समान वृद्धि के परिमाण को चय कहते हैं।

(३२) इस प्रकरण में चय निकालने की क्या रीति है ?

निषेकहार में एक अधिक गुणहानि आयाम का प्रमाण जोड़कर आधा करने से जो लब्ध आवे, उसको गुणहानि आयाम से गुणा करें। इस प्रकार करने से जो गुणनफल हो उसका भाग विवक्षित गुण हानि के द्रव्य में देने से विवक्षित गुणहानि के चय का परिमाण निकलता है

$$\left\{\frac{\text{विवक्षित गुण हानि का द्रव्य}}{\frac{1}{2}(\text{निषेकहार} + \text{गुणहानि आयाम} + 1)\ \text{गुणहानि—आयाम}}\right\}$$

जैसे (ऊपर के दृष्टान्त में) निषेकहार १६ में एक अधिक गुण–हानि आयाम ९ जोड़ने से २५ हुए। २५ के आधे १२½ को गुणहानि आयाम ८ से गुणाकार करने से १०० होते हैं। इस १०० का भाग विवक्षित प्रथम गुणहानि के द्रव्य ३२०० में देने से प्रथम गुणहानि सम्बन्धी चय ३२ आया। इस ही प्रकार द्वितीय गुणहानि के चय का परिमाण १६, तृतीय का ८, चतुर्थ का ४, पंचम का २ और अन्तिम का १ जानना।

(३३) अनुभाग की रचना का क्रम क्या है ?

द्रव्य की अपेक्षा से जो रचना ऊपर बताई गई है उसमें प्रत्येक गुणहानि के प्रथमादि समय सम्बन्धी द्रव्य को वर्गणा कहते हैं। और उन वर्गणाओं में जो परमाणु हैं, उनको वर्ग कहते हैं। प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा में ५१२ वर्ग हैं, उनमें अनुभाग शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद समान हैं, और वे द्वितीयादि वर्गणाओं के वर्गों के अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा सबसे न्यून अर्थात जघन्य हैं। द्वितीयादि वर्गणा के वर्गों में एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद की अधिकता के क्रम से जिस वर्गणा पर्यन्त एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़े, वहां तक की वर्गणाओं के समूह का नाम एक स्पर्द्धक है। और जिस वर्गणा के वर्गों में युगपत् अनेक अविभाग प्रतिच्छेदों की वृद्धि होकर प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या से दूनी हो

जाये, वहाँ से दूसरे स्पर्धक का प्रारम्भ समझना। इस ही प्रकार जिन-जिन वर्गणाओं के वर्गों में प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या से तिगुने चौगुने आदि अविभाग प्रतिच्छेद होय, वहां से तीसरे चौथे आदि स्पर्द्धकों का प्रारम्भ समझना। इस प्रकार एक गुणहानि में अनेक स्पर्द्धक होते हैं।

३/३ बन्धकारण अधिक

(१) आस्रव किसको कहते हैं ?

बन्ध के कारण को आस्रव कहते हैं।

२. आस्रव के कितने भेद हैं ?

दो हैं—भावास्रव और द्रव्यास्रव।

(३) भावास्रव किसको कहते हैं ?

द्रव्यबन्ध के निमित्तकारण अथवा भावबन्ध के उपादान कारण को भावास्रव कहते हैं। नोट :—(जीव के मन वचन कायकी चेष्टा को भावास्रव कहते हैं, क्योंकि उनके कारण से द्रव्यास्रव होता है)।

(४) द्रव्यास्रव किसको कहते हैं ?

द्रव्यबन्ध के उपादानकारण अथवा भावबन्ध के निमित्त कारण को द्रव्यास्रव कहते हैं (नोट :—भावास्रव के निमित्त से नवीन नवीन कर्माण वर्गणाओं का जीव के प्रदेशों में प्रवेश पाना द्रव्यास्रव है।

५. बन्ध किसको कहते हैं ?

दो द्रव्यों के संश्लेष सम्बन्ध को बन्ध कहते हैं।

६. संश्लेषण सम्बन्ध की क्या विशेषता है ?

संयोग सम्बन्ध में जिस प्रकार दो द्रव्य अपने पृथक-पृथक स्वरूप में स्थित रहते हैं, उस प्रकार संश्लेष सम्बन्ध में नहीं रहते। वहां दोनों मिलकर अपना-अपना असल रूप खो देते हैं

और एक तीसरा विजातीय रूप धारण कर लेते हैं, जो दोनों में से किसी का भी नहीं कहा जा सकता। उनका मिश्रित स्वभाव बिल्कुल विचित्र हो जाता है जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन दो वायु जातीय गैसों के मिलने पर एक तीसरा जलीय द्रव्य बन जाता है, जिसका स्वभाव अग्नि वर्धन की वजाय अब अग्नि शमन हो जाता है।

७. **बन्ध कितने प्रकार का है ?**

दो प्रकार का—भावबन्ध और द्रव्य बन्ध।

(८) **भाव बन्ध किसको कहते हैं ?**

आत्मा के कषाय योग रूप भावों को भाव बन्ध कहते हैं। (नोट :— योग यद्यपि द्रव्यात्मक है, परन्तु जीव पुद्गल बन्ध के इस प्रकरण जीवात्मक होने से भावबन्ध कहा गया है क्योंकि जीव भावात्मक द्रव्य माना गया है और पुद्गल द्रव्यात्मक)।

(९) **द्रव्य बन्ध किसको कहते हैं ?**

कार्माण स्कन्ध रूप पुद्गल द्रव्य में आत्मा के साथ सम्बन्ध होने की शक्ति को द्रव्य बन्ध कहते हैं।

(१०) **भाव बन्ध का निमित्त कारण क्या है ?**

उदय तथा उदरिणा अवस्थाको प्राप्त पूर्व बद्ध कर्म भावबन्ध का निमित्त कारण है।

(११) **भाव बन्ध का उपादान कारण क्या है ?**

भाव बन्ध के विवक्षित समय से अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती योग कषाय रूप आत्मा की पर्याय विशेष को भाव बन्ध का उपादान कारण कहते हैं।

(१२) **द्रव्य बन्ध का निमित्त कारण क्या ?**

आत्माके योग कषाय रूप परिणाम द्रव्य बन्ध के निमित्त कारण हैं।

(१३) **द्रव्य बन्ध का उपादान कारण क्या ?**

बन्ध होने के पूर्व क्षण में बन्ध होने के सन्मुख कार्माण स्कन्ध

को द्रव्य बन्ध का उपादान कारण कहते हैं।

(१४) प्रकृति बन्ध व अनुभाग बन्ध में क्या भेद है ?

प्रकृति बन्ध के भिन्न उपादान शक्ति युक्त अनेक भेद रूप कर्माण स्कन्ध का आत्मा से सम्बन्ध होने को प्रकृति बन्ध कहते हैं, और उन्हीं स्कन्धों में फलदान शक्ति के तारतम्य को (न्यूनाधिकता को) अनुभागबन्ध कहते हैं।

(१५) समस्त प्रकृतियों के बन्ध का कारण सामान्यतया योग है या उसमें कुछ विशेषता है ?

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न उपादान शक्ति युक्त नाना प्रकार के भोजनों को मनुष्य हस्त द्वारा इच्छा विशेष पूर्वक ग्रहण करता है और विशेष इच्छा के अभाव में उदर पूरण के लिये भोजन सामान्य का ग्रहण करता है, उस ही प्रकार यह जीव विशेष कषाय के अभाव में योग मात्र से केवल सातावेदनीय रूप कर्म को ग्रहण करता है, परन्तु वह योग यदि किसी कषाय विशेष से अनुरंजित हो तो अन्यरूप प्रकृतियों का भी बन्ध करता है। (प्रकृति आदि बन्ध के कारण योग व उपयोग देखो पहले मूलोत्तर प्रकृति परिचय)

(१६) प्रकृतिबन्ध के कारणत्व की अपेक्षा से आस्रव के कितने भेद हैं ?

पांच हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग।

१७. मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अदेव में देव बुद्धि, अतत्व में तत्व बुद्धि, अधर्म में धर्म बुद्धि इत्यादि विपरीताभिनिवेश रूप जीव के परिणामों को मिथ्यात्व कहते हैं।

(१८) मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

पांच हैं—एकान्तिक मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, सांशयिक मिथ्यात्व, अज्ञानिक मिथ्यात्व और वैनयिक मिथ्यात्व।

(१९) एकान्तिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

धर्म धर्मी के 'यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं' इत्यादि अत्यन्त

अभिसन्निवेष (अभिप्राय) को एकान्तिक मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे बौद्ध मतावलम्बी पदार्थ को सर्वथा क्षणिक मानते हैं।

(२०) विपरीत मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

'सग्रन्थ' निर्ग्रन्थ हैं, 'केवली' मासाहारी हैं, इत्यादि रुचि को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

(२१) अज्ञानिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

जहां हिताहित विवेक का कुछ भी सद्भाव नहीं हो, उसको अज्ञानिक मिथ्यात्व कहते हैं।

(२२) वैनयिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं ?

समस्त देव तथा समस्त मतों में समदर्शीपने को वैनयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

(२३) अविरति किसको कहते हैं ?

हिंसादि पापों में तथा इन्द्रिय और मनके विषयों में प्रवृत्ति होने को अविरति कहते हैं।

(२४) अविरति के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—अनन्तानुबन्धी कषायोदय जनित, अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित और प्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित।

(२५) प्रमाद किसको कहते हैं ?

संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय से निरतिचार चारित्र पालने में अनुत्साह को तथा स्वरूप की असावधानता को प्रमाद कहते हैं।

(२६) प्रमाद के कितने भेद हैं ?

पंद्रह भेद हैं—विकथा ४ (स्त्री कथा, राष्ट्र कथा, भोजन कथा, राज कथा), कषाय ४ (संज्वलन के तीव्रोदय जनित क्रोध मान माया लोभ), इन्द्रियों के विषय ५ (स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, शब्द), निद्रा १, स्नेह १।

(२७) कषाय किसको कहते हैं ?

(यहां बन्ध के प्रकरण में) संज्वलन और नोकषाय के मन्द

उदय से प्रादुर्भूत आत्मा के परिणाम विशेषको कषाय कहते हैं।

(२८) योग किसको कहते हैं ?

मनोवर्गणा अथवा कायवर्गणा (आहारक वर्गणा, कार्माण वर्गणा व तैजस वर्गणा) और वचन वर्गणा के अवलम्बन से कर्म नोकर्मको ग्रहण करने की शक्ति विशेषको योग कहते हैं।

(२९) योग के कितने भेद हैं ?

पन्द्रह भेद हैं—मनोयोग ४ (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय), काय योग ७ (औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, तथा कार्माण), वचन योग ४ (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय)।

३० तैजस योग क्यों न कहा ?

तैजस शरीर कान्ति मात्र के लिये है परिस्पन्द के लिये नहीं।

(३१) मिथ्यात्व की प्रधानता से किन किन प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

सोलह प्रकृतियों का बन्ध होता है—मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुंसक वेद, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्त सृपाटिका संहनन, जाति ४ (एकेन्द्रियादि), स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण।

(३२) अनन्तानुबन्ध की कषायोदय जनित अविरति से किन किन प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

पच्चीस प्रकृतियों का बन्ध होता है—अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, दुःस्वर, दुर्भग, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत, संस्थान ४ (न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन), संहनन ४ (वज्रनाराच, नाराच, अर्ध नाराच, कीलित)।

(३३) अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित अविरति से किन किन प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

दश प्रकृतियों का—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन ।

(३४) प्रत्याख्यानावरण कषायोदय जनित अविरति से किन किन प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

चार प्रकृतियों का—प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ ।

(३५) प्रमाद से कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

छः का—अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशःकीर्ति, अरति, शोक ।

(३६) कषाय (संज्वलन) के उदय से कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

अट्ठावन का—देवायु, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, सुभग, शुभ, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ, पांचों ज्ञानावरण, चारों दर्शनावरण, पांचों अन्तराय, यशस्कीर्ति, उच्च गोत्र इन ५८ प्रकृतियों का बन्ध करता है ।

(३७) योग के निमित्त से किस प्रकृतिका बन्ध होता है ?

एक साता वेदनीय का बन्ध होता है ।

(३८) कर्म प्रकृति सब १४८ हैं और कारण केवल १२० के लिखे सो २८ प्रकृतियों का क्या हुआ ?

स्पर्शादि २० की जगह चार का ही ग्रहण किया गया है । इस

कारण १६ तो ये घटी; और पांचों शरीर के पांचों बन्धन तथा पाँचों संघात का ग्रहण नहीं किया गया, इस कारण १० ये घटी· और सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वबद्ध मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड करता है, तब इन दो प्रकृतियों का प्रादुर्भाव होता है; इस कारण दो प्रकृतियां ये घटी।

३६· स्पर्शादि शेष १६ का तथा बन्धन संघात का ग्रहण क्यों न किया ?

स्पर्शादि की बीसों विशेष प्रकृतियें सामान्य स्पर्शादि चार में गर्भित समझना। बन्धन संघात को अपने अपने शरीर के साथ गर्भित समझना।

(४०) द्रव्यास्रव के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक साम्परायिक दूसरा ईर्यापथ।

(४१) साम्परायिक आस्रव किसको कहते हैं ?

जो कर्म परमाणु जीव के कषाय भावों के निमित्त से आत्मा में कुछ काल के लिये स्थिति को प्राप्त हों, उनके आस्रव को साम्परायिक आस्रव कहते हैं।

(४२) ईर्यापथ आस्रव किसको कहते हैं ?

जिन कर्म परमाणुओं का बन्ध उदय और निर्जरा एक ही समय में हो, उनके आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

(४३) इन दोनों प्रकार के आस्रवों के स्वामी कौन हैं ?

साम्परायिक आस्रव का स्वामी कषाय सहित और ईर्यापथ का स्वामी कषाय रहित आत्मा होता है।

(४४) पुण्यास्रव व पापास्रव का कारण क्या है ?

शुभ योग से पुण्यास्रव और अशुभ योग से पापास्रव होता है।

(४५) शुभ योग और अशुभ योग किसको कहते हैं ?

शुभ परिणाम से उत्पन्न योग को शुभ योग और अशुभ परिणाम

से उत्पन्न योग को अशुभ योग कहते हैं।

(४६) जिस समय जीव के शुभ योग होता है उस समय पाप प्रकृतियों का आस्रव होता है या नहीं ?

होता है।

(४७) यदि होता है तो शुभ योग पापास्रव का भी कारण ठहरा ?

नहीं ठहरा। क्योंकि जिस समय जीव में शुभ योग होता है, उस समय पुण्य प्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक पड़ता है, और पाप प्रकृतियों में कम पड़ता है। और इस ही प्रकार जब अशुभ योग होता है तब पाप प्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक पड़ता है और पुण्य प्रकृतियों में कम। दशाध्याय तत्वार्थ सूत्र के छटे अध्याय में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के आस्रव के कारण जो प्रदोष निन्हवादिक कहे गए हैं, उनका अभिप्राय है कि उन उन भावों से उन उन प्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक अधिक पड़ते हैं। अन्य जो ज्ञानावरणादिक पाप प्रकृतियों का आस्रव दशवें गुणस्थान तक सिद्धान्त शास्त्र में कहा है उससे विरोध आवेगा अथवा वहां शुभ योग के अभाव का प्रसंग आवेगा। क्योंकि शुभ योग दशवें गुणस्थान से पहले पहले ही होता है।

प्रश्नावली

१. लक्षण करो—प्रकृति आदि बन्ध, सम्यक्प्रकृति, जीव पुद्गल क्षेत्र व भवविपाकी प्रकृति, स्पर्ध, अविभागप्रतिच्छेद, उत्कर्षण, क्षयोपशम।

२. भेद करो—बन्ध, मोहनीय कर्म, संहनन, सर्वघाती प्रकृति, क्षेत्र विपाकी प्रकृति, आस्रव।

३. अन्तर दर्शाओ—शरीर-निर्माप, आयु-गति, सुभग-आदेय, उदय-उदीरणा, अन्तरकरण व सदवस्था रूप उपशम, क्षय-उदयाभावी क्षय, प्रत्येक-साधारण।

४. पर्याप्ति अपर्याप्ति के लक्षण व भेद करो। भाषा पर्याप्ति पूर्ण कर लेने पर जीव पर्याप्त होता है या अपर्याप्त ?

५. आठों कर्मो की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति बताओ।

६. बन्ध के कारणों का तथा उनके भेद प्रभेदों का चार्ट बनाओ।

७. अनन्तानुबन्धी आदि के उदय में किन किन प्रकृतियों का बन्ध होता है।

चतुर्थ अध्याय

(भाव व मार्गणा)

४/१ भावाधिकार

(१) जीव के असाधारण भाव कितने हैं ?

पांच हैं —औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

(२) औपशमिक भाव किसको कहते हैं ?

जो किसी कर्म के उपशम से हो उसको औपशमिक भाव कहते हैं।

३. जीव का औपशमिक भाव कैसा होता है ?

कादो (कीचड) के नीचे बैठ जानेपर जिस प्रकार ऊपर का निथरा हुआ जल उस समय तक बिल्कुल निर्मल व शुद्ध रहता है जब तक हिलने आदि के कारण कादो पुनः उठ न जाये; उसी प्रकार कर्मों का उपशम हो जाने पर जीव के भाव उस समय तक बिल्कुल निर्मल व शुद्ध रहते हैं, जब तक कि उपशम का काल समाप्त हो जाने से कर्म पुनः उदय में न आ जाये।

(४) क्षायिक भाव किसको कहते हैं ?

जो किसी कर्म के क्षय से उत्पन्न हो उसको क्षायिक भाव कहते हैं।

५. जीव का क्षायिक भाव कैसा होता है ?

कादो के सर्वथा दूर हो जाने पर जिस प्रकार जल बिल्कुल निर्मल व शुद्ध हो जाता है, और कादो की सत्ता निःशेष हो जाने से पुनः उसके मैले होने की सम्भावना नहीं रहती; उसी प्रकार कर्म के क्षय हो जाने पर जीव के भाव बिल्कुल निर्मल व

शृद्ध हो जाते हैं, और कर्म की सत्ता निःशेष हो जाने से पुनः उनके उदय से उनका अशुद्ध होना सम्भव नहीं रहता।

(६) **क्षायोपशमिक भाव किसको कहते हैं ?**

जो कर्मों के क्षयोपशम से हो उसको क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

७. **जीव का क्षायोपशमिक भाव कैसा होता है ?**

थोड़ी कादो नीचे बैठ जानेपर और थोड़ी अभी जल में मिली रहने पर, जिस प्रकार पानी कुछ कुछ मैला रहते हुए भी पीने के काम आ सकता है, उसीप्रकार कर्म का क्षयोपशम होने पर सर्वघाती तो बिल्कुल बैठ जाता है, परन्तु देश–घाती का उदय रहता है, जिसके कारण जीव के भाव कुछ कुछ मैले रहते हुए भी उसे सम्यक्त्वादी गुण प्रगट रहते हैं। केवल परिणामों में कुछ चल मल आदि दोष लगते रहते हैं।

(८) **औदयिक भाव किसको कहते हैं ?**

जो कर्मों के उदय से हों उन्हें औदयिक भाव कहते है।

९. **जीव का औदयिक भाव कैसा होता है ?**

जिसप्रकार कादो मिला हुआ जल बिल्कुल अशुद्ध होता है, अथवा आकाश पर बादल आने से सूर्य छिप जाता है; उसी प्रकार कर्म के उदय होने पर जीव के सम्यक्त्व व चारित्र बिल्कुल अशुद्ध व विकृत हो जाते हैं और ज्ञानादि गुण ढक जाते हैं।

१०. **क्षायोपशमिक भाव को भी देशघाती के उदय होने से औदयिक कहना चाहिये ?**

ठीक है। वहाँ आंशिक रूप से दो भावों का मिश्रण रहता है, कुछ अंश खुला रहता है और कुछ अंश ढका। खुले अंश की अपेक्षा उसे क्षायोपशमिक और ढके अंश की अपेक्षा बेढक कहते हैं, क्योंकि देशघाती की शक्ति का वेदन या अनुभव रहता है।

(११) **पारिणामिक भाव किसको कहते हैं ?**

जो उपशम, क्षय, क्षयोपशम व उदय की अपेक्षा न रखता हुआ,

जीव का स्वभाव मात्र हो, उसको पारिणामिक भाव कहते हैं। (जैसे स्वर्णत्व न खोटा होता न खरा वह तो स्वर्ण स्वभाव है जो खोटे में भी वैसा ही और खरे में भी वैसा है)

१२. जीव का पारिणामिक भाव कैसा होता है ?

जिस प्रकार कादो मिले जल में भी विचार करने पर जल वैसा ही जानने में आता है जैसा कि शुद्ध, कादो का भाग उससे पृथक प्रतीत होता है; उसी प्रकार कर्माच्छादित जीव में भी विचार करने पर चैतन्य वैसा ही जान में आता है जैसा कि सिद्ध भगवान में, कर्म का भाग उससे पृथक प्रतीत होता है। त्रिकाली यह शुद्ध भाव ही पारिणामिक है।

(१३) औपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

दो हैं—एक सम्यक्त्व भाव, दूसरा चारित्र भाव।

(१४) क्षायिक भाव के कितने भेद हैं ?

नौ हैं—क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षा० भोग, क्षा० उपभोग, क्षा० वीर्य।

(१५) क्षायोपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

अठारह हैं—सम्यक्त्व, चारित्र, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, देश संयम, मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः-पर्यय ज्ञान कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, विभंग ज्ञान, दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य।

(१६) औदयिक भाव कितने हैं ?

इक्कीस हैं—गति ४, कषाय ४, लिंग ३, मिथ्यादर्शन १, अज्ञान (मिथ्या ज्ञान या ज्ञानाभाव) १, असंयम १, असिद्धत्व १, लेश्या ६ (पीत, पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील, कापोत)।

(१७) पारिणामिक भाव कितने हैं ?

तीन हैं—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

१८. पारिणामिक भाव इतने ही हैं या और भी ?

जीव द्रव्य की अपेक्षा तो इतने ही हैं, क्योंकि जीवत्व या चेतनत्व तो सामान्य भाव है और भव्यत्व और अभव्यत्व इसके विशेष। बाकी गुणों की अपेक्षा प्रत्येक गुण का स्वभाव उस उस का परिणामी भाव कहा जा सकता है, जैसे ज्ञान का ज्ञानत्व।

४/२ मार्गणाधिकार

१. जीव विषय में कितनी प्ररूपणायें होती हैं ?

बीस होती हैं—गुण स्थान, जीव समास, प्राण, संज्ञा, उपयोग, चौदह मार्गणायें।

२. गुणस्थान, जीवसमास, प्राण व उपयोग क्या ?

(क) गुणस्थान की प्ररूपणा के लिये आगे पृथक अध्याय है।

(ख) जीव समास के लिये देखो आगे अधिकार नं० ३।

(ग) प्राण पहले अध्याय २ अधिकार ४ में कह दिये गये।

(घ) उपयोग सामान्य तो पहले अध्याय २ अधिकार ४ में कहा गया और विशेष रूप से पुनः इन्द्रिय मार्गणा में कहा जायेगा।

(३) संज्ञा किसको कहते हैं ?

अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं।

(४) संज्ञा के कितने भेद हैं ?

चार हैं—आहार, भय, मैथुन, परिग्रह।

(५) मार्गणा किसको कहते हैं ?

जिन जिन धर्म विशेषों से जीव का अन्वेषण किया जाये उन उन धर्म विशेषों को मार्गणा कहते हैं।

(६) मार्गणा के कितने भेद हैं ?

चौदह हैं—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारकत्व।

(७) गति किसको कहते हैं ?

गतिनामा नामकर्म के उदय से जीव की पर्याय विशेष को गति कहते हैं।

(८) **गति के कितने भेद हैं ?**
चार हैं—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति ।

(९) **इन्द्रिय किसको कहते हैं ?**
आत्मा के लिंग को इन्द्रिय कहते हैं ।

(१०) **इन्द्रिय के कितने भेद हैं ?**
दो हैं--द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ।

(११) **द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं ?**
निर्वृत्ति व उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

(१२) **निर्वृत्ति किसको कहते हैं ?**
प्रदेशों की रचना विशेष को निर्वृत्ति कहते हैं ।

(१३) **निर्वृत्ति के कितने भेद हैं ?**
दो हैं— बाह्य और आभ्यन्तर ।

(१४) **बाह्य निर्वृत्ति किसको कहते हैं ?**
इन्द्रियों के आकार रूप पुद्गल की रचना विशेष को बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं ।

(१५) **आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसको कहते हैं ?**
आत्मा के विशुद्ध प्रदेशों की इन्द्रियाकार रचना विशेष को आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं ।

(१६) **उपकरण किसको कहते हैं ?**
जो निर्वृत्ति का उपकार करे उसको उपकरण कहते हैं ।

(१७) **उपकरण के कितने भेद है ?**
दो भेद हैं—बाह्य व आभ्यन्तर ।

(१८) **आभ्यन्तर उपकरण किस को कहते हैं ?**
नेत्रेन्द्रिय में कृष्ण शुक्ल मण्डल की तरह सब इन्द्रियों में जो निर्वृत्ति का उपकार करे उसको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं ।

(१९) **बाह्योपकरण किसको कहते हैं ?**
नेत्रेन्द्रिय में पलक वगैरह की तरह जो निर्वृत्ति का उपकार करे उसको बाह्योपकरण कहते हैं ।

(२०) **भावेन्द्रिय किसको कहते हैं ?**

लब्धि व उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं।

(२१) **लब्धि किसको कहते हैं ?**

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं।

(२२) **उपयोग किसको कहते हैं ?**

क्षयोपशम के हेतु से चेतना के परिणाम विशेष को उपयोग कहते हैं।

२३. **पहिले उपयोग का लक्षण कुछ और किया है ?**

ठीक है। वहां उपयोग-सामान्य का प्रकरण होने से उस का लक्षण चैतन्यानुविधायी परिणाम किया है, क्योंकि ज्ञान, दर्शन सम्यक्त्व, चारित्रादि सभी में वह अनुस्यूत है। यहां इन्द्रिय का प्रकरण होने से उसका विशेष लक्षणकिया है जो केवल इन्द्रिय ज्ञान में ही पाया जाता है अन्य में नहीं।

२४. **लब्धि व उपयोग में क्या अन्तर है ?**

लब्धि शक्ति सामान्य का नाम है और उपयोग उसकी विशेष पर्याय का। कर्म के क्षयोपशम से जानने की जितनी शक्ति जीव को प्राप्त होती है उसे लब्धि कहते हैं। उस लब्धिका जितना भाग किसी ज्ञेय को जानने के लिये इन्द्रिय के प्रति उपयुक्त होता है उसे उपयोग कहते हैं।

(२५) **इन्द्रियों के कितने भेद हैं ?**

पांच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, करण।

(२६) **स्पर्शनेन्द्रिय किसको कहते हैं ?**

जिसके द्वारा आठ प्रकार के स्पश का ज्ञान हो उसको स्पर्शनेन्द्रिय कहते हैं।

(२७) **रसनेन्द्रिय किसको कहते हैं ?**

जिसके द्वारा पाँच प्रकार के रस का ज्ञान हो उसको रसनेन्द्रिय कहते हैं।

(२८) **घ्राणेन्द्रिय किसको कहते हैं ?**

जिसके द्वारा दो प्रकार की गन्ध का ज्ञान हो उसको घ्राणेन्द्रिय कहते हैं।

(२९) चक्षु इन्द्रिय किसको कहते हैं ?

जिसके द्वारा पांच प्रकार के वर्ण का (तथा वस्तुओं के आकारों का) ज्ञान हो उसको चक्षु इन्द्रिय कहते हैं।

(३०) श्रोत्रेन्द्रिय किसको कहते हैं ?

जिस के द्वारा सप्त प्रकार के स्वरों का ज्ञान हो उसको श्रोत्रेन्द्रिय कहते हैं।

(३१) किन-किन जीवों को कौन सी इन्द्रियां होती हैं ?

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति इन जीवों के केवल एक (स्पर्शन) इन्द्रिय होती है। कृमि आदि जीवों के स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय होती हैं। चींटी वगैरह जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन इन्द्रियां होती हैं। भ्रमर, मक्षिका आदि जीवों के श्रोत्र के बिना चार इन्द्रियां होती हैं। घोड़े आदि पशु, (पक्षी, मछली आदि तथा) मनुष्य, देव, और नारकी जीवों के पांचों इन्द्रियां होती हैं। (मन सहित व रहित का विवरण आगे संज्ञित्व मार्गणा में देखो)।

(३२) काय किसको कहते हैं ?

त्रस स्थावर नाम कर्म के उदय से आत्मा के प्रदेश प्रचय को काय कहते हैं।

३३. जीव समास किसको कहते हैं ?

काय की अपेक्षा किये गए जीवों के भेदों को जीव समास कहते हैं।

(३४) त्रस किसको कहते हैं ?

त्रस नाम कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रियों में जन्म लेने वाले जीवों को त्रस कहते हैं (क्योंकि त्रास या भय आने पर ये स्वयं अपनी रक्षा के लिये इधर उधर भाग सकते हैं।)

(३५) स्थावर किसको कहते हैं ?

स्थावर नामकर्म के उदय से पृथ्वी, अप्, तेज, वायु व वन-

स्पति में जन्म लेने वाले जीवों को स्थावर कहते हैं, क्योंकि भय के कारण आने पर भी अपने स्थान पर स्थित ही रहते हैं।

(३६) बादर किसको कहते हैं ?

पृथ्वी आदिक से जो रुक जाय, या दूसरों को रोके, उसको बादर कहते हैं।

(३७) सूक्ष्म किसको कहते हैं ?

जो पृथ्वी आदिक से स्वयं न रुके और न दूसरे पदार्थों को रोके, उसे सूक्ष्म कहते हैं।

३८. त्रसों के बादर सूक्ष्म भेद न कहे ?

क्योंकि ये बादर ही होते हैं सूक्ष्म नहीं।

(३९) बनस्पति के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—प्रत्येक और साधारण

(४०) प्रत्येक वनस्पति किसको कहते हैं ?

एक शरीर का जो एक ही स्वामी हो, उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

(४१) साधारण वनस्पति किसको कहते हैं ?

जिन जीवों के आयु, श्वासोच्छ्वास, आहार और काय ये साधारण हों (समान अथवा एक हों) उनको साधारण कहते हैं, जैसे कन्दमूलादिक।

(४२) प्रत्येक वनस्पति के कितने भेद हैं ?

दो हैं—सप्रतिष्ठित प्रत्येक व अप्रतिष्ठित प्रत्येक।

४३. प्रत्येक व साधारण में सूक्ष्म बादर भेद करो।

साधारण दोनों प्रकार के होते हैं, और दोनों प्रकार के प्रत्येक केवल बादर ही।

(४४) सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं ?

जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय अनेक साधारण वनस्पति शरीर हों, उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

(४५) अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं ?

जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय कोई साधारण वनस्पति न

हो उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

४६. वनस्पति में साधारण काय जीव होते हैं या अन्यत्र भी ?

वनस्पति से अतिरिक्त अन्य सर्व स्थावर व त्रस जीव प्रत्येक ही होते हैं साधारण नहीं।

४७. साधारण वनस्पति के सूक्ष्म व बादर भेद कौन से हैं ?

सूक्ष्म साधारण जीव इस लोक में सर्वत्र ठसाठस भरे हुए हैं। सूक्ष्म होने से व्यवहार गम्य नहीं, फिर भी वनस्पति काय के माने गए हैं। बादर साधारण जीव सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरों के आश्रित ही रहते हैं; स्वतंत्र नहीं।

(४८) साधारण वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति में ही होते हैं या और भी कहीं होते हैं ?

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, केवली भगवान, आहारक शरीर (तीर्थंकरों का परम औदारिक शरीर), देव, नारकी इन आठ के सिवाय सब संसारी (त्रस व स्थावर) जीवों के शरीर साधारण अर्थात निगोद के आश्रय हैं (सप्रतिष्ठित प्रत्येक है)।

४९. निगोद किसे कहते हैं ?

साधारण जीवों के शरीर को निगोद कहते हैं, क्योंकि वह अनन्तों जीवों का एक सा फला शरीर होता है; जिसमें प्रत्येक जीव सर्वत्र व्यापकर रहता है। वे सभी जीव इस शरीर में एक साथ जन्मते हैं, एक साथ श्वास लेते हैं और एक साथ ही मरते हैं।

(५०) साधारण वनस्पति (निगोद) के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—एक नित्य निगोद और दूसरा इतर निगोद।

(५१) नित्य निगोद किसको कहते हैं ?

जिसने कभी भी (आज तक) निगोद के सिवाय दूसरी पर्याय नहीं पाई अथवा जिसने कभी भी निगोद के सिवाय दूसरी पर्याय न तो पाई और न पावेगा उसको नित्य निगोद कहते हैं।

(५२) इतर निगोद किसको कहते हैं ?

जो निगोद से निकलकर दूसरी पर्याय पाकर पुनः निगोद में चला गया वह जीव इतर निगोद कहलाता है।

५३. निगोद में कितने जीव बसते हैं ?

प्रधानता से देखा जाय तो संसार के जीवों की अखिल राशि निगोद में ही बसती है। इसका कारण यह है कि लोक में अनन्तों निगोद शरीर हैं। तहां एक-एक शरीर में समस्त व्यव-राशिगत त्रस व स्थावर जीवों से अनन्त गुणे जीव निवास करते हैं।

५४. वनस्पति कितने प्रकार की है ?

१. स्कन्ध से उगने वाली जैसे आलू अदरख।
२. टहनी से उगने वाली जैसे गुलाब व आकाश बेल।
३. पत्ते से उगने वाली जैसे पत्थर चट।
४. पोरी से उगने वाली जैसे गन्ना।
५. बीज से उगने वाली जैसे गेहूँ आदि।
६. स्वयं उगने वाली—जैसे खूमी, सांप की छतरी, काई आदि।

५५. इन सर्व वनस्पतियों में से सप्रतिष्ठित कौनसी हैं ?

(क) अत्यन्त कचिया हालत में सभी वनस्पति सप्रतिष्ठित होती हैं; अर्थात जब तक वनस्पति में नसें, धारी, फाड़, बीज, गुठली, जाली, रेशा आदि नहीं पड़ जाते तब तक वह सप्रतिष्ठित रहती है। जैसे—कोंपल, अत्यन्त छोटी अम्मी, उंगली जितनी बड़ी ककड़ी, तोरी, घिया आदि। ऐसी वनस्पति पक जाने पर अर्थात् बड़ी हो जाने पर अप्रतिष्ठित हो जाती हैं।

(ख) जो वनस्पति कटने के पश्चात भी उग सके वह सप्रति-ष्ठित ही होती हैं, जैसे—आलू, बेल की उगने वाली शाख, पत्थर चट का पत्ता आदि।

(ग) कुछ वनस्पतियें पक कर अर्थात बड़ी हो जाने पर भी सप्रतिष्ठित ही रहती हैं। जैसे—कन्दमूल, गन्ने की पोरी, खुम्मी, सांप की छतरी, सब प्रकार के पुष्प आदि।

(घ) तीर्थंकरों व केवलियों को छोड़कर सभी मनुष्यों के तथा त्रस तिर्यंचों के शरीर सप्रतिष्ठित ही होते हैं।

५६. सप्रतिष्ठित प्रत्येक व साधारण वनस्पति में क्या अन्तर है ?

सप्रतिष्ठित वनस्पति तो अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती है जैसे आलू आदि। परन्तु साधारण बादर वनस्पति की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। वह नियम से प्रत्येक वनस्पति के आश्रय ही रहती है, और उसका आश्रयभूत होने के कारण वह वनस्पति सप्रतिष्ठित कहलाती है।

५७ साधारण वनस्पति प्रत्येक के आश्रय किस प्रकार रहती है, क्या शरीर में रहने वाले कीट क्रमियों वत् ?

नहीं, शरीर में रहने वाले क्रमियों के अपने अपने स्वतंत्र शरीर हैं, परन्तु साधारण वनस्पति के अपने-अपने स्वतंत्र शरीर नहीं होते। तहां अनन्तों जीवों का एक साझला शरीर होता है, और ऐसे असंख्यातों शरीर सप्रतिष्ठित प्रत्येक के भीतर ठसाठस भरे रहते हैं। वे हिल डुल भी नहीं सकते हैं। सूक्ष्म होने से वे उस सप्रतिष्ठित प्रत्येक से पृथक इन्द्रियगोचर नहीं होते।

५८. साधारण शरीर कैसा होता है ?

उसकी पृथक सत्ता न होने के कारण वह देखा या दिखाया नहीं जा सकता।

५९. किसी साधारण वनस्पति का नाम बताओ।

लोक में कोई भी साधारण वनस्पति ऐसे नहीं जो हमारे तुम्हारे व्यवहार में आती हो। अतः उसका कोई नहीं है। सूक्ष्म साधारण वनस्पति तो लोक में सर्वत्र ठसाठस भरी हुई

है और बादर साधारण प्रतिष्ठित प्रत्येक में सर्वत्र ठसाठस भरी हुई है।

६०. आलू आदि कन्दमूल को साधारण वनस्पति कहा जाता है ?

वे स्वयं साधारण नहीं हैं, पर साधारण द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण, उपचार से साधारण कह दी जाती हैं।

६१. निगोद व साधारण जीव में क्या अन्तर है ?

'निगोद' तो जीव का नाम है और 'साधारण' उसके शरीर का विशेषण है। अथवा एक शरीर में अनन्तों का निवास होने से वह शरीर 'निगोद' है और समान आयु आदि होने से 'साधारण' जीव का विशेषण है। सभी निगोद जीव साधारण शरीर धारी होते हैं। एक एक साधारण शरीर में अनन्तों जीव सर्वत्र व्याप कर रहते हैं।

६२. सप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर की रचना समझाओ ?

आलू आदि एक एक स्कन्ध है, उसमें असख्यात 'अण्डर' हैं। एक एक अण्डर असख्यात 'आवास' हैं। एक एक आवास में असंख्यात 'पुलवी' हैं। एक एक पुलवी में असंख्यात 'शरीर' है। एक एक निगोद शरीर में अनन्त साधारण जीव व्यापकर रहते हैं। देश, नगर, मुहल्ला, घर और उसमें अनेक मनुष्यों का एक कुटुम्ब; ऐसी ही रचना उसमें समझना।

(६३) बादर और सूक्ष्म कौन कौन से जीव है ?

पृथिवी, अप्, तेज, वायु, नित्य निगोद और इतर निगोद ये ६ बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं, बाकी के सब जीव बादर ही होते हैं सूक्ष्म नहीं।

(६४) योग किसको कहते हैं ?

पुद्गल विपाकी शरीर और अंगोपांग नामा नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा, वचन वर्गणा तथा कायवर्गणा के अवलम्बन से, कर्म नोकर्म को ग्रहण करने की जीव की शक्ति विशेष को भाव योग कहते हैं। इस ही भाव योग के निमित्त से आत्म प्रदेशों के

परिस्पन्दन को द्रव्य योग कहते हैं। (विशेष देखो अध्याय २ अधिकार ४)

(६५) योग के कितने भेद हैं ?

पन्द्रह हैं—मनो योग ४ (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय); वचन योग ४ (सत्य, असत्य, उभय, अनुभय); काय योग ७ (औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण)।

(६६) वेद किसको कहते हैं ?

नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुई जीव के मैथुन करने की अभिलाषा को भाव वेद कहते हैं; और नोकर्म से आविर्भूत जीव के (शरीर के) चिन्ह विशेषों को द्रव्य वेद कहते हैं।

(६७) वेद के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नंपुसकवेद।

(६८) कषाय किसको कहते हैं ?

जो आत्मा के सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यात चारित्र रूप परिणामों को घाते (कषै) उसे कषाय कहते हैं।

(६९) कषाय के कितने भेद हैं ?

सोलह भेद हैं—अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, और संज्वलन४ (विशेष देखो अध्याय ३ अधिकार १)

(७०) ज्ञान मार्गणा के कितने भेद हैं ?

आठ—मति, श्रुति, अवधि, मनः पर्यय, केवल तथा कुमति, कुश्रुति, कुअवधि। (विशेष देखो अध्याय २ अधिकार ४)

(७१) संयम किसको कहते हैं ?

अहिंसादिक पांच व्रत धारण करने, ईर्यापथ आदि पाँच समिति पालने, क्रोधादि कषायों के निग्रह करने, मनोयोगादि तीनों योगों को रोकने, स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियों को विजय करने को संयम कहते हैं।

(७२) संयम मार्गणा के कितने भेद हैं ?

सात हैं—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात, संयमासयम, संयम (विशेष देखो अध्याय २ अधिकार ४).

(७३) दर्शनमार्गणा के कितने भेद हैं ?

चार हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन (विशेष देखो अध्याय २ अधिकार ४).

(७४) लेश्या किसको कहते हैं ?

कषाय के उदय करके अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति को भाव-लेश्या कहते हैं, और शरीर के पीत पद्मादि वर्णों को द्रव्य लेश्या कहते हैं ।

(७५) लेश्या के कितने भेद हैं ?

छः भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ।

७६. कषाय, वासना व लेश्या में क्या अन्तर है ?

(देखो पीछे अध्याय ३ अधिकार १)

(७७) भव्य मार्गणा के कितने भेद हैं ?

दो हैं--भव्य, अभव्य । (विशेष देखो अध्याय २ अधिकार ४)

(७८) सम्यक्त्व किसको कहते हैं ?

तत्वार्थ श्रद्धान को सयम्क्त्व कहते हैं । (विशेष देखो अध्याय दो अधिकार ४)

(७९) सम्यक्त्व मार्गणा के कितने भेद हैं ?

छह भेद हैं—उपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन, मिथ्यात्व ।

(८०) संज्ञी किसको कहते हैं ?

जिसमें संज्ञा हो उसे संज्ञी कहते हैं ।

(८१) संज्ञा किसको कहते हैं ?

(पहिले आहारादि की अभिलाषा को संज्ञा कहा है, यहाँ संज्ञी

का प्रकरण होने से) द्रव्य मन आदि द्वारा शिक्षा ग्रहण करने को संज्ञा कहते हैं।

(८२) संज्ञी मार्गणा के कितने भेद हैं ?

दो हैं—संज्ञी, असंज्ञी।

(८३) आहारक किसको कहते हैं ?

औदारिक आदि शरीर और पर्याप्ति के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को आहार कहते हैं।

(८४) आहारक मार्गणा के कितने भेद हैं ?

दो हैं—आहारक अनाहारक।

(८५) अनाहारक जीव किस किस अवस्था में होते हैं ?

विग्रह गति और किसी किसी समुद्घात में व अयोग केवली अवस्थायें जीव अनाहारक होता है।

८६. आहार कितने प्रकार के होते हैं ?

कई प्रकार का होता है, जैसे कवलाहार, नोकर्माहार, कर्माहार, लेपाहार, उष्माहार।

८७. कवलाहार आदि में क्या अन्तर है ?

मुखद्वार से ग्रास के रूप में ग्रहण किया जाने वाला सर्व परिचित कवलाहार है। योगों व उपयोग के कारण नोकर्म व कर्म वर्गणाओं का ग्रहण नोकर्माहार व कर्माहार है। तेल मालिश आदि लेपाहार है और अण्डे को मुर्गी के शरीर की गर्मी से जो स्वयं पहुँचता रहता है वह उष्माहार है।

८८. केवली अनाहारकों को कौन सा आहार नहीं होता ?

कोई सा भी नहीं होता।

८९. केवली भगवान को कौन सा आहार नहीं होता ?

कवलाहार, लेपाहार व उष्माहार नहीं होता, कर्माहार व नोकर्माहार होता है, क्योंकि वह सब जीवों को सामान्य है।

(९०) विग्रह गति में कौन सा योग होता है ?

कार्माण काय योग।

(९१) इन (विग्रह) गतियों में अनाहारक अवस्था कितने समय तक रहती हैं ?

ऋजु गति (बिना मोड़वाली गति) में जीव अनाहारक नहीं रहता। पाणिमुक्ता (एक मोड़वाली) गति में एक समय, लांगलिका (दो मोड़वाली) में दो समय और गोमूत्रिका (तीन मोड़वाली) में तीन समय अनाहारक रहता है।

४/३ जन्म व जीव समास

(१) जन्म कितने प्रकार का होता है ?

तीन प्रकार का—उपपाद जन्म, गर्भ जन्म, सम्मूर्च्छन जन्म।

(२) उपपाद जन्म किसको कहते हैं ?

जो जीवों की उपपाद शय्या तथा नारकियों के योनिस्थान में पहुँचते ही अन्तर्मुहूर्त में ही पूर्णावस्था को प्राप्त हो जायें, उस जन्म को उपपाद जन्म कहते हैं।

(३) गर्भ जन्म किसको कहते हैं ?

माता पिता के शोणित शुक्र से जिनका शरीर बने, उनके जन्म को गर्भ जन्म कहते हैं।

(४) सम्मूर्च्छन जन्म किसको कहते हैं ?

जो माता पिता की अपेक्षा के बिना इधर उधर के परमाणुओं को शरीर रूप परिणमावे, उसके जन्म को सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं।

५. गर्भ जन्म कितने प्रकार का होता है ?

तीन प्रकार का—जरायुज, अण्डज व पोतिज।

(६) किन किन जीवों के कौन कौन सा जन्म होता है ?

देव नारकियों के उपपाद जन्म ही होता है, जरायुज, अण्डज व पोतज (मनुष्य तिर्यंच) जीवों के गर्भ जन्म ही होता है, और शेष जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।

७. जरायुज, अण्डज और पोतज जीव कौन से होते हैं ?

जो जेर या झिल्लिमें लिपटे हुए उत्पन्न हों वे जरायुज हैं, जैसे

मनुष्य, गाय आदि। जो अण्डे में उत्पन्न हों वे अण्डज हैं, जैसे पक्षी। जो पैदा होते ही भागने दौड़ने लगें वे पोतज हैं; जैसे हिरन।

(८) कौन कौन से जीवों के कौन कौन सा लिंग होता है?

नारकी और सम्मूर्च्छन जीवों के नपुंसक लिंग, देवों के स्त्री लिंग व पुलिंग और शेष जीवों के तीनों लिंग होते हैं।

(९) जीव समास किसको कहते हैं?

जीवों के रहने के ठिकाने को जीव समास कहते हैं।

(१०) जीव समास के कितने भेद हैं?

(१४ भेद हैं—पांच प्रकार के स्थावरों के सूक्ष्म बादर विकल्प से १० तथा द्वीन्द्रियादि त्रसों के ४ अथवा) अट्ठानवें—तिर्यंचों के ८५, मनुष्यों के ९, नारकी के दो और देवों के दो।

(११) तिर्यंचों के ८५ भेद कौन से हैं?

सम्मूर्च्छनके ६९ और गर्भज के १६।

(१२) सम्मूर्च्छन के ६९ भेद कौन से हैं?

एकेन्द्रिय के ४२, विकलेन्द्रिय के ९ और पंचेन्द्रिय के १८।

(१३) एकेन्द्रिय के ४२ भेद कौन से हैं?

पृथिवी, अप्, तेज, वायु, नित्य निगोद व इतर निगोद इन छहों के बादर सूक्ष्म की अपेक्षा से १२ तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक को मिलाने से १४ हुए। इन १४ के पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त, और लब्ध्यपर्याप्त इन तीनों की अपेक्षा से ४२ जीवसमास होते हैं।

(१४) विकलत्रय के ९ भेद कौन कौन से हैं?

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अचतरिन्द्रिय के पर्याप्त, निवृत्त्यपर्याप्त ओर लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा से ९ भेद हुए।

(१५) सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रियों के १८ भेद कौन कौन से हैं?

जलजर, थलचर, नभचर, इन तीनों के सैनी व असैनी की अपेक्षा से ६ भेद हुए और इन छहों के पर्याप्तक, निवृत्त्य-

पर्याप्तक व लब्ध्य पर्याप्तक की अपेक्षा से १८ भेद हुए।

(१६) **गर्भज पंचेन्द्रिय के १६ भेद कौन कौन से हैं ?**

कर्मभूमि के १२ और भोगभूमि के ४।

(१७) **कर्मभूमि के १२ भेद कौन कौन से हैं ?**

जलचर, नभचर, थलचर इन तीनों के सैनी असैनी के भेद से ६ भेद हुए और इनके पर्याप्त व निवृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा से १२ भेद हुए।

(१८) **भोगभूमि के चार भेद कौन कौन से हैं ?**

थलचर और नभचर इनके पर्याप्त और निवृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा ४ भेद हुए। भोग भूमि में असैनी (व जलचर) तिर्यंच नहीं होते।

(१९) **मनुष्यों के नौ भेद कौन कौन से हैं ?**

आर्यखण्ड, म्लेच्छखण्ड, भोगभूमि और कुभोगभूमि इन चारों गर्भज के पर्याप्तक व निवृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा ८ भेद हुए। इनमें सम्मूर्च्छन मनुष्य का लब्ध्यपर्याप्तक भेद मिलाने से ९ भेद होते हैं।

(२०) **नारकियों के दो भेद कौन कौन से हैं ?**

पर्याप्तक और निवृत्त्यपर्याप्तक।

(२१) **देवों के दो भेद कौन कौन से हैं ?**

पर्याप्तक और निवृत्त्यपर्याप्तक।

(२२) **देवों के विशेष भेद कौन कौन से हैं ?**

चार हैं—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

(२३) **भवनवासी देवों के कितने भेद हैं ?**

दश हैं—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिपकुमार।

(२४) **व्यन्तरों के कितने भेद हैं ?**

आठ हैं—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत व पिशाच।

(२५) ज्योतिष्क देवों के कितने भेद हैं ?

पाँच भेद हैं—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारे।

(२६) वैमानिक देवों के कितने भेद हैं ?

दो हैं—कल्पोपत्र और कल्पातीत।

(२७) कल्पोपत्र किनको कहते हैं ?

जिनमें इन्द्रादिक की कल्पना हो उनको कल्पोपत्र कहते हैं।

(२८) कल्पातीत किनको कहते हैं ?

जिनमें इन्द्रादिक की कल्पना न हो उनको कल्पातीत कहते हैं।

(२९) कल्पोपत्र देवों के कितने भेद हैं ?

सोलह—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत।

(३०) कल्पातीत देवों के कितने भेद हैं ?

तेईस हैं—नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पंच पंचोत्तर (विजय, वैजयन्त, जयंत, अपराजित, सवार्थ सिद्धि)।

(३१) नारकियों के कितने भेद हैं ?

पृथिवी की अपेक्षा से सात भेद हैं।

(३२) सात पृथिवियों के क्या नाम हैं ?

रत्नप्रभा (घम्मा); शर्करा प्रभा (वंशा), बालुका प्रभा (मेघा), पंक प्रभा (अंजना), धूमप्रभा (अरिष्टा), तमः प्रभा (मघवी), महातमः प्रभा (माघवी)।

४/४ लोकाधिकार

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के रहने का स्थान कहां है ?

सर्व लोक ।

(२) बादर एकेन्द्रिय जीव कहां रहते हैं ?

बादर एकेन्द्रिय जीव किसी ही आधार का निमित्त पाकर निवास करते हैं ।

(३) त्रस जीव कहां रहते हैं ?

त्रस जीव त्रसनाली में रहते हैं ।

(४) विकलत्रय जीव कहां रहते हैं ?

विकलत्रय जीव कर्मभूमि और अन्त के आधे द्वीप तथा अन्त के स्वयम्भूरमण समुद्र में ही रहते हैं ।

(५) पंचेन्द्रिय तिर्यंच कहां कहां रहते हैं ?

तिर्यक् लोक में रहते हैं, परन्तु जलचर तिर्यञ्च लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्रों के सिवाय अन्य समुद्रों में नहीं रहते हैं ।

(६) नारकी जीव कहां रहते हैं ?

अधोलोक की सात पृथिवियों में रहते हैं ।

(७) भवनवासी और व्यन्तर देव कहां रहते हैं ?

पहली पृथिवी के खर भाग और पंक भाग में तथा तिर्यक्लोक में ।

(८) ज्योतिष्क देव कहां रहते हैं ?

पृथिवी से सात सौ नव्वे योजन की ऊंचाई से लगाकर नौ सौ

योजन की ऊंचाई तक अर्थात ११० योजन आकाश में एक राजू मात्र तिर्यक् लोक में ज्योतिष्क देव निवास करते हैं।

(९) वैमानिक देव कहां रहते हैं ?

ऊर्ध्वलोक में।

(१०) मनुष्य कहां रहते हैं ?

नर लोक में।

(११) लोक के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक।

(१२) अधोलोक किसको कहते हैं ?

मेरु के नीचे सात राजू अधोलोक हैं।

(१३) ऊर्ध्वलोक किसको कहते हैं ?

मेरु के ऊपर लोक के अन्त पर्यन्त (७ राजू) ऊर्ध्वलोक है।

(१४) मध्यलोक किसको कहते हैं ?

एक लाख चालीस योजन मेरु की ऊंचाई के बराबर मध्यलोक है।

(१५) मध्यलोक का विशेष स्वरूप क्या है ?

मध्य लोक के अत्यन्त बीच में एक लाख योजन चौड़ा गोल (थाली के आकार) जम्बूद्वीप है। जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख योजन ऊंचा सुमेरू पर्वत है, जिसका एक हजार योजन जमीन के भीतर मूल है। निन्याणवे हजार योजन पृथिवी के ऊपर है। और चालीस योजन की चूलिका (चोटी) है।

जम्बू द्वीप के बीच में पश्चिम पूर्व की तरफ लम्बे छः कुलाचल पर्वत पड़े हुए हैं जिनसे जम्बूद्वीप के सात खण्ड हो गए हैं। इन सात खण्डों के नाम इस प्रकार हैं—भरत, हैमवत, हैरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत। विदेह क्षेत्र में मेरु से उत्तर

की तरफ उत्तर कुरु और दक्षिण की तरफ देवकुरु (नाम उत्तम भोगभूमियें) हैं।

जम्बू द्वीप के चारों तरफ खाई की तरह बेढे हुए दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। लवण समुद्र का चारों तरफ से बेढ़े हुए चार लाख योजन चौड़ा धातुकी खण्ड है। इस धातुकी खण्ड द्वीप में दो मेरु पर्वत हैं और क्षेत्र कुलाचलादि की रचना (सब) जम्बू द्वीप से दूनी है।

धातुकी खण्ड को चारों तरफ से बेढे हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है। और कालोदधि को बेढे हुए सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्कर द्वीप है। पुष्कर द्वीप के बीचोबीच वलय के आकार, चौड़ाई पृथिवी पर एक हजार बाईस योजन, बीच में सात सौ तेईस योजन, ऊपर चार सौ चौबीस योजन, ऊंचा सतरह सौ इकईस योजन और जमीन के भीतर चारसौ सवातीस योजन जिसकी जड़ है, ऐसा मानुषोत्तर नामा पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे पुष्कर द्वीप के दो खण्ड हो गए हैं। पुष्कर द्वीप के पहिले अर्ध भाग में जंबू द्वीप से दूनी दूनी अर्थात धातकी खंड के बराबर सब रचना है।

जम्बू द्वीप, धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने (ढाई द्वीप प्रमाण) क्षेत्र को नरलोक कहते हैं। पुष्कर द्वीप से आगे परस्पर एक दूसरे को बेढ़े हुए दूने दूने विस्तार वाले मध्य लोक के अन्त पर्यन्त द्वीप और समुद्र हैं।

पांच मेरु सम्बन्धी पाँच भरत, पांच ऐरावत, देवकुरु व उत्तर कुरु को छोड़कर पांच विदेह इस प्रकार सब मिलकर १५ कर्म भूमि हैं। पांच हैमववत और पांच हैरण्यवत् इन दश क्षेत्रों में जघन्य भोग भूमि हैं। पांच हरि और पांच रम्यक इन दश क्षेत्रों में मध्यम भोग भूमि है। पांच देव कुरु और पाँच उत्तर कुरु इन दश क्षेत्रों में उत्तम भोग भमि है जहां पर असि

मसि कृषि सेवा शिल्प और वाणिज्य इन षट् कर्मों की प्रवृत्ति हो उसको कर्म भूमि कहते हैं। जहां इनकी प्रवृत्ति न हो उसको भोग भूमि कहते हैं। मनुष्य क्षेत्र से बाहर के समस्त द्वीपों में जघन्य भोगभूमि की सी रचना है, किन्तु अन्तिम स्वयम्भू रमण द्वीप के उत्तरार्द्ध में तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्र में और चारों कोनों की पृथिवियों में कर्मभूमिकीसी रचना है । लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र में ९६ अन्तर्द्वीप हैं, जिनमें कुभोगभूमि की रचना है । वहां मनुष्य ही रहते हैं। उनमें मनुष्यों की आकृतियें नाना प्रकार की कुत्सित हैं।

प्रश्नावली

१. लक्षण करो—मार्गणा, उपयोग, निर्वृत्ति इन्द्रिय, विग्र; गति, निगोद जीव, जोव समास, संज्ञा, साधारण शरीर
२. भेद प्रभेद दर्शाओ—जीव के भाव, मार्गणा, लोक ।
३. क्या अन्तर है—पारिणमिक भाव व क्षायिक भाव, बादर व सूक्ष्म, नित्य निगोद व इतर निगोद, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वसाधारण ।
४. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति का लक्ष्य, चिन्हव रचना बताओ
५. किसी साधारण वनस्पति का नाम बताओ ।
६. प्रत्येक साधारण आदि में से किस जाति के शरीर हैं— मछली, गोभी, घिया, गन्ने की गांठ, बेल की टहनी, आलू, पत्ता, फूल, टमाटर, गांठ गोभी, आपका शरीर, तीर्थंकर व केवली का शरीर ।
७. जीव समास के भेद प्रभेद दर्शाओ ।
८. किस जन्म वाले जीव हैं—मनुष्य, चिड़िया, सर्प, मछली, मक्षिका, देव, गाय, हिरण, वृक्ष ।
९. नरक व स्वर्ग कितने कितने हैं, उनके नाम बताओ ।
१०. लोक में कहां कहां रहते हैं—उदधिकुमार, पिशाच, राक्षस, असुरकुमार, कल्पातीत देव ।
११. इन्द्रियों के भेद प्रभेदों का चार्ट बनाओ ।

———

पञ्चम अध्याय

(गुण स्थान)

१. मोक्ष व उसका उपाय

(१) **संसार के सब प्राणी सुख को कहते हैं और सुख ही का उपाय कहते हैं, परन्तु सुख को प्राप्त क्यों नहीं होते ?**
संसारी जीव असली सुख का स्वरूप और उसका उपाय न तो जानते हैं और न उसका साधन करते हैं, इसलिये सुख को भी प्राप्त नहीं होते।

(२) **असली सुख का क्या स्वरूप है ?**
आल्हाद स्वरूप जीव के अनुजीवी गुण को असली सुख कहते हैं। यही जीव का खास स्वभाव है, परन्तु संसारी जीवों ने भ्रमवश सातावेदनीय कर्म के उदयजनित उस असली सुख की वैभाविक परिणतिरूप साता परिणाम को ही सुख मान रखा है।

(३) **संसारी जीव को असली सुख क्यों नहीं मिलता ?**
कर्मों ने उस सुख को घात रखा है। इस कारण असली सुख नहीं मिलता।

(४) **संसारी जीव को क्या असली सुख मिल सकता है ?**
मोक्ष होने पर।

(५) **मोक्ष का स्वरूप क्या है ?**
आत्मा के समस्त कर्मों के वित्रमोक्ष (अत्यन्त विभोग) को मोक्ष कहते हैं।

(६) **उस मोक्ष की प्राप्ति का उपाय क्या है ?**
संवर और निर्जरा।

(७) संवर किसको कहते हैं ?

आस्रव के निरोध को संवर कहते हैं, अर्थात अनागत (नवीन) कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध न होने का नाम संवर है ।

(८) निर्जरा किसको कहते हैं ?

आत्मा का पूर्व से बन्धे हुए कर्मों से सम्बन्ध छूटने को निर्जरा कहते हैं ।

(९) संवर और निर्जरा होने का क्या उपाय है ?

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता ही संवर निर्जरा का उपाय है ।

(१०) इन तीनों गुणों की पूर्णता युगपत होती है या क्रम से ?

क्रम से होती है ।

(११) इन तीनों (रत्नत्रय) पूर्ण गुणों की एकता होने का क्रम किस प्रकार है ?

जैसे जैसे गुणस्थान बढ़ते हैं तैसे ही ये गुण भी बढ़ते हुए अन्त में पूर्ण होते हैं ।

५/२ गुणस्थानाधिकार

(१) गुणस्थान किसको कहते हैं ?

मोह और योग के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र इन आत्मा के गुणों की तारतम्य रूप अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

(२) गुणस्थानों के कितने भेद हैं ?

चौदह हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) सासादन, (३) मिश्र (४) अविरत सम्यग्दृष्टि, (५) देशविरत, (६) प्रमत्त विरत, (७) अप्रमत्त विरत, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्म साम्पराय, (११) उपशान्तमोह, (१२) क्षीणमोह, (१३) सयोगकेवली, (१४) अयोग केवली।

(३) गुण स्थानों के नाम होने का कारण क्या है ?

मोहनीय कर्म और योग।

(४) कौन कौन से गुणस्थान का क्या क्या निमित्त है ?

आदि के चार गुणस्थान तो दर्शनमोहनीय कर्म के निमित्त से हैं। पांचवें गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान पर्यंत आठ गुणस्थान चारित्र मोहनीय के निमित्त से हैं। और तेरहवां और चौदहवां ये दो गुणस्थान योगों के निमित्त से हैं।

भावार्थ – पहला गुणस्थान दर्शनमोहनीय के उदय से होता है। इसमें आत्मा के परिणाम मिथ्यात्वरूप होते हैं। चौथा गुणस्थान दर्शन मोहनीय के उपशम क्षय या क्षयोपशम से होता है। इस

गुणस्थान में आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण का प्रादुर्भाव हो जाता है। तीसरा गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्वरूप दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से होता है। इस गुणस्थान में आत्मा के परिणाम सम्यग्मिथ्यात्व अर्थात उभय रूप होते हैं। पहले गुण स्थान में औदयिक भाव, चौथे गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव और तीसरे गुणस्थान में औदयिक भाव होता है। परन्तु दूसरा गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्म की उदय उपशम क्षय और क्षयोपशम इन चार अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था की अपेक्षा नहीं रखता है, इसलिये यहां पर दर्शन-मोहनीय कर्म की अपेक्षा से पारिणामिक भाव है, परन्तु अनन्तानुबन्ध रूप चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होने से इस गुणस्थान में चारित्रमोहनीय कर्म की अपेक्षा औदयिक भाव भी कहा जा सकता है। इस गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी के उदय से सम्यक्त्व का घात हो गया है, इसलिये यहां सम्य-क्त्व नहीं है और मिथ्यात्व का भी उदय नहीं है, अतः मिथ्यात्व परिणाम भी नहीं हैं। इसलिये यह गुणस्थान मिथ्यात्व व सम्यक्त्व की अपेक्षा से अनुदय रूप है।

पांचवें गुण स्थान से दसवें गुणस्थान तक छः गुणस्थान चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षयोपशम होते हैं। इन गुणस्थानों से सम्यग-चारित्र गुण की कर्म से वृद्धि होती जाती है। ग्यारहवां गुण-स्थान चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम से होता है इसलिये ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिक भाव होते हैं। यद्यपि यहां पर चारित्र मोहनीय कर्म का पूर्णतया उपशम हो गया है, तथापि योग का सद्भाव होने से पूर्ण चारित्र नहीं है, क्योंकि सम्यक्चारित्र के लक्षण में योग और कषाय के अभाव से सम्यक्चारित्र होता है ऐसा लिखा है। बारहवां गुणस्थान चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय से होता है, इसलिये यहां क्षायिक भाव पाया जाता है। इस गुण स्थान में भी ग्यारहवें गुणस्थान

की तरह सम्यक्चारित्र की पूर्णता नहीं है। सम्यग्ज्ञान गुण यद्यपि चौथे गुणस्थान में ही प्रगट हो चुका था।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा का ज्ञान गुण अनादिकाल से प्रवाह रूप चला आ रहा है, तथापि दर्शनमोहनीय का उदय होने से वह मिथ्यारूप था। परन्तु चौथे गुण स्थान में जब दर्शनमोहनीय कर्म के उदय का अभाव हो गया, तब वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगा। और पंचम आदि गुणस्थानों में तपश्चरण के निमित्त से अवधि व मनःपर्यय ज्ञान भी किसी किसी जीव के प्रगट हो जाते हैं; तथापि केवलज्ञान के हुए बिना सम्यग्ज्ञान गुण की पूर्णता नहीं हो सकती। इसलिये इस बारहवें गुणस्थान तक यद्यपि सम्यग्दर्शन की पूर्णता हो गई है (क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व के बिना क्षपक श्रेणी और क्षपक श्रेणी के अभाव में बारहवां गुणस्थान सम्भव नहीं।) तथापि सम्यग्ज्ञान व सम्यक चारित्रगुण अभी तक अपूर्ण हैं, इसलिये यहां मोक्ष नहीं होता। तेरहवां गुणस्थान योगों के सद्भाव की अपेक्षा से होता है, इसलिये इसका नाम संयोग और केवलज्ञान के निमित्त से केवली है। इस गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान पूर्ण हो जाने पर भी, योगात्म चारित्र की पूर्णता न होने से मोक्ष नहीं होता। चौदहवां गुणस्थान योगों के अभाव की अपेक्षा है, इसीलिये इसका नाम अयोग केवली है। इस गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों गुणों की पूर्णता हो जाने के कारण मोक्ष उससे दूर नहीं रह जाता। अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना काल लगता है, उतने ही काल पश्चात मोक्ष लाभ करता है।

(५) मिथ्यात्व गुणस्थान का क्या स्वरूप है?

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अतत्वार्थ श्रद्धानरूप आत्मा के परिणाम विशेष को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। इस मिथ्यात्व गुणस्थान मे रहनेवाला जीव विपरीत श्रद्धान करता है और

सच्चे धर्म की तरफ इसकी रूचि नहीं होती। जैसे पित्तज्वर वाले रोगी को दुग्धादिक रस कड़ुवे लगते हैं, उसी प्रकार इसको भी समीचीन धर्म अच्छा नहीं लगता।

(७) **मिथ्यात्व गुणस्थान में किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है ?**

कर्म की १४० प्रकृतियों में से २० प्रकृतियों का अभेद विवक्षायें स्पर्शादिक चार में, बन्धन ५ और संघात ५ का अभेद विवक्षा से पांच शरीरों में, अन्तर्भाव होता है। इस कारण भेद विवक्षा से १४८ और अभेद विवक्षा से १२२ प्रकृतियां हैं। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता सम्यक्त्व परिणाम से मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड करने से होती है। इस कारण अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के बन्ध योग्य प्रकृति १२० और सत्व योग्य प्रकृति १४६ है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर, प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता (अतः ये तीन अवन्ध प्रकृतियें कही जाती हैं। आगे जाने पर इनका बन्ध हो जायेगा) क्योंकि इन तीन प्रकृतियों का बन्ध सम्यग्दृष्टियों को ही होता है। इसलिये इस गुणस्थान में १२० में से तीन घटाने पर ११७ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

(७) **मिथ्यात्व गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?**

सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकर प्रकृति, इन पांच प्रकृतियों का इस गुण स्थान में उदय नहीं होता, इसलिये १२२ में से पांच घटाने पर ११७ का उदय होता है।

(८) **मिथ्यात्व गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?**

एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों का।

(९) **सासादन गुणस्थान किसको कहते हैं ?**

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में जब ज्यादा से ज्यादा छः

आवली और कम से कम एक समय बाकी रहे, उस समय किसी एक अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से नाश हो गया है सम्यक्त्व जिसका, ऐसा जीव सासादन गुणस्थान वाला होता है।

(१०) **प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको कहते हैं?**

सम्यक्त्व के तीन भेद हैं—दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति और अनन्तानुबन्धी की चार प्रकृति, इस प्रकार सात प्रकृतियों के उपशम होने से जो उत्पन्न हो उसको उपशम सम्यक्त्व कहते हैं, और इन सातों के क्षय होने से जो उत्पन्न हो उसको क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। इनमें से ६ प्रकृतियों में अनुदय और सम्यक्प्रकृति नामक मिथ्यात्व के उदय से जो उत्पन्न हो उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

उपशम सम्यक्त्व के दो भेद हैं,—एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व दूसरा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। अनादि मिथ्यादृष्टि के पांच और सादि मिथ्यादृष्टि के सात प्रकृतियों के उपशम से जो हो उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। (क्योंकि सम्याग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति यह दोनों प्रकृतियां की सत्ता आदि मिथ्या-दृष्टि के ही होती है, अनादि मिथ्यादृष्टि के नहीं।

(११) **द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसको कहते हैं?**

सातवें गुण स्थान में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव श्रेणी चढ़ने के सन्मुख अवस्था में अनन्तानुबन्धी चतुष्टय का विसं-योजन करके (उनको अप्रत्याख्यान आदि रूप परिणमा कर) दर्शन मोहनीय की तीनों प्रकृतियों का उपशम करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसको द्वितीयोतीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

(१२) **आवली किसको कहते हैं**

असंख्यात समय की एक आवली होती है।

(१३) **सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?**

पहिले गुणस्थान में जो ११७ प्रकृतियों का बन्ध होता है, उनमें

से मिथ्यात्व गुणस्थान में जिनकी व्युच्छित्ति है, ऐसी १६ प्रकृतियों के घटाने पर १०१ प्रकृतियों का बन्ध सासादन में होता है। वे सोलह प्रकृतियें ये हैं—मिथ्यात्व, हुँडक संस्थान, नपुंसक वेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, अंसप्राप्तसृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय तीन जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्ति और साधारण।

(१४) व्युच्छित्ति किसे कहते हैं?

जिस गुणस्थान में कर्म प्रकृतियों के बन्ध उदय अथवा सत्व की व्युच्छित्ति कही हो, उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियों का बन्ध उदय अथवा सत्व पाया जाता है। आगे के किसी भी गुणस्थान में उन प्रकृतियों का बन्ध, उदय अथवा सत्व नहीं होता है। इसी को व्युच्छित्ति कहते हैं।

१५. अबन्ध अनुदय व असत्य किसको कहते हैं?

जिस गुणस्थान में कर्म प्रकृतियों के अबन्ध अनुदय अथवा असत्व कहा हो, उस गुणस्थान में ही उन प्रकृतियों का बन्ध उदय या सत्व नहीं होता। आगे किसी योग्य गुणस्थान में वे प्रकृतियें बन्ध उदय अथवा सत्व रूप हो जाती हैं।

(१६) सासादन गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

पहिले गुणस्थान में जो ११७ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्ति और साधारण इन पांच मिथ्यात्व गुणस्थान की व्युच्छित्ति प्रकृतियों को घटाने पर 112 रहीं। परन्तु नरकगत्यानुपूर्वी का इस गुण स्थान में उदय नहीं होता, इसलिये इस गुण स्थान में 111 प्रकृतियों का उदय रहता है।

(१७) सासादन गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का होता है?

एक सौ पैंतालीस प्रकृतियों का सत्व रहता है। यहां पर तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियों की सत्ता नहीं रहती (असत्त्व है)।

(१८) तीसरा मिश्र गुणस्थान किसको कहते हैं ?

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीव के न तो सम्यक्त्व परिणाम होते हैं और न केवल मिथ्यात्व रूप परिणाम होते हैं, किन्तु मिले हुए दही गुड़ के स्वाद की तरह एक भिन्न जाति के मिश्र परिणाम होते हैं। इसी को मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

(१६) मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

दूसरे गुणस्थान में बन्ध प्रकृति १०१ थीं। उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति २५ को घटाने पर शेष रही ७६। परन्तु इस गुणस्थान में किसी भी आयु का बन्ध नहीं होता है, इसलिये ७६ में से मनुष्यायु देवायु इन दो के घटाने पर ७४ प्रकृतियों का बन्ध होता है। नरकायु की पहले गुणस्थान में और तिर्यचायु की दूसरे गुणस्थान में ही व्युच्छित्ति हो चुकी है। (व्युच्छित्ति वाली २५ प्रकृतियां इस प्रकार हैं – अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ; स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय; यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, बामन संस्थान; वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलित संहनन; अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु और उद्योत)।

(२०) मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है ?

दूसरे गुणस्थान में १११ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति ६ के घटाने पर शेष रही १०२ में से नरक गत्यानुपूर्वी के बिना (क्योंकि यह दूसरे गुण स्थान में घटाई जा चुकी है) शेष की तीन आनुपूर्वी घटाने पर शेष रही ६६ प्रकृति और एक सम्यक् प्रकृति (जिसका पहले अनुदय) का उदय यहां आ मिला; इस कारण इस गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय है। व्युच्छित्ति की ६ प्रकृतियां ये हैं–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; एकेन्द्रियादि ४ जाति; स्थावर १।

२१. मिश्र गुणस्थान में गत्यानुपूर्वी क्यों घटाई ?
क्योंकि इस गुणस्थान में मरण नहीं होता।

(२२) मिश्र गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?
तीर्थंकर प्रकृति के बिना १४७ प्रकृतियों का सत्व रहता है।

(२३) चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का क्या स्वरूप हैं ?
दर्शनमोहनीय की ३ और अनन्तानुबन्धी की चार इन सात प्रकृतियों के उपशम अथवा क्षय अथवा क्षयोपशम से और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ के उदय से व्रत रहित सम्यक्त्वधारी चौथे गुणस्थानवर्ती होता है।

(२४) इस चौथे गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?
तीसरे गुणस्थान में ७४ प्रकृतियों का बन्ध होता है, जिनमें मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर (जो पहले अबन्ध रूप थी) इन तीन प्रकृतियों सहित ७७ प्रकृतियों का यहां बन्ध होता है।

(२५) चौथे गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?
तीसरे गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय होता है। उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व के घटाने पर रही ९९। इनमें चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति (जो पहले अनुदय रूप थी) इन पांच प्रकृतियों के मिलाने पर १०४ प्रकृतियों का उदय होता है।

(२६) चौथे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्व रहता है ?
सबका। अर्थात १४८ प्रकृतियों का, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १४१ का ही सत्व है (क्योंकि दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी चार इन सात प्रकृतियों का क्षय हो गया है।)

(२७) देशविरत नामक पांचवें गुणस्थान का क्या स्वरूप है ?
प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ के उदय से यद्यपि संयम भाव नहीं होता तथापि अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ के उपशम से (क्षयोपशमसे) श्रावक व्रतरूप देशचारित्र होता है। इसही को देशविरत नामक पांचवां गुणस्थान कहते हैं। पाँचवें आदि समस्त ऊपर के गुणस्थानों में सम्यग-

दर्शन और सम्यग्दर्शन का अविनाभावी सम्यग्ज्ञान अवश्य होता है। इनके बिना पांचवें छटे आदि गुणस्थान नहीं होते।

(२८) पांचवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

चौथे गुणस्थान में ७७ प्रकृतियों का बन्ध कहा है। उनमें से व्युच्छिन्न दश के घटाने पर शेष रही ६७ प्रकृतियों का बन्ध होता है (व्युच्छित्ति की दस अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यग यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, वज्रर्षभ नाराच संहनन)

(२९) पांचवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

चौथे गुणस्थान में जो १०४ प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति १७ के घटाने पर शेष रही ८७ प्रकृतियों का उदय है। (व्युच्छिन्न १७ = अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, मनुष्य गत्यानुपूर्वी तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति)।

३०. गत्यानुपूर्वी का उदय यहां क्यों घटाया ?

क्योंकि पांचवें आदि गुणस्थानों में मृत्यु नहीं होती। मृत्यु के समय चौथा या पहला स्थान हो जाता है।

(३१) पांचवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?

चौथे गुणस्थान में जो १४८ का सत्व रहना कहा है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति एक नरकायु के बिना १४७ का सत्व रहता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा १४० का ही सत्व रहता है।

(३२) छटे प्रमत्तविरत गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय से संयम भाव तथा मलजनक प्रमाद ये दोनों ही युगपत् होते हैं। इसलिये इस गुणस्थानवर्ती मुनि को प्रमत्त विरत अर्थात चित्रलाचरणी कहा है।

३३. संज्वलन के उदय से संयम भाव कैसे सम्भव है ?

वास्तव में प्रत्याख्यानावरण के उपशय से तद्योग्य संयम है पर संज्वलन के उदय में होने से उपचार कथन किया है।

(३४) छटे गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

पांचवें गुणस्थान में जो ६७ प्रकृतियों का बन्ध होता है, उनमें से प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ इन चार व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने पर शेष रही ६३ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

(३५) छटे गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का रहता है ?

पांचवें गुणस्थान में ८७ प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति आठ घटाने पर शेष रही ७९ प्रकृतियों में आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग (जो अनुदय रूप थी) ये दो प्रकृतियां मिलाने से ८१ प्रकृतियों का उदय होता है। (व्युच्छिन्न आठ = प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, तिर्यग्गति, तिर्यगायु, उद्योत और नीच गोत्र)

(३६) छटे गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का है ?

पांचवें गुणस्थान में १४७ प्रकृतियों की सत्ता कही है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति एक तिर्यगायु के घटाने पर १४६ प्रकृतियों का सत्व रहता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९ का ही सत्व है।

(३७) अप्रमत्त विरत सातवें गुणस्थान का क्या स्वरूप है ?

संज्वलन और नोकषाय के मन्द उदय होने से प्रमाद रहित संयम भाव होते हैं, इस कारण इस गुणस्थानवर्ती मुनि को अप्रमत्तविरत कहते हैं।

(३८) अप्रमत्त विरत गुणस्थान के कितने भेद हैं ?

दो हैं-स्वस्थान अप्रमत्त विरत और सातिशय अप्रमत्त विरत ।

(३९) स्वस्थान अप्रमत्त विरत किसको कहते हैं ?

जो हजारों बार छटे से सातवें में और सातवें से छटे गुणस्थान

में आवे जावे, उसको स्वस्थान अप्रमत्त कहते हैं।

(४०) सातिशय अप्रमत्त विरत किसको कहते हैं ?

जो श्रेणी चढ़ने के सम्मुख हो उसको सातिशय अप्रमत्त कहते है।

(४१) श्रेणी चढ़ने का पात्र कौन है ?

क्षायिक सम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ही श्रेणी चढ़ते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाला प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोड़ कर क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर प्रथम ही अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ का विसंयोजन करके दर्शन-मोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके या तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाये, अथवा इन तीनों प्रकृतियों का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाये, तब श्रेणी चढ़ने का पात्र होता है।

(४२) श्रेणी किसको कहते हैं ?

जहां चारित्र मोहनीय की शेष रही इक्कीस प्रकृतियों का क्रम से उपशम तथा क्षय किया जाये उसको श्रेणी कहते है।

(४३) श्रेणी के कितने भेद हैं ?

दो—उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी।

(४४) उपशम श्रेणी किसको कहते हैं ?

जिसमें चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियों का उपशम किया जाये।

(४५) क्षपक श्रेणी किसको कहते हैं ?

जिसमें उक्त इक्कीस प्रकृतियों का क्षय किया जाये।

(४६) इन दोनों श्रेणियों में कौन कौन से जीव चढ़ते हैं ?

क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो दोनों ही श्रेणी चढ़ता है, और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी ही चढ़ता है, क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ता।

(४७) उपशम श्रेणी के कौन कौन गुणस्थान हैं ?

चार हैं—आठवां, नवमां दसवां, ग्यारहवां।

(४८) **क्षपक श्रेणी में कौन से गुणस्थान हैं ?**
चार हैं—आठवां, नवमां, दशवां व बारहवां ।

(४९) **चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों को उपशमावने तथा क्षय करने के लिये आत्मा के कौन से परिणाम निमित्त कारण हैं ?**
तीन हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण ।

(५०) **अधःकरण किसको कहते हैं ?**
जिस करण में (परिणाम समूह में) उपरितन समववर्ती तथा अधस्तन समपवर्ती जीवों के परिणाम सदृश तथा विसदृश हों उसको अधः करण कहते हैं । यह अधःकरण सातवें गुणस्थान में होता है ।

(५१) **अपूर्वकरण किसको कहते हैं ?**
जिस करण में उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते चले जावें अर्थात् भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम सदा विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश भी हो, उनको अपूर्वकरण कहते हैं । यही आठवां गुणस्थान है ।

(५२) **अनिवृत्तिकरण किसको कहते हैं ?**
जिस करण में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश ही हो उसको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। यही नवमा गुणस्थान हैं ।

(५३) **अधःकरण का दृष्टान्त क्या है ?**
देवदत्त नाम के राजा के ३०७२ आदमी जो कि सोलह महकमों में बंटे हुए हैं) सेवक हैं । महकमा नं १ में १६२ हैं, नं० २ में १६६, नं० ३ में १७०, नं० ४ में १७४, नं० ५ में १७८, नं० ६ में १८२, नं० ७ में १८६, नं० १९०, नं० ९ में १९४, नं० १० में १९८, नं० ११ में २०२, नं० १२ में २०६, नं० १३ में २१०, नं० १४ में २१४, नं. १५ में २१८ और नं, १६ में २२२ आदमी काम करते हैं ।

पहले महकमें में १६२ आदमियों में से पहले आदमी का वेतन

१), दूसरे का २), तीसरे का ३), इस प्रकार एक एक बढ़ते हुए १६२ वें आदमी का वेतन १६२) है। और महकमे नं. २ में १६६ आदमी काम करते हैं, उनमें से पहिले आदमी का वेतन ४०) है, द्वितीयादि का एक एक रूपया क्रम से बढ़ता हुआ होने से १६६ वें आदमी का वेतन २०५ है। महकमें नं ३ में १७० आदमी काम करते हैं. सो उनमें से पहले आदमी का वेतन ८०) है और दूसरे तीसरे आदि आदमियों का एक एक रुपया बढ़ते बढ़ते १७० वें आदमी का वेतन २४१) है। महकमें नं० ४ में १७४ आदमी काम करते हैं, सो पहले आदमी का वेतन १२९) है और दूसरे आदि का एक एक रुपया बढ़ते बढ़ते १७४ वें आदमी का वेतन २१४) होता है। इसी क्रम से १६ वें महकमे में जो २२२ नौकर हैं, उनमें से पहले का वेतन ६९१) है और २२२ वें आदमी का वेतन ९१२) है।

इस दृष्टान्त में पहिले ३९ आदमियों का वेतन ऊपर के महकमें में किसी भी आदमी से नहीं मिलता, तथा आखिर के ५७ आदमियों का वेतन नीचे के महकमे के किसी भी आदमी के साथ नहीं मिलता है। शेष वेतन ऊपर नीचे के महकमों के वेतनों के साथ यथा सम्भव सदृश भी हैं, इसी प्रकार यथार्थ में ऊपर के समय सम्बन्धी परिणामों में सदृशता यथा सम्भव जाननी। इसका विशेष स्वरूप गोमट्टसारजी के गुणस्थान अधिकार में तथा छपे हुए सुशीला उपन्यास के २४७ वें पृष्ठ से लगाकर २६३ वें पृष्ठ तक में देखना।

(५४) सातवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है?

छट्टे गुणस्थान में जो ६३ प्रकृतियों का बन्ध कहा है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति ६ के घटाने पर शेष रही ५७ में आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग (जो अबन्ध रूप थीं) इन दो प्रकृतियों को मिलाने से ५९ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

(५५) सातवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

छटे गुणस्थान में जो ८१ प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से

व्युच्छिन्न प्रकृति पांच के घटाने पर शेष रही ७६ प्रकृतियों का उदय रहता है (व्युच्छिन्न पांच=आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला, और स्त्यानगृद्धि)।

(५६) सातवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का है ?

छटे गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी १४६ प्रकृतियों की सत्ता रहती है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३६ का ही सत्व है।

(५७) आठवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

सातवें गुणस्थान में जो ५६ प्रकृतियों का बन्ध कहा है, उस में से व्युच्छिन्न प्रकृति एक देवायु के घटाने पर शेष रही ५८ का बन्ध होता है।

(५८) आठवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

सातवें गुणस्थान में जो ७६ प्रकृतियों का उदय कहा है उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति चार घटाने पर शेष रही ७२ प्रकृतियों का उदय होता है। (व्युच्छिन्न चार=सम्यक्त्व प्रकृति, उर्द्ध-नाराच, कीलित, असंप्राप्त सृपाटिका सहनन)।

(५६) आठवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?

सातवें गुणस्थान में जो १४६ का सत्व कहा है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन चार को घटाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी वाले के तो १४२ का सत्व है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणीवाले के दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति रहित १३६ का सत्व है, और क्षपक श्रेणीवाले के सातवें गुणस्थान की व्युच्छित्ति प्रकृति आठ घटाकर शेष १३८ प्रकृतियों का सत्व है। व्युच्छिति आठ=अनन्तानुबन्धी ४, दर्शनमोहनीय ३, और देवायु १)।

(६०) नवमें अर्थात अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है ?

आठवे गुणस्थान में जो ५८ प्रकृतियों का बन्ध कहा है, उनमें

से व्युच्छित्ति प्रकृति ३६ को घटाने पर शेष रही २२ प्रकृति का बन्ध होता है। (व्युच्छित्ति की ३६=निद्रा, प्रचला, तीर्थकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पचेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय)।

(६१) नवमें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

आठवें गुणस्थान में जो ७२ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति ६ को घटाने पर शेष ६६ प्रकृतियों का उदय होता है। (व्युच्छित्ति की ६=हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा)।

(६२) नवमें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का होता है ?

आठवें गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी उपशम श्रेणी वाले द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के १४२, क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९ और क्षपक श्रेणीवाले के १३५ का ही सत्व है।

(६३) दशवें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त लोभ कषाय के उदय को अनुभव करते हुए जीव के सूक्ष्म साम्पराय नामका दशवां गुणस्थान होता है।

(६४) दशवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

नवमें गुणस्थान में जो २२ प्रकृतियों का बन्ध होता है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति पांच को घटाने पर शेष रही १७ प्रकृतियों का बन्ध होता है। (व्युच्छित्ति की पांच=पुरुष वेद, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ)।

(६५) दशवं गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का है ?

नवमें गुणस्थान में जो ६६ प्रकृतियों का उदय होता है, उन

में से व्युच्छित्ति प्रकृति ६ को घटाने पर शेष रही ६० प्रकृतियों का उदय होता है। (व्युच्छित्ति की ६=स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध मान माया)।

(६६) **दशवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का होता है?**

उपशम श्रेणी में तो नवमें की तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३९। क्षपक श्रेणी वाले के नवमें गुणस्थान में जो १३८ प्रकृतियों का सत्व है उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति ३६ को घटाने पर शेष रही १०२ प्रकृतियों का सत्व रहता है। (व्युच्छित्ति की ३६=तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, विकलत्रय ३, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, नोकषाय ९, संज्वलन क्रोध मान माया, नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी)।

(६७) **ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थान का क्या स्वरूप है?**

चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशम होने से यथाख्यात चारित्र को धारण करनेवाले मुनि के उपशान्त मोह नामक गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर मोहनीय के उदय से जीव निचले गुणस्थानों में आ जाता है।

(६८) **ग्यारहवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है?**

दशवें गुणस्थान में जो १७ प्रकृतियों का बन्ध होता था, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति १६ अर्थात ज्ञानावरणीय की ५, दर्शनावरणीय की ४, अन्तराय की ५, यशस्कीर्ति व उच्चगोत्र इन सबको घटा देने पर शेष रही एकमात्र साता वेदनीय का बन्ध होता है।

(६९) **ग्यारहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?**

दशवें गुणस्थान में जो ६० प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति एक संज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष रही ५९ प्रकृतियों का उदय रहता है।

(७०) ग्यारहवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?

नवमें और दशवें गुणस्थानकी तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १३६ का सत्त्व है। (क्षपक श्रेणी यहां होती नहीं)।

(७१) क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

मोहनीय कर्म के अत्यन्त क्षय होने से स्फटिक भाजनगत जल की तरह अत्यन्त निर्मल अविनाशी यथाख्यात चारित्र के धारक मुनि के क्षीणमोह नामक गुणस्थान होता है।

(७२) बारहवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

एक साता वेदनीय मात्र का बन्ध होता है।

(७३) बारहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

ग्यारहवें गुणस्थान में जो ५६ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से वज्रनाराच और नाराच संहनन इन दो व्युच्छित्ति प्रकृतियों को घटा देने पर ५७ प्रकृतियों का उदय होता है।

(७४) बारहवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?

(यहां केवल एक क्षपक श्रेणी ही सम्भव है) दशवें गुणस्थान में क्षपक श्रेणीवाले की अपेक्षा १०२ प्रकृतियों का सत्व है। उन में से व्युच्छित्ति प्रकृति संज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष रही १०१ प्रकृतियों का सत्व रहता है।

(७५) सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप क्या है और वह किसके होता है ?

घातिया कर्मों की ४७ (देखो अध्याय ३, अधिकार १) और अघातिया कर्मों की १६ (नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, विकल-त्रय ३, आयुत्रिक ३, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर) ये मिलकर ६३ प्रकृतियों का क्षय होने से लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान तथा मनोयोग, वचनयोग, काययोग के धारक अर्हन्त भट्टारक के संयोग केवली नामक तेरहवां गुणस्थान होता है। यही केवली भगवान अपनी दिव्यध्वनि से भव्य

जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर संसार में मोक्षमार्ग का प्रकाश करते हैं।

(७६) तेरहवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

एक मात्र साता वेदनीय का बन्ध होता है।

(७७) तेरहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

बारहवें गुणस्थान में जो ५७ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति १६ को घटा देने पर शेष रही ४१ प्रकृतियों में तीर्थंकर की अपेक्षा से एक तीर्थंकर प्रकृति (जो अनुदय रूप थी) को मिलाने से ४२ प्रकृतियों का उदय होता है। (व्यच्छित्ति की १६=ज्ञानावरण ५, दर्शनावरणीय ४, अंतराय ५, निद्रा और प्रचला)।

(७८) तेरहवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का होता है ?

बारहवें गुणस्थान में जो १०१ प्रकृतियों का सत्व है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति १६ को घटा देने पर शेष ८५ प्रकृतियों का सत्व रहता है। (व्युच्छित्ति की १६ = ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ४, अन्तराय ५, निद्रा और प्रचला)।

(७९) अयोग केवली गुणस्थान का स्वरूप क्या है, और वह किसके होता है ?

मन वचन काय के योगों से रहित केवलज्ञान सहित अर्हन्त भट्टारक के चौदहवां गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान का काल अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने के बराबर है। अपने गुणस्थान के काल के द्विचरम समय में सत्ता की ८५ प्रकृतियों में से ७२ प्रकृतियों का और चरम समय में १३ प्रकृतियों का नाश करके अर्हन्त भगवान मोक्षधाम (सिद्धाशिला) को पधारते हैं।

(८०) चौदहवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

तेरहवें गुणस्थान में जो एक सातावेदनीय का बन्ध होता था, उसकी उसी गुणस्थान में व्युच्छित्ति हो जाने से यहां किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं होता।

(८१) चौदहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

तेरहवें गुणस्थान में जो ४२ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति ३० को घटाने पर शेष रही १२ प्रकृतियों का उदय होता है। (व्युच्छित्ति की ३०=असाता वेदनीय, वज्रर्षभ नाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, समचतुरस्र, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंडक संस्थान; स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येक); (शेष १२ प्रकृतियां=साता वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र)

(८२) चौदहवें गुणस्थान में सत्व कितनी प्रकृतियों का रहता है ?

तेरहवें गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी ८५ प्रकृतियों का सत्त्व है, परन्तु द्विचरम समय में ७२ और अन्तिम समय में १३ प्रकृतियों का सत्व नष्ट करके अर्हन्त भगवान मोक्ष पधारते हैं।

प्रश्नावली

अध्याय स्वयं प्रश्नावली है।

षष्टम अध्याय

(तत्वार्थ)

१ नव पदार्थाधिकार

१. तत्व किसको कहते हैं ?

द्रव्य के भाव या स्वभाव को तत्व कहते हैं।

२. द्रव्य व तत्व में क्या अन्तर है ?

द्रव्य तो स्वभाव व गुणों का आश्रय है और तत्व उसके आश्रित है। द्रव्य में प्रदेशात्मक क्षेत्र प्रधान है और तत्व में भावात्मक गुण प्रधान है।

३. पदार्थ किसको कहते हैं ?

द्रव्य गुण, पर्याय, अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य; अथवा सामान्य विशेष; अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव इन सभी से पृथक पृथक भी पदार्थ कहा जा सकता है और इकट्ठा करके इन सबके एक अखण्ड रूप को भी पदार्थ कहा जा सकता है। अतः 'पदार्थ' शब्द अति व्यापक है।

४. वस्तु किसको कहते हैं ?

जो अपने प्रयोजनभूत कार्य को सिद्ध करने वाली हो उसको वस्तु कहते हैं। जैसे गोत्व नाम की सामान्य जाति स्वयं अवस्तु है, क्योंकि उससे दूध दूहने रूप प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है; और 'गौ' नाम का पशु वस्तु है, क्योंकि उससे वह प्रयोजन सिद्ध होता है।

५. तत्व कितने हैं ?

सात हैं—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

६. **जीव तत्व किसको कहते हैं ?**
ज्ञान दर्शन आदि चेतनात्मक गुणों का समूह जीव द्रव्य ही जीव तत्व है।

७. **अजीव तत्व किसको कहते हैं ?**
जीव से अतिरिक्त पुद्गलादि शेष पांच द्रव्य ही अजीव तत्व हैं। अथवा जो न स्वयं अपने को जाने न दूसरे को, ऐसे सर्व पदार्थ अजीव हैं, भले ही वे द्रव्य हों गुण हों या पर्याय। इस प्रकार अजीव द्रव्य तो अजीव हैं, ही, जीव के ज्ञान दर्शन-आदिक प्रकाश स्वभावी गुणों के अतिरिक्त राग द्वेषादि सभी विकारी गुण या भाव व उसकी प्रदेशात्मक आकृति भी अजीव है। यह कथन भेद विवक्षा से है सर्वथा नहीं।

८. **आस्रव किसको कहते हैं ?**
आने के द्वार को आस्रव तत्व कहते हैं, अर्थात जीव में कर्मों के आने का आस्रव कहते हैं।

९. **कर्म कितने प्रकार के होते है ?**
तीन प्रकार के—भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नोकर्म।

१०. **भावकर्म किसको कहते हैं ?**
जीव के रागद्वेषादि मोहजनित परिणामों को भावकर्म कहते हैं

११. **द्रव्य कर्म किसको कहते हैं ?**
उपरोक्त भाव कर्मों के निमित्त से कार्माण वर्गणा रूप जो पुद्गल स्कन्ध ज्ञानावरणीय आदि अष्ट कर्म रूप से परिणत होकर जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होता है, वह द्रव्य कर्म है।

१२. **नोकर्म किसको कहते हैं ?**
उपरोक्त भाव कर्म के निमित्त से ही आहारक वर्गणा रूप जो यह स्थूल शरीर अथवा जगत के सभी दृष्ट पुद्गल स्कन्ध नोकर्म हैं, क्योंकि वे सभी किसी न किसी के शरीर ही हैं या थे।

१३. **तीनों प्रकार के ये कर्म जीव हैं या अजीव ?**
द्रव्य कर्म व नोकर्म तो पुद्गल वर्गणा जनित होने से अजीव हैं

ही, पर भाव कर्म भी स्व पर को जानने में असमर्थ होने से अजीव ही हैं।

१४. आस्रव कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—भावास्रव और द्रव्यास्रव।

१५. भावास्रव किसको कहते हैं ?

जीव के जिन परिणामों के निमित्त से द्रव्य कर्मों का आगमन जीव के प्रदेशों में हो जाये उन परिणामों को भावास्रव कहते हैं।

१६. भावास्रव रूप जीव के परिणाम कौन से हैं ?

तीन हैं—मन, वचन, व काय की क्रियायें या योग।

१७. द्रव्यास्रव किसको कहते हैं ?

भावास्रव के निमित्त से जो द्रव्य कर्मों का आगमन होता है, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं।

१८. बन्ध तत्व किसको कहते हैं ?

कर्मों का जीव के प्रदेशों के साथ संश्लेष सम्बन्ध को प्राप्त हो जाना बन्ध है।

१९. बन्ध कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—भाव बन्ध व द्रव्य बन्ध।

२०. भाव बन्ध किसको कहते हैं ?

जीव के जिन रागादि भाव कर्मों या परिणामों के निमित्त से द्रव्य कर्म जीव के प्रदेशों से बन्धते हैं, उन परिणामों को भाव बन्ध कहते हैं अथवा जीव के उन संस्कारों या वासनाओं को भावबन्ध कहते हैं जिनके कारण उसे रागद्वेषादि करने की प्रेरणा मिलती है।

२१. भाव बन्ध रूप जीव के परिणाम कौन से हैं ?

पांच हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योग। (इन सबका विस्तृत कथन पहले किया जा चुका है)

२२. **द्रव्य बन्ध किसको कहते हैं ?**
भाव बन्ध के निमित्त से जो द्रव्य कर्मों का जीव प्रदेशों के साथ बन्धान होता है, वह द्रव्यबन्ध है।

२३. **द्रव्य बन्ध में कितने विकल्प होते है ?**
चार—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश।
(विस्तार के लिये देखो अध्याय ३ अधिकार १)

२४. **संवर तत्व किसको कहते हैं ?**
कर्मों के आगमन का द्वार रुक जाना अर्थात आस्रव का निरोध संवर है।

२५. **संवर तत्व कितने प्रकार का है ?**
दो प्रकार का—भाव संवर, द्रव्य संवर।

२६. **भाव संवर किसको कहते हैं ?**
जीव के जिन परिणामों से कर्मों का आस्रव रुक जाये उन परिणामों को भाव संवर कहते हैं।

२७ **भाव संवर रूप जीव के परिणाम कौन से हैं ?**
आठ प्रकार के हैं—सम्यग्दर्शन, व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय व चारित्र।

२८. **द्रव्य संवर किसको कहते हैं ?**
भाव संवर के निमित्त से द्रव्य कर्मों के नवीन आगमन का रुक जाना द्रव्य संवर है।

२९. **निर्जरा तत्व किसको कहते हैं ?**
पूर्वबद्ध कर्मों का जीव प्रदेशों से धीरे धीरे पृथक होना या झड़ जाना निर्जरा कहलाता है।

३०. **निर्जरा कितने प्रकार की होती है ?**
दो प्रकार की—भाव निर्जरा व द्रव्य निर्जरा।

३१. **भाव निर्जरा किसको कहते हैं ?**
जीव के जिन परिणामों के निमित्त से पूर्वबद्ध कर्म झड़ते हैं, या संस्कारक्षीण होते हैं उन्हें भाव निर्जरा कहते हैं।

३२. भाव निर्जरा रूप जीव के परिणाम कौन से हैं ?

तप सहित भाव संवर वाले परिणाम ही निर्जरा रूप हैं।

३३. तप किसको कहते हैं ?

इच्छा का निरोध करना तप है; अथवा अत्यन्त प्रतिकूल व विषम स्थितियों में, उपसर्गों तथा परीषहों में सम रहना ही आत्मा का प्रताप होने से तप है।

३४. तप कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—बाह्य तप और अभ्यन्तर तप।

३५. बाह्य तप किसको कहते हैं और कितने प्रकार का है ?

जिसका सम्बन्ध शरीर से हो उसे बाह्य तप या द्रव्य तप कहते हैं। वह छः प्रकार का होता है—अनशन, ऊनोदर, वृत्ति-परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश।

३६. अभ्यन्तर तप किसको कहते हैं और कितने प्रकार का है ?

जिसका सम्बन्ध आत्मा के चेतन परिणामों या भावों से हो उसे अभ्यन्तर तप या भाव तप कहते हैं। वह छः प्रकार का है—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग), ध्यान।

३७ द्रव्य निर्जरा किसको कहते हैं ?

भाव निर्जरा रूप तप के निमित्त से द्रव्य कर्मों का आत्म प्रदेशों से झगड़ा द्रव्य निर्जरा है।

३८. द्रव्य निर्जरा कितने प्रकार की होती है ?

दो प्रकार की—सविपाक व अविपाक।

३९. सविपाक अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

अपने अपने समय पर क्रम पूर्वक कर्मों में उदय आआ कर झड़ना सविपाक निर्जरा है; और तप द्वारा कर्मों को काल से पहले ही पकाकर उदीरणा से झाड़ देना अविपाक निर्जरा है।

४०. सविपाक अविपाक निर्जरा में कौन प्रयोजनीय है ?

संवर युक्त तथा साक्षात मोक्ष का कारण होने से अविपाक

निर्जरा प्रयोजनीय है। सविपाक निर्जरा के साथ नवीन बन्ध होता रहने से वह मोक्षमार्ग में प्रयोजनीय नहीं है।

४१. **सविपाक व अविपाक निर्जरा किनको होती है ?**
स्वकालपाक होने से सविपाक निर्जरा सर्व जीवों को सामान्य रूप से होती रहती है; और तप साध्य होने से अविपाक निर्जरा तपस्वी योगियों व साधकों को ही होती है।

४२. **मोक्ष तत्व किसको कहते हैं ?**
कर्मों के सम्पूर्णतया छूट जाने को मोक्ष कहते हैं।

४३. **मोक्ष कितने प्रकार की होती है ?**
दो प्रकार की—भाव मोक्ष, द्रव्य मोक्ष।

४४. **भाव मोक्ष किसको कहते हैं ?**
जीव के रागद्वेषादि भाव कर्मों से या वासनाओं से मुक्त हो जाने को भाव मोक्ष कहते हैं। इसे जीवन मुक्ति भी कहते हैं।

४५. **द्रव्य मोक्ष किसको कहते हैं ?**
भाव मोक्ष के निमित्त से द्रव्य कर्म व नोकर्म का जीव से पृथक हो जाना द्रव्य मोक्ष है। इसे विदेह मुक्ति भी कहते हैं।

४६. **द्रव्य व भाव मोक्ष किनको होती है ?**
भाव मोक्ष तेरहवें गुणस्थानवर्ती अर्हंत भगवान को होती है और द्रव्य मोक्ष चौदहवें गुणस्थान के अन्त में सिद्ध लोक में जा विराजने वाले सिद्ध भगवन्तों को होती है।

४७. **पदार्थ कितने हैं ?**
नौ हैं—सात तो उपरोक्त तत्व तथा पुण्य, पाप।

४८. **पुण्य किसको कहते हैं ?**
शुभ कर्म को पुण्य कहते हैं।

४९. **पुण्य कितने प्रकार का होता है ?**
दो प्रकार का—भाव पुण्य और द्रव्य पुण्य।

५०. **भाव पुण्य किसे कहते हैं ?**
जीव की मन वचन काय की शुभ प्रवृत्ति को भाव पुण्य कहते हैं।

५१. भाव पुण्य रूप वह शुभ प्रवृत्ति कैसी होती है ?
दया, दान, शील, संयम, तप, उपवास, पूजा, भक्ति आदि अनेक प्रकार की है ।

५२. द्रव्य पुण्य किसको कहते हैं ?
भाव पुण्य के निमित्त से बन्धने वाली द्रव्य कर्मों की प्रशस्त प्रकृतियें द्रव्य पुण्य कहलाती हैं । (देखो अध्याय ३)

५३. पाप किसको कहते हैं ?
अशुभ कर्म को पाप कहते हैं ।

५४. पाप कितने प्रकार का है ?
दो प्रकार का—भाव पाप व द्रव्य पाप ।

५५. भाव पाप किसको कहते हैं ?
जीव के मन वचन व काय की अशुभ प्रवृत्ति को भाव पाप कहते हैं ।

५६. भाव पाप रूप वह अशुभ प्रवृत्ति कौन सी है ?
पांच हैं—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ।

५७. द्रव्य पाप किसको कहते हैं ?
भाव पाप के निमित्त से बन्धने वाली द्रव्य कर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियें द्रव्य पाप कहलाती हैं । (देखो अध्याय ३)

५८. सातों तत्वों में पुण्य पाप क्यों नहीं कहा ?
वहां इनको आस्रव व बन्ध तत्वों में गर्भित कर दिया गया है ।

५९ तत्व व पदार्थ में क्या अन्तर है ?
कोई विशेष अन्तर नहीं; केवल पुण्य पाप की विशेषता बताने के लिये सात तत्वों में पुण्य पाप का पृथक से ग्रहण कर लिया गया है ।

६०. पुण्य पाप को पृथक से दर्शाने की क्या आवश्यकता है ?
क्योंकि पुण्य व पाप ही इस लोक में सर्वत्र प्रधान है ।

६१. जीव व अजीव ये दोनों पदार्थ द्रव्य के भेदों में भी गिनाए गए और तत्वों में भी ।
द्रव्य के प्रकरण में जीव व अजीव का अर्थ प्रदेशात्मक आकृति

वाले जीव व अजीव विवक्षित जो कि अपने अपने गुणों के आश्रयभूत हैं, और तत्वों के प्रकरण में भावात्मक जीव व अजीव विवक्षित हैं। द्रव्य के प्रकरण में राग द्वेषादि जीव रूप हैं और तत्व के प्रकरण में वही अजीव रूप हैं।

६२. **आस्रवादि तत्वों के भाव व द्रव्य दो भेद करने का क्या प्रयोजन है** ?
आस्रवादि जीव रूप भी होते हैं और अजीव रूप भी यही बताने के लिये।

६३. **आस्रवादि सर्व तत्व जीव व अजीव रूप कैसे होते हैं** ?
सात तत्वों में पहिले दो जीव व अजीव मूल तत्व होने से सामान्य हैं। इन दोनों के संयोग व वियोग के कारण ही अगले पांच तत्व अथवा सात पदार्थ बन जाते हैं। इस लिये वे सब इन्हीं दोनों के विशेष या पर्याय हैं। तहां भावास्रव, भावबन्ध, भाव संवर, भाव निर्जरा, भाव मोक्ष, भावपुण्य और भाव पाप तो जीव के विशेष हैं, और द्रव्य आस्रवादि सब अजीव के विशेष हैं।

६४. **आस्रवादि स्वयं जीव व अजीव के विशेष होने से जीव व अजीव दो ही तत्व कहना पर्याप्त था** ?
यह कोई दोष नहीं है। यहाँ मोक्ष मार्ग के प्रकरण में जीव व अजीव की जिन विशेषताओं को जानना अत्यन्त प्रयोजनीय है, उनको दर्शाने के लिये ही वे विशेष पृथक से ग्रहण किये गये हैं। संक्षेप से कहने पर तो ही दो ही तत्व हैं—जीव व अजीव।

६५. **इन सात तत्वों की सत्ता किसमें पाई जाती** है ?
जीव व पुद्गल इन दो द्रव्यों में पाई जाती है।

६६. **जीव में सात तत्वों की सत्ता कैसे पाई जाती** है ?
मैं चेतन लक्षण अन्तस्तत्व जीव हूँ। यह शरीर तथा इसके साधक बाधक सब बहिर्तत्व अजीव हैं। यद्यपि धन धान्यादि सभी बहिः तत्व अजीव हैं, फिर भी इनमें मेरे तेरे पने की अथवा

इष्टानिष्टपने की बुद्धि तथा इनमें ही रुचि लगे रहना मेरी मिथ्या दृष्टि है। इस मिथ्या दृष्टि के कारण ही मैं नित्य इनके प्रति ही मन वचन व काय द्वारा अपनी समस्त शक्ति को प्रवृत्त करता रहता हूँ, यही आस्रव तत्व है। पुनः पुनः प्रवृत्ति करने के कारण तज्जन्य रागादि के संस्कार अन्दर ही अन्दर बराबर दृढ़ होते जा रहे हैं, जो पुनः पुनः मुझे उनके प्रति ही प्रवृत्त होने को उकसाते रहते हैं; वे संस्कार या वासनायें ही बन्ध तत्व हैं।

वीतरागी गुरुओं का उपदेश सुनने से अपनी इस भारी भूल को जान लेने पर मैं अवश्य ही अपनी इस मन वचन काय की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को रोकने के प्रति सतत प्रयत रहता हूँ, यही संवर तत्व है। इस प्रवृत्ति रूप आस्रव में कमी पड़ने के कारण अन्तरंग में कुछ निराकुलता का आभास होने लगता है, जिससे आकर्षित होकर मैं अधिकाधिक शक्ति को निराकुलता के लिये प्रयुक्त करता हूँ। यथाशक्ति अनशनादि बाह्य तप तथा ध्यान आदि अभ्यन्तर तप करता हूँ, जिनके कारण उन दृढ़ व पुष्ट संस्कारों व वासनाओं की शक्ति क्षीण होती जाती है, और इधर आत्मबल बढ़ता जाता है; यही निर्जरा तत्व है। धीरे धीरे संस्कार नष्ट हो जाते हैं और आत्मा की ज्ञानानन्द आदि शक्तियें पूर्णविकसित हो कर खिलखिलाने लगती हैं, यही मोक्ष तत्व है। इस प्रकार जीव में सर्व आस्रवादि के भावात्मक विकल्प प्रत्यक्ष अनुभव किये जा सकते हैं।

६७. अजीव में सात तत्वों की सत्ता कैसे देखी जाये?

कर्म और नोकर्म वर्गणायें अजीव तत्व हैं। जीव के रागादि रूप भावास्रव का निमित्त पाकर वह जीव प्रदेशों के प्रति आकर्षित होती हैं; यही आस्रव तत्व है। आने के पश्चात वह जीव प्रदेशों के साथ बन्धकर अष्ट कर्म व शरीर का निर्माण करता

है, यही बन्ध तत्व है। जीव के निर्मल परिणामों रूप भाव संवर के निमित्त से उनका आगमन रुक जाता है, जिससे कर्म संग्रह की वृद्धि रुक जाती है, यही संवर तत्व है। तत्पश्चात जीव के भाव निर्जरा रूप तप के प्रभाव से संचित पूर्व कर्म भी अपने काल से पहिले ही उदय आ आकर झड़ने लगते हैं, यही निर्जरा तत्व है। अन्त में जीव के भावमोक्ष के निमित्त से समस्त कर्म व शरीर भी पूर्णरूपेण उस जीव का साथ छोड़कर अपने अपने कारणों में लय हो जाते हैं, यही मोक्ष तत्व है। इस प्रकार सातों तत्वों के द्रव्यात्मक विकल्प अजीव तत्व में घटित होते हैं।

२ रत्नत्रयाधिकार

(१ धर्म)

१. धर्म किसको कहते हैं ?

जो संसार के जीवों को दुःखों से निकालकर उत्तम जो मोक्ष सुख उसमें धरदे, उसे धर्म कहते हैं; अथवा वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं।

२. धर्म के दोनों लक्षणों का समन्वय करो।

'वस्तु' शब्द से यहां आत्मा नामक वस्तु का ग्रहण करने पर उसका स्वभाव सच्चिदानन्द है। चिदानन्द की प्राप्ति ही मोक्ष शब्द वाच्य है। उसे प्राप्त करने के उपाय को धर्म कहते हैं।

३. आनन्द या मोक्ष की प्राप्ति का उपाय क्या है ?

रत्नत्रय।

४. रत्नत्रय किसको कहते हैं ?

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं।

(२. सम्यग्दर्शन)

५. दर्शन किसको कहते हैं ?

श्रद्धा, रुचि या प्रतीति रूप अन्तरंग के सामान्य अवलोकन को दर्शन कहते हैं।

६. दर्शन कितने प्रकार का होता है !

दो प्रकार का—सम्यक् व मिथ्या।

७. मिथ्यादर्शन किसको कहते हैं ?
तत्वों की या आत्मा के स्वरूप की विपरीत श्रद्धा या प्रतीति अथवा धारणा मिथ्यादर्शन है।

८. विपरीत श्रद्धा से क्या तात्पर्य ?
शरीर को ही अपना स्वरूप समझते हुए, इसी के जन्म मरण को अपना जन्म मरण अथवा इसी की साधक बाधक बाह्य साधन सामग्री को अपनी साधक वाधक मानना विपरीत श्रद्धा है।

९. सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं ?
सातों तत्वों में अथवा आत्मा के स्वरूप में सच्ची श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

१०. सच्ची श्रद्धा से क्या समझें ?
मैं चेतन स्वरूप अमूर्तीक व अविनाशी आत्मा हूं, शरीर नहीं। शरीर के जन्म मरण आदि से मेरा जन्म मरण नहीं होता। शरीर के सुख दुख या विघ्न बाधा से मुझे सुख दुख या विघ्न बाधा नहीं होती। शरीर की प्रत्येक अवस्था में मैं तो नित्य टंकोत्कीर्ण एक मात्र ज्ञायक भाव से स्थित रहता हूँ। ऐसी दृढ़ता को सच्ची श्रद्धा कहते हैं।

११. सम्यग्दर्शन कितने प्रकार का है ?
दो प्रकार का—निश्चय व व्यवहार।

१२. व्यवहार सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं ?
सच्चे वीतरागी देव, तन्मुख विनिर्गत उपदेश व तन्मार्गानुगामी वीतरागी गुरु पर एकनिष्ठ श्रद्धा व भक्ति को अथवा पूर्वोक्त सात तत्वों पर दृढ़ आस्था को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

१३. निश्चय सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं ?
शुद्धात्म की दृष्टि, अभिप्राय, रुचि, प्रतीति व श्रद्धा का होना निश्चय सम्यग्दर्शन है।

१४. सम्यग्दर्शन के निश्चय व्यवहार भेदों का क्या प्रयोजन ?
देव गुरु आदि के संसर्ग अथवा सात तत्वों में स्व पर का या

हेयोपादेय का भेद करके कथन किया गया है इसलिये व्यवहार है, और अखण्ड व निर्विकल्प एक आत्म तत्व का कथन किया गया है, इसलिये निश्चय/पहला पराश्रय जनित विकल्प होने से व्यवहार और दूसरा निज स्वरूप होने से निश्चय है।

१५. शास्त्रों में निश्चय सम्यग्दर्शन पर ही जोर क्यों दिया गया ?
क्योंकि स्व स्वरूप होने से साक्षात रूप से मोक्षमार्ग में वही कार्यकारी है।

१६. फिर व्यवहार सम्यग्दर्शन की आवश्यकता ही क्या थी ?
क्योंकि व्यवहार के बिना निश्चय सम्यग्दर्शन व प्राथमिक जनों को बताया जा सकता, न अभ्यास में लाकर प्राप्त किया जा सकता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन है और निश्चय साध्य।

१७. दोनों सम्यग्दर्शनों में साधन साध्य भाव क्या है ?
प्राथमिक अनिष्णात व्यक्ति को पहले स्थूल रूप से मन्दिर में आने तथा देव शास्त्र व गुरु की अन्धश्रद्धा करने के लिये कहा जाता है। उन पर आस्था टिक जाने के पश्चात शास्त्र पढ़कर सात तत्व समझने के लिये कहा जाता है। सात तत्वों का शाब्दिक अर्थ समझ लेने के पश्चात उनका रहस्यार्थ ग्रहण करने को कहा जाता है, अर्थात उन्हें अपने जीवन में खोजकर उनका स्व-पर विभाग देखने को कहा जाता है। स्व-पर का विवेक हो जाने पर ही वह स्वानुभव करने को सफल हो सकता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार व्यवहार सम्यग्दर्शन के तीनों लक्षण उत्तरोत्तर एक दूसरे के साधन होते हुए अन्त में निश्चय सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करते हैं।

१८. आगम में सम्यग्दर्शन के कितने लक्षण प्रसिद्ध हैं ?
चार लक्षण प्रसिद्ध हैं—

(क) सच्चे देव शास्त्र व गुरु पर दृढ़ श्रद्धा होना।
(ख) सात तत्वों या नव पदार्थों का श्रद्धान।
(ग) स्व-पर भेद विज्ञान या स्व-पर में विवेक।

(घ) स्वानुभव या आत्म प्रतीति ।

१६. सम्यग्दर्शन के चारों लक्षणों का समन्वय करो।

सच्चा देव शुद्ध क्षायिक भाव होने से मोक्ष स्वरूप है, सच्चे गुरु आस्रव बन्ध का निरोध तथा संवर निर्जराकी प्रतिमूर्ति हैं। शस्त्र रत्नत्रयरूप सच्चे धर्म का अधिष्ठान है। 'सच्चा धर्म' अजीव, आस्रव, बन्धन इन तत्वों से हटकर, जीव संवर निर्जरा इन तीन तत्वों की ओर झुकने का नाम है। उसका फल मोक्ष है। अतः सच्चे देव शास्त्र व गुरु की श्रद्धा व सात तत्वों की श्रद्धा एक ही बात है।

सात तत्वों में जीव, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये चार तत्व आत्म स्वभाव के अनुकूल तथा अन्तर्प्रकाश वर्धक होने से स्वतत्व हैं, और अजीव, आस्रव व बन्ध ये तीन तत्व आत्मस्वभाव से विपरीत तथा अन्दर में अन्धकार वर्धक होने से पर-तत्व हैं। अतः सप्ततत्व श्रद्धा व स्व-पर भेद विज्ञान एक ही है।

स्व-पर भेद विज्ञान का प्रयोजन पर से हटकर स्व में लगना है। वही स्वानुभव का साक्षात उपाय है। अतः ये दोनों भी एक ही हैं।

२०. सम्यग्दर्शन की व्याख्या में कितने शब्दों का प्रयोग किया जाता है?

पांच शब्दों का—दृष्टि, अभिप्राय, रुचि, प्रतीति, श्रद्धा।

२१. दृष्टि किसको कहते हैं?

व्यक्ति के लक्ष्य विशेष को दृष्टि कहते हैं। जिस प्रकार बम्बई जाने वाले का लक्ष्य 'बम्बई' है, बीच के स्टेशन नहीं; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का लक्ष्य नित्य टंकोत्कीर्ण शुद्धात्मा रूप एक मात्र ज्ञायक भाव है, शरीर अथवा अन्य कोई भी प्रयोजन नहीं। इसके अतिरिक्त उसकी दृष्टि में सब कुछ असत् है।

२२. अभिप्राय किसको कहते हैं?

कोई कार्य करने में व्यक्ति का जो प्रयोजन होता है, उसे अभि-

प्राय कहते हैं। जिस प्रकार खेती करने में किसान का अभिप्राय धान्य प्राप्ति है, भूसा नहीं, भले ही भूसा स्वतः प्राप्त हो जाये उसी प्रकार प्रत्येक धार्मिक क्रिया करने में सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन ज्ञायक भाव की प्रतीति करना है, पुण्यादि नहीं, भले ही पुण्य स्वतः प्राप्त हो जाये।

२३. रुचि किसको कहते हैं?

अन्तरंग से कोई कार्य विशेष करने की प्रेरणा को रुचि कहते हैं। जिस बात की रुचि होती है, उसके लिये अवश्य ही भरसक प्रयत्न किया जाता है। जिस प्रकार लौकिक व्यक्तियों को धन कमाने की रुचि है और इसलिये वे उसे प्राप्त करने को नित्य अथक परिश्रम करते हैं; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को शुद्धात्म-प्राप्ति की या ज्ञाय भाव निष्ठा की रुचि है और इसलिये वह उसे प्राप्त करने को नित्य अथक परिश्रम व तपश्चरण करता है।

२४. प्रतीति किसको कहते हैं?

अन्तरंग में अनुभव करने को प्रतीति कहते हैं। अनुभव भी इसी का नाम है। जिस प्रकार किसान को हरा भरा खेत देखकर हर्ष की प्रतीति होती है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को आत्मदर्शन में अपूर्व आल्हाद व आनन्द की प्रतीति होती है। उसे ही शुद्धात्मानुभूति आत्मदर्शन कहा जाता है।

२५. श्रद्धा किसको कहते हैं?

'यह ही बात ठीक है, यह तीन काल में भी अन्यथा हो नहीं सकती' ऐसी दृढ़ आस्था को श्रद्धा कहते हैं। जिस प्रकार लौकिक व्यक्तियों को 'विषय भोगों में ही सुख है' ऐसी श्रद्धा होती है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को 'शुद्ध ज्ञायक भाव ही स्वयं आनन्द स्वरूप है, उसे आनन्द या सुख के लिये किसी भी बाह्य विषय का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं' ऐसी श्रद्धा होती है।

२६. दृष्टि, अभिप्राय, रुचि, प्रतीति व श्रद्धा इन पांचों का समन्वय करो।

जिस ओर लक्ष्य या दृष्टि होती है, उसी को प्राप्त करने की रुचि होती है, उसी की प्राप्ति के अभिप्राय से यथा योग्य व्यापार या क्रिया की जाती है। जैसी क्रिया की जाती है उसके फल स्वरूप वैसी ही प्रतीति होती है, और उसी पर दृढ़ श्रद्धा होती है। इस प्रकार ये पांचों उत्तरोत्तर एक दूसरे के पूरक हैं।

२७. सम्यग्दर्शन के प्रकरण में दृष्टि आदि पांचों का महत्व क्या है ?

किसी व्यक्ति को सम्यग्दर्शन है यह बात तब कही जा सकती है जबकि उसकी दृष्टि या लक्ष्य एकमात्र शुद्धात्मा पर हो, उसके अतिरिक्त सब कुछ असत् भासता हो। रुचि भी उसेउसी परमतत्व को प्राप्त करने की हो, शुद्धात्मा की प्राप्ति के अभिप्राय से यथाशक्ति कुछ न कुछ आचरण भी अवश्य करता हो, अन्तरंग में शुद्धात्मा की साक्षात प्रतीति भी कदाचित होती हो, और 'यही शुद्धात्मा का स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति का उपाय है, अन्य नहीं' ऐसी दृढ़ आस्था हो।

२८. दृष्टि रुचि आदि पांचों की परीक्षा किस बात से होती है ?

व्यक्ति की मन वचन काय की क्रियाओं व आचरण पर से होती है। किसी व्यक्ति का आचरण भोग विलास में फंसा हुआ हो अथवा स्वच्छन्दाचारी हो और मन में समझता रहे कि मुझे शुद्धात्मा की रुचि है तो उसका भ्रम है।

२९. भगवान व सम्यग्दृष्टि में किसका सम्यग्दर्शन बड़ा है ?

सम्यग्दर्शन एक सामान्य गुण है। इसमें तरतमता नहीं होती, चारित्र में होती है। जिस प्रकार गरीब व अमीर सभी व्यक्तियों में धन की रुचि समान है, भले ही उनके पास धन हीन हो या अधिक; उसी प्रकार भगवान व साधारण सम्यग्दृष्टियों में आत्मा की रुचि समान है, भले उनमें स्थिरता व तत्कृत आनन्द अधिक व हीन हो।

३०. इसे सम्यग्श्रद्धा की बजाये सम्यग्दर्शन क्यों कहा ?

सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा का सामान्य प्रतिभास है, यह बताने के लिये 'दर्शन' शब्द का प्रयोग ही युक्त है। श्रद्धा कहने से अतिव्याप्ति होने का भय है, क्योंकि लोक में सभी व्यक्तियों को कोई न कोई श्रद्धा तो है ही।

३१. सम्यग्दर्शन की पहचान कैसे हो ?

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों पर से सम्यग्दर्शन की पहचान होती है।

३२. सम्यग्दर्शन के आठ अंग कौन से हैं ?

निःशंकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन या उपवृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना।

३३. निःशंकित अंग किसको कहते हैं ?

तत्वों में संशय या शंका न करना, तथा अपने अखण्ड ज्ञायक स्वरूप पर निश्चल श्रद्धा रखते हुए जन्म मरण रोग आदि के भय न करना। उनमें पहिला व्यवहार निःशंकित गुण है और दूसरा निश्चय।

३४. निष्कांक्षित गुण किसको कहते हैं ?

इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी भोगों की आकांक्षा न करना व्यवहार है; तथा निज स्वरूप के अतिरिक्त सब कुछ असत् दीखना निश्चय है।

३५. निर्विचिकित्सा गुण किसको कहते हैं ?

धर्मी जीवों व साधुओं का शरीर प्रारब्धवश अत्यन्त ग्लानि युक्त हो जाने पर भी उनसे घृणा न करना बल्कि उनकी सेवा को सदा उद्यत रहना व्यवहार है; और वस्तु स्वरूप पर लक्ष्य टिकाने के कारण किसी भी पदार्थ से ग्लानि न करना निश्चय है।

३६. अमढ़ दृष्टि किसको कहते हैं ?

लौकिक चमत्कारों को देखकर, अथवा भय लज्जा गौरव या अन्य किसी कारण से वीतराग मार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्ग

की ओर न झुकना व्यवहार है, और वस्तु के नित्य टंकोत्कीर्ण स्वभाव के अतिरिक्त सभी असत् पदार्थों की इच्छा न करना निश्चय है।

३७. उपगूहन या उपवृंहण गुण किसको कहते हैं ?

दूसरे के दोष छिपाना व गुण प्रगट करना, इसके विपरीत अपने गुण छिपाना व दोष प्रगट करना उपगूहन गुण या व्यवहार है। अपने आन्तरिक स्वभाव के प्रति अधिकाधिक बहुमान जागृत करके उसमें अधिकाधिक निष्ठ होते जाना उपवृंहण या निश्चय है।

३८. स्थितिकरण गुण किसको कहते हैं ?

किसी कारणवश कोई व्यक्ति वीतराग धर्म से गिरता हो तो तन मन धन से उसकी सहायता करके उसे धर्म पर टिकाना व्यवहार है; और कर्मोदयवश कुछ दोष लग जाने पर स्वयं को पुनः प्रायश्चित्तादि लेकर सन्मार्ग में टिकाना निश्चय है। अथवा उपयोग को पुनः पुनः बाहर से लौटाकर अन्तस्तत्व में स्थित करना निश्चय है।

३९. वात्सल्य गुण किसको कहते हैं ?

अन्य सम्यग्दृष्टि या धर्मात्मा व्यक्ति को देखकर अन्दर से हृदय खिल उठना व्यवहार है और निज शुद्धस्वरूप का साक्षात दर्शन होने पर अपने को कृतकृत्य मानना निश्चय है।

४०. प्रभावना गुण किसको कहते हैं ?

जिस किसी प्रकार भी वीतराग धर्म का प्रचार व प्रसार करना व्यवहार है; और निज शुद्धात्मानुभूति जनित आनन्द से सदा स्वयं प्रभावित रहते हुए अन्य किसी भी पदार्थ के प्रभाव में न आना निश्चय है।

४१. 'मैं तो धर्म शंका नहीं करूंगा अथवा पुण्य की आकांक्षा नहीं करूंगा' इस प्रकार कृत्रिम गुणों को पालने वाला सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि ?

वह मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि भले ही बाहर में प्रगट न करे

परन्तु उसके अन्तरंग में तो शंका व आकांक्षा है ही।

४२. सम्यग्दृष्टि की कुछ अन्य भी पिछान है क्या ?

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा व आस्तिक्य ये चार गुण भी सम्यग्दृष्टि में सहज होते हैं।

४३. प्रशम आदि गुण कैसे होते हैं ?

कषायों की अति मन्दता प्रशम गुण है; संसार व भोगों से डर लगना संवेग अथवा भोगों से विरक्त रहना निर्वेद है, दुखियों को देखकर स्वयं हृदय आद्रित हो जाना अनुकम्पा है तथा निज अन्तस्तत्व के अस्तित्व का निश्चय रहना आस्तिक्य है।

४४. कृत्रिम रूप से इन आठ या चार गुणों को प्रगट करने के लिये जो धर्मियों की सेवा अथवा प्रभावना आदि करता है, वह क्या है ?

वह मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि उसे कृत्रिमता करनी पड़ती है।

४५. ये सभी गुण सम्यग्दृष्टि में किस प्रकार होते हैं ?

उसमें ये गुण स्वाभाविक होते हैं, कृत्रिम नहीं। सम्यग्दृष्टि का ऐसा स्वभाव सहज ही होता है और इसलिये बिना किये ही उसमें ये सब लक्षण प्रगट रहते हैं।

४६. क्या ये गुण मिथ्यादृष्टि में नहीं होते ?

मिथ्यादृष्टि में भी कदाचित इनमें से एक दो अथवा सारे ही होने सम्भव हैं, परन्तु प्राय: करके अविकल रूप से सम्यग्दृष्टि में ही पाये जाते हैं।

४७ तब सम्यग्दृष्टि व सम्यग्दृष्टि की क्या विशेषता ?

ये सब गुण व्यवहार लक्षण हैं, इसलिये इनके द्वारा सम्यक्त्व की ठीक पिछान नहीं होती। उसकी यथार्थ पिछान तो आनन्दानुभूति है और स्वयं उसे ही होती है परीक्षक को नहीं। अत: परीक्षक के लिये तो इन व्यवहार लक्षणों पर से अनुमान लगाना ही एक मात्र उपाय है।

(३ सम्यग्ज्ञान)

४८. सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं ?

शुद्धात्मा के विशेष प्रतिभास को, अथवा सात तत्वों के विशेष परिज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

४९. सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान में क्या अन्तर है ?

सामान्य व विशेष का अन्तर है। जैसे दर्शनोपयोग सामान्य प्रतिभास है और 'ज्ञानोपयोग' विशेष प्रतिभास है वैसे ही सम्यग्दर्शन का विषय शुद्धात्मा तथा सात तत्वों का सामान्य स्वरूप है और सम्यग्ज्ञान का विषय उन्हीं का विशेष ग्रहण है।

५०. क्या ज्ञान भी सम्यक् व मिथ्या होता है ?

वास्तव में ज्ञान कभी सम्यक् मिथ्या नहीं होता। अभिप्राय के सम्यक् व मिथ्यापने से वह सम्यक् व मिथ्या कहाता है।

५१. सम्यग्दृष्टि ने अन्धेरे में रस्सी को सांप समझा और मिथ्या दृष्टि ने उसे रस्सी ही समझा। किसका ज्ञान सम्यक् ?

ज्ञान तो सम्यग्दृष्टि का ही सम्यक् है; क्योंकि यहां मोक्ष मार्ग में शुद्धात्मा का ज्ञान ही इष्ट है। अन्य विषयों को जानो अथवा न जानो, ठीक जानो या विपरीत जानो, हीन जानो या अधिक जानो उससे सम्यग्ज्ञान का सम्बन्ध नहीं। सम्यग्दृष्टि रस्सी को सर्प जानता हुआ भी अपने शुद्ध स्वरूप को उससे सर्वथा अस्पृष्ट समझता रहता है और मिथ्यादृष्टि रस्सी को रस्सी जानता हुआ भी उसे अपने लिये इष्ट अनिष्ट समझता है।

५२. सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन का क्या सम्बन्ध है ?

सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर अभिप्राय ठीक हो जाने के कारण पहले वाला ज्ञान ही सम्यक् संज्ञा को प्राप्त हो जाता है, कोई नया ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

५३. सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान में पहले कौन होता है ?

दोनों युगपत होते हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन हो जाने पर ज्ञान का विशेषण ही बदलता है, उसकी तरतमता में अन्तर नहीं पड़ता।

५४. जो वस्तु जानी जा चुकी है उसी की श्रद्धा की जाती है, इसलिए सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन होना चाहिये ।

यह बात ठीक है कि सम्यग्दर्शन से पहिले सात तत्वों का ज्ञान होना आवश्यक है, परन्तु वह ज्ञान उस समय तक सम्यक् विशेषण को प्राप्त नहीं होता जब तक कि सम्यग्दर्शन न हो जाये । इसीलिये उनकी उत्पत्ति युगपत बताई है ।

५५. सम्यग्ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—व्यवहार व निश्चय ।

५६. व्यवहार सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं ?

शास्त्रों के शाब्दिक ज्ञान को द्रव्य या व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।

५७. निश्चय सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं ?

शास्त्रों के वाच्य उस रहस्यात्मक शुद्धात्म तत्व का साक्षात ज्ञान हो जाना भाव या निश्चय सम्यग्ज्ञान है ।

५८. व्यवहार व निश्चय सम्यग्ज्ञान का समन्वय करो ।

प्रतिपादन की अपेक्षा ही दोनों में भेद है, स्वरूप की अपेक्षा नहीं । शास्त्र का आश्रय लेकर कहा गया है इसलिये व्यवहार और वाच्यभूत पदार्थाकार ज्ञान को ही ज्ञान कहा गया है इसलिये निश्चय है ।

५९. दोनों में सच्चा कौन ?

वास्तव में निश्चय ज्ञान ही सच्चा है, क्योंकि व्यवहार ज्ञान तो शाब्दिक है ।

६०. फिर व्यवहार को ज्ञान क्यों कहा ?

बिना व्यवहार ज्ञान के अर्थात बिना शास्त्र पढ़े सुने निश्चय भावात्मक ज्ञान सम्भव नहीं, इसलिये व्यवहार ज्ञान साधन है और निश्चय साध्य ।

६१. शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने का क्या उपाय ?

सम्यग्ज्ञान के आठ अगों का पालन करने से शास्त्र ज्ञान सुलभ हो जाता है ।

६२. सम्यग्ज्ञान के आठ अंग कौन से हैं ?

१. व्यञ्जनोर्जित अंग, २. अर्थ समग्रांग, ३. तदुभय समग्रांग ३. कालाचारांग, ४. उपाधानाचारांग, ६. विनयाचार, ७. अनिह्नवाचार, ८. बहुमानाचार ।

६३. व्यञ्जनोर्जित अंग किसको कहते हैं ?

स्वर, व्यञ्जन व मात्राओं आदि का शुद्ध उच्चारण करना ।

६४. अर्थ समग्रांग किसको कहते हैं ?

शास्त्र की आवृत्ति मात्र न करके उसका अर्थ समझकर पढ़ना ।

६५. तदुभय समग्रांग किसको कहते हैं ?

अर्थ समझते हुए शुद्ध उच्चारण सहित पढ़ना ।

६६. कालाचारांग किसको कहते हैं ?

शास्त्र पढ़ने के योग्य काल में ही पढ़ना अयोग्य काल में नहीं । सवेर, सांझ व रात्रि के सन्धि कालों में, सूर्य चन्द्र ग्रहण में अथवा विद्रोह आदि के अवसर पर शास्त्र पढ़ना वर्जित है । सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्यान्ह व मध्यरात्रि ये चार सन्धि काल हैं क्योंकि इनमें पूर्व दिन व उत्तर दिन का अथवा पूर्व रात्रि व उत्तर रात्रि का अथवा रात्रि व दिन का अथवा दिन व रात्रि का संयोग होता है ।

६७. उपाधानांग किसको कहते हैं ?

शास्त्र पढ़ते हुए किसी से भी बात न करना, अथवा शास्त्र के अतिरिक्त अन्य लौकिक बातें न करना ।

६८. अनिह्नवांग किसको कहते हैं ?

जिस गुरु से शास्त्र पढ़ा हो उसका नाम कभी न छिपाना, भले आगे जाकर गुरु से भी अधिक ज्ञान क्यों न बढ़ जाये ।

६९. बहुमानांग किसको कहते हैं ?

ज्ञान के प्रति बहुमान व भक्ति रखना । ज्ञान प्राप्ति को अपना बड़ा भारी सौभाग्य मानना ।

(४. सम्यग्चारित्र)

७०. **सम्यग्चारित्र किसको कहते हैं ?**
शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिये प्रवृत्ति या व्यापार करने को सम्यक्चारित्र कहते हैं।

७१. **प्रवृत्ति या व्यापार से क्या समझे ?**
मन वचन व काय की क्रियाओं को प्रवृत्ति या व्यापार कहते है।

७२. **सम्यग्चारित्र कितने प्रकार का है ?**
दो प्रकार का—व्यवहार व निश्चय।

७३. **व्यवहार सम्यक्चारित्र किसको कहते हैं ?**
अशुभ प्रवृत्ति से हटकर शुभ प्रवृत्ति करना व्यवहार चारित्र है।

७४. **अशुभ प्रवृत्ति किसको कहते हैं ?**
हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह संचय आदि पाप तथा क्रोधादि कषाय सब अशुभ प्रवृत्ति है।

७५. **शुभ प्रवृत्ति किसको कहते हैं ?**
व्रत, शील, संयमादि धारण करना, सत्य बोलना, दया दान सेवा करना, सच्चे देव शास्त्र गुरु की विनय भक्ति पूजा आदि करना शुभ है।

७६. **निश्चय चारित्र किसको कहते है ?**
बाह्य क्रिया अर्थात पापों के निरोध से अथवा अभ्यन्तर क्रिया अर्थात योग व कषायों के निरोध से आविर्भूत आत्मा की शुद्धि विशेष निश्चय चारित्र है। इसी को साम्यता, माध्यस्थता व वीतरागता कहते हैं। अथवा शुद्धात्मध्यान में रत रहना निश्चय चारित्र है।

७७. **शुद्धात्मा के ध्यान से क्या होता है ?**
निराकुलता होती है और वही स्वाभाविक आनन्द है।

७८. चारित्र को निश्चय व व्यवहार विशेषण क्यों दिये गए ?

निश्चय अभेद या अद्वैत को कहते हैं और व्यवहार भेद या द्वैत को। ध्यान में जीव की प्रवृत्ति निर्विकल्प तथा आत्म-स्वरूप निमग्न होने के कारण अद्वैत है। इसलिये वह निश्चय कहलाती है। व्रतादि में जीव की प्रवृत्ति व्रतादि धारने के तथा व्रताचार रखने के विकल्पों सहित होती है। इसी कारण आत्म स्वरूप बाह्य होने से द्वैत रूप है। अतः वह व्यवहार कहलाती है।

७९. फिर निश्चय चारित्र ही करना चाहिये व्यवहार से क्या ?

व्यवहार चरित्र के बिना प्रारम्भ में ही निश्चय चारित्र सम्भव नहीं, इसलिये व्यवहार चारित्र साधन हैं और निश्चय चारित्र साध्य।

८०. व्यवहार चारित्र निश्चय का साधन कैसे है ?

इच्छायें व कषायें दूर किये बिना निर्मल आत्मा का ध्यान व अनुभव नहीं हो सकता। इच्छायें व कषायें विषय भोगों के त्याग बिना रुक नहीं सकतीं। विषय भोग वैराग्य बिना त्यागे नहीं जा सकते। वैराग्य प्राप्ति के अभ्यासार्थ वीतराग देव शास्त्र गुरु का आश्रय भक्ति सेवा आदि करना तथा उनके उपदेश आदि सुनना आवश्यक हैं। इसलिये व्यवहार चारित्र निश्चय का साधन है।

८१. चारित्र कितने प्रकार का है ?

चार का प्रकार है—स्वरूपाचरण चारित्र, देशचारित्र, सकल चारित्र, यथाख्यात चारित्र।

८२. इन चार चारित्रों में निश्चय चारित्रों कौन सा है ?

यथाख्यात चारित्र निश्चय चारित्र है।

८३. स्वरूपाचरण भी तो निश्चय चारित्र है ?

स्वरूपाचरण सामान्य है और यथाख्यात उसका विशेष। स्वरूपाचरण के पूर्व विकास का नाम ही यथाख्यात है।

८४. क्या स्वरूपाचरण भी पूर्ण व अपूर्ण होता है ?

हाँ, क्योंकि सामान्य अपने विशेषों को छोड़कर नहीं वर्तता। चौथे गुण स्थान में इसका सर्वप्रथम प्रारम्भिक अंश प्रगट होता है, जो अत्यन्त तुच्छ शक्ति वाला है। गुण स्थान परिपाटी के अनुसार उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता हुआ अन्त में कषायों के सर्वथा अभाव हो जाने पर १२ वें गुण स्थान में पूर्ण व्यक्त हो जाता है।

८५. क्या चारित्र प्राप्त करने में कोई क्रम पड़ता है ?

हां, सम्यग्दर्शन तो एक दम हो जाता है परन्तु चारित्र में गुण स्थान का क्रम पड़ता है; क्योंकि यह धीरे-धीरे वृद्धि को पाता हुआ वृक्षवत् बहुत काल पश्चात् पूर्णता को प्राप्त होता है।

८६. चारित्र की पूर्णता का क्या क्रम है ?

सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाने पर जीव पहले गुण स्थान से एकदम चौथे गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है अर्थात मिथ्या दृष्टि से एकदम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यहां उसको चारित्र का अत्यन्त तुच्छ अंश प्रगट होता है। अव्रत सम्यग्दृष्टि का यह चारित्र व्रतादि रूप परिणत न होने के कारण बाहर में व्यक्त नहीं हो पाता। वह अन्दर ही अन्दर भोगों आदि से हटकर व्रत आदि धारने की भावना करता रहता है। गृहस्थ के कारण लौकिक व्यापार व्यवहार करने में जो उसके द्वारा नित्य पाप होते हैं अथवा कषाय जागृत होती हैं, उनके लिये वह अन्दर ही अन्दर अपने को धिक्कारता रहता है, अपनी निन्दा करता रहता है। यही स्वरूपाचरण का प्रारम्भिक अंश है क्योंकि बिना स्वरूप के प्रति झुके दोषों की यथार्थ प्रतीति सम्भव नहीं। ऐसा यह प्रारम्भिक अन्तरंग चारित्र सम्यग्दर्शन के साथ ही साथ उत्पन्न हो जाता है अर्थात उसका अविनाभावी है।

आगे दिनों दिन वैराग्य का अंश बढ़ते रहने से वह पंचम गुण-

स्थान में पदार्पण करता है, जिसमें वह अणुव्रत आदि रूप से श्रावक का देश चारित्र ग्रहण कर लेता है। अन्तरंग में सामायिक व ध्यान द्वारा स्वरूप में किंचित स्थिरता का अभ्यास करके उसे पहले वाले स्वरूपाचरण चारित्र का सिञ्चन करता रहता है। यहाँ आकर उसके स्थूल लक्षण कुछ कुछ व्यक्त होते हैं।

वैराग्य और भी बढ़ जाने पर समस्त परिग्रह को छोड़कर नग्न दिगम्बर यथाजात रूप धर छटे गुणस्थान में प्रवेश करता है। बाहर का समस्त त्याग हो जाने से महाव्रत रूप सफल चारित्र नाम पाता है। अन्तरंग में वह स्वरूप स्थिरता रूप साम्यतामें अधिकाधिक टिके रहने का प्रयत्न करता है। कदाचित निर्विकल्पता का अनुभव करने लगता है तब सातवाँ गुणस्थान कहलाता है। पुनः धर्मोपदेश आ जाने पर पुनः छठा गुण स्थान कहलाता है। इस प्रकार हजारों बार छटे से सातवें में और सातवें से छटे आता हुआ उतार चढ़ाव के झूले में झूलता रहता है।

कदाचित चित्त स्थिर हो जाये तो उसे चारित्र की श्रेणी पर चढ़ा हुआ कहा जाता है। यहाँ बुद्धि पूर्वक कोई भी राग या विकल्पादिक नहीं होते, फिर भी अन्दर में अबुद्धि पूर्वक विकल्प आते जाते रहते हैं। स्वरूपाचरण की इस अत्यन्त वृद्धिगत अवस्था का नाम शुक्ल ध्यान है। इस श्रेणी के अन्तर्गत तीन गुणस्थान हैं आठवाँ, नवमाँ, व दशवाँ। इन तीनों गुण-स्थानों में उत्तरोत्तर अबुद्धिपूर्वक वाले विकल्प भी नष्ट होते जाते हैं और साथ-साथ स्वरूपाचरण (स्वरूप स्थिति) बढ़ता जाता है। दशवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्मातिसूक्ष्म विकल्प या राग भी निःशेष हो जाता है।

अब वह ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है, जहाँ उसमें स्वरूपाचरण के परिपूर्ण अंश प्रगट होते हैं, यही

यथाख्यात संज्ञा को धारण कर लेता है। इस प्रकार चारित्र पूरा होने में एक लम्बा क्रम है, जिसके बीच में साधक को पूजा, भक्ति, शील, संयम, तप, उपवास, सामायिक ध्यान आदि अनेक बातों का अभ्यास व प्रवृत्ति करनी पड़ती है।

८७. **व्यवहार व निश्चय चारित्र का समन्वय करो।**

व्यवहार चारित्र बाह्य की व्रतादि शुभ क्रियाओं को कहते हैं और निश्चय चारित्र अन्तरंग के स्वरूपाचरण को। इन दोनों की दो अवस्थायें होती हैं—एक मिथ्यादृष्टि में, दूसरी सम्यग्-दृष्टि में। मिथ्यादृष्टि में तो पहिले शुष्क व्यवहार क्रियायें होती हैं, पीछे उसके निमित्त से कदाचित विरक्त चित्त हो जाये तो सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, अथवा नहीं भी होता है। सम्यक्त्व होने से पहिले वह चारित्र आगामी समीचीनता की सम्भावना के उपचार से सम्यक्चारित्र कहा जाता है, वास्तव में वह मिथ्या ही है।

सम्यग्दृष्टि को ये दोनों चारित्र युगपत प्रारम्भ होते हैं, परन्तु इनकी पूर्णता आगे पीछे क्रम से होती है। पहले पहल व्यवहार चारित्र का अंश बहुत अधिक होता है और निश्चय का अत्यन्त अल्प। ऊपर की भूमिकाओं में व्यवहार का बाह्य विकल्पात्म अंश घटता जाता है और निश्चय का अन्तरंग साम्यता वाला अंश बढ़ता जाता है। जैसा कि ऊपर वाले प्रश्न में दर्शाया जा चुका है। अन्त में जाकर निश्चय चारित्र पूर्ण हो जाता है और विकल्पात्मक व्यवहार चारित्र उसी में लीन होकर रह जाता है।

८८. **देश चारित्र के कितने अंग हैं?**

बारह—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत।

८९. **सकल चारित्र के कितने अंग हैं?**

तेरह—पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति।

(५ रत्नत्रय सामान्य)

९०. रत्नत्रय किसको कहते हैं ?
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं।

९१. इन तीनों को रत्न क्यों कहा ?
क्योंकि रत्नवत अत्यन्त दुर्लभ मूल्यवान व इष्ट है।

९२ रत्नत्रय कितने प्रकार का होता है ?
दो प्रकार का—व्यवहार व निश्चय।

९३. व्यवहार रत्नत्रय किसको कहते हैं ?
व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार सम्यग्ज्ञान व व्यवहार सम्यक्-चारित्र को दैत या भेद होने के कारण व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं।

९४. निश्चय रत्नत्रय किसको कहते हैं ?
शुद्धात्मा की श्रद्धा, उस ही का परिज्ञान और उस ही में स्थिर चित्तवाली अत्यन्त निष्ठा; एक अद्वैत व अखण्ड रूप होने के कारण निश्चय रत्नत्रय कहलाता है।

९५. व्यवहार रत्नत्रय किसको होता है ?
सम्यग्दर्शन प्रगट होने के पश्चात से साधु होने तक अर्थात चौथे गुणस्थान से छठे सातवें गुणस्थान तक व्यवहार रत्नत्रय होता है, क्योंकि इन भूमिकाओं में अभेद व निर्विकल्प ध्यान नहीं होता।

९६. निश्चय रत्नत्रय किनको होता है ?
आठवें से दशवें गुणस्थान तक शुक्लध्यानी साधुओं को निश्चय रत्नत्रय होता है, और आगे सिद्धावस्था पर्यन्त भी वही बना रहता है।

९७. रत्नत्रय में कौन प्रधान है ?
वैसे तो तीनों ही अपने अपने स्थान पर प्रधान है; फिर भी अपेक्षावश सम्यग्दर्शन ही प्रधान माना गया है।

९८. सम्यग्दर्शन की प्रधानता क्यों ?
सम्यग्दर्शन के बिना बड़े बड़े विद्वानों का शास्त्रज्ञान भी

मिथ्याज्ञान, बड़े-बड़े साधुओं का सफल चारित्र मिथ्याचारित्र और बड़े-बड़े तपस्वियों का तप मिथ्या तप है।

९९ सम्यग्दर्शन के बिना सब कुछ मिथ्या क्यों ?

सम्यग्दर्शन के अभाव में शुद्धात्मा का भावात्मक साक्षात परिचय नहीं होता। इसलिये ज्ञान का लक्ष्य व अभिप्राय केवल शाब्दिक शास्त्रज्ञान तथा तत्सम्बन्धी चर्यायें मात्र ही रहता है। इसी प्रकार चारित्र तथा तप का भी लक्ष्य व अभिप्राय केवल शरीर सम्बन्धी वाह्य क्रियायें अथवा बाद विषयों का हठ पूर्वक त्याग करना मात्र रहता है। अन्तरंग आत्मा का स्पर्श नहीं हो पाता, और उसके अभाव में वह स्वाभाविक आनन्द से वञ्चित ही रहता है।

१००. प्रधान होने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उद्यम ही प्रयोजनीय है। ज्ञान व चारित्र से हमें क्या लेना है ?

ऐसा नहीं है क्योंकि बिना सात तत्वों का विशेषज्ञान किये सम्यग्दर्शन व ध्यान होता नहीं और बिना ध्यान के आनन्द प्राप्त होता नहीं। इसलिये अपने अपने स्थान पर सभी को प्रधान समझना। किसी एक का भी अभाव कर देने पर शेष दो की स्थिति रह नहीं सकती। ये नाम मात्र को तीन हैं वास्तव में एक ही हैं।

१०१. तीन होते हुए भी एक क्यों ?

क्योंकि तीनों एक साथ रहते हैं। यदि वास्तव में सम्यग्दर्शन है तो सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र अवश्यभावी हैं, भले ही कम क्यों न हों; जैसे बिना टहनी पत्तों के वृक्ष होता नहीं।

१०२. ये तीनों युगपत होते है या आगे पीछे ?

चौथे गुणस्थान में युगपत उत्पन्न होते हैं, परन्तु इनकी पूर्ति क्रम से होती हैं। सबसे पहिले चौथे से सातवें के अन्त तक सम्यग्दर्शन पूर्ण होता है, फिर तेरहवें गुण स्थान में सम्यग्ज्ञान पूर्ण होता है और चौदहवें के अन्त में सम्यग्चारित्र पूर्ण होता है।

१०३. सम्यक्चारित्र १२ वें गुणस्थान में पूर्ण होता है ?

भावात्मक चारित्रपूर्ण हो जाने पर भी योग शेष रहने से चारित्र अपूर्ण माना जाता है।

१०४. अविरत सम्यग्दृष्टि को केवल सम्यग्दर्शन है चारित्र नहीं ?

ऐसा नहीं है। वह सर्वथा अविरत नहीं होता, उसे भी सम्यक्त्वाचरण या चारित्र अवश्य होता है और जैसा कि पहले बताया गया है वह स्वरूपाचरण का अंश ही है। अपनी लौकिक प्रवृत्ति के प्रति निन्दन गर्हण तथा व्रतादि धारण की उत्तरोत्तर दृढ़ भावना उसे निरन्तर बनी रहती है। यही उसका चारित्र है, क्योंकि यदि ये न हों तो वह आगे सच्चा त्याग वैराग्य कर नहीं सकता।

सप्तम अध्याय

(स्याद्वाद)

७/१ वस्तु स्वरूपाधिकार

(सामान्य विशेष)

१. **सामान्य किसको कहते हैं ?**

अनेकता में रहने वाली एकता को सामान्य कहते हैं, जैसे अनेक मनुष्यों में एक मनुष्यत्व ।

२. **सामान्य कितने प्रकार का है ?**

दो प्रकार का—तिर्यग्सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य ।

३. **तिर्यग्सामान्य किसको कहते हैं ?**

एक समयवर्ती अनेक पदार्थों में रहनेवाली एकता को तिर्यग्-सामान्य कहते हैं, जैसे अनेक मनुष्यों में एक मनुष्यत्व ।

४. **उर्ध्वता सामान्य किसको कहते हैं ?**

एक पदार्थ की भिन्न समयवर्ती अनेक पर्यायों में रहने वाली एकता को उर्ध्वता सामान्य कहते हैं; जैसे दूध, दही, छाछ, घी, आदि पर्याय में एक गोरसत्व ।

५ **विशेष किसको कहते हैं ?**

एकता में रहने वाली अनेकता को विशेष कहते हैं । जैसे मनुष्य जाति कहने पर अनेक मनुष्यों का ग्रहण होता है ।

६. **विशेष कितने प्रकार का है ?**

दो प्रकार का—व्यतिरेकी विशेष और पर्याय विशेष ।

७. **व्यतिरेकी विशेष किसको कहते हैं ?**

एक जाति में रहने वाले अनेक व्यक्तियों को व्यतिरेकी विशेष

कहते हैं; जैसे एक मनुष्यत्व जाति में अनेक मनुष्य।

८. **व्यतिरेक किसको कहते हैं ?**
प्रदेशों की पृथकता को व्यतिरेक कहते हैं।

९. **पर्याय किसको कहते है ?**
प्रदेशों से अपृथ रहने वाले द्रव्य के विशेष को पर्याय कहते हैं।

१०. **पर्याय रूप विशेष कितने प्रकार का है।**
दो प्रकार का—सहभावी पर्याय और क्रमभावी पर्याय।

११. **सहभावी पर्याय किसको कहते हैं ?**
द्रव्य के अनेक गुण उसके सहभावी पर्याय या सहभावी विशेष हैं, क्योंकि वे द्रव्य में एक साथ रहते हैं, जैसे जीव में ज्ञान दर्शन आदि।

१२. **क्रमभावी पर्याय किसको कहते हैं ?**
द्रव्य व गुण की उत्पन्नध्वंसी अवस्था में उसके क्रम भावी पर्याय या क्रमभावी विशेष हैं, क्योंकि आगे पीछे होती हैं; जैसे सुख दुख आदि।

१३. **सामान्य व विशेष कहां रहते हैं ?**
पदार्थ में।

१४. **क्या पदार्थ में इनकी सत्ता पृथक-पृथक है ?**
नहीं, एकमेक है। अर्थात पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक ही होता है। जो पदार्थ सामान्य रूप है वही विशेष रूप है।

१५. **सामान्य व विशेष दोनों विरोधी बातें एक साथ कैसे रहें ?**
ये परस्पर विरोधी नहीं है बल्कि एक ही पदार्थ के दो धर्म हैं। वास्तव में बिशेष से रहित सामान्य या सामान्य से रहित विशेष अवस्तुभूत कल्पना मात्र है। जैसे कि द्रव्य से पृथक गुण कोरी कल्पना है।

१६ **सामान्य और विशेष में अविरोध की सिद्धि करो।**
(क) जो यह जाति रूप तिर्यक् सामान्य है वह अपने व्यक्तियों रूप व्यतिरेकी विशेषों में अनुगत हुआ ही देखा जा सकता है, उससे पृथक नहीं, जैसे मनुष्यत्व मनुष्यों में

अनुगत हुआ ही देखा जाता है, उनसे पृथक नहीं।

(ख) जो यह गुणों का समूह रूप एक सामान्य द्रव्य है, वह अपने गुणों रूप सहभावी विशेषों में अनुगत हुआ ही देखा जाता है, उनसे पृथक नहीं। जैसे-जीव द्रव्य ज्ञानादि गुणों में अनुगत ही सत् हैं उनसे पृथक नहीं।

(ग) जो यह ऊर्ध्वता सामान्य रूप एक द्रव्य है वह अपनी पर्यायों रूप क्रमभावी विशेषों में अनुगत हुआ ही देखा जाता है, उनसे पृथक नहीं। जैसे कि गो रस नाम का द्रव्य, दूध, दही, छाछ, घी आदि में अनुगत ही है, इनसे पृथक नहीं।

१७. सामान्य व विशेष में किसका प्रत्यक्ष होता है ?

प्रत्यक्ष केवल विशेष का हुआ करता है, सामान्य का नहीं। जैसे—प्रत्यक्ष मनुष्यों का ही होता है मनुष्यत्व का नहीं; दूध दही आदि का ही होता है। गोरस का नहीं।

१८. तब सामान्य को कैसे जाना जाये ?

अनुमान से जाना जाता है। विशेष कार्यरूप है और सामान्म कारण रूप। 'कारण हो तो कार्य हो अथवा न भी हो, पर कार्य से तो उसका कारण अवश्य होना चाहिये' ऐसे तर्क पर से उसका अनुमान होता है। जैसे—यदि मनुष्यत्व रूप सामान्य जाति न होती तो मनुष्य किसको कहते ? अथवा यदि गोरस न होता तो दूध दही आदि कहां से आते।

१९. सामान्य का प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ?

क्योंकि विशेषों से पृथक उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। जैसे—योद्धाओं हाथियों व घोड़ों आदि से पृथक सेना नामका कोई सत्ताभूत पदार्थ नहीं है। योद्धाओं आदि को देखकर ही 'यह सेना है' ऐसा सामान्य जाना जाता है और व्यवहार में आता है। उनसे पृथक सेना नाम के पदार्थ की सत्ता नहीं जिसका कि प्रत्यक्ष किया जा सके।

(२ स्व चतुष्टय)

२०. पदार्थ में सामान्य विशेष किस रूप में देखे जाते हैं ?
स्वरूप चतुष्टय के रूप में।

२१. स्वरूप चतुष्टय किसका कहते हैं ?
द्रव्य के स्वभाविक चार अंशों को स्वरूप चतुष्टय कहते हैं।

२२. स्वरूप चतुष्टय कौन से हैं ?
चार हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव।

२३. द्रव्य किसको कहते हैं ?
गुण व पर्यायों के आश्रय या आधार को द्रव्य कहते हैं।

२४. क्षेत्र किसको कहते हैं ?
द्रव्य के प्रदेशों को अथवा उसके आकार को द्रव्य का स्वक्षेत्र कहते हैं।

२५. काल किसको कहते हैं ?
द्रव्य व गुण की अपनी अपनी पर्याय उस उसका स्वकाल है।

२६. स्वभाव किसको कहते हैं ?
द्रव्य के गुणों को उसका स्व-भाव कहते हैं।

२७. चतुष्टय के कारण द्रव्य के चार खण्ड हो जायेंगे ?
नहीं होगा, क्योंकि ये चार विकल्प केवल द्रव्य को विशेष प्रकार से जानने के लिये हैं, उसका विभाग करने के लिये नहीं। ज्ञान द्वारा द्रव्य में चार विशेष देखे जा सकते हैं।

२८. द्रव्य की सिद्धि में इन चार बातों का क्या स्थान ?
द्रव्य अवश्य प्रदेशात्मक कुछ होना चाहिये, अन्यथा उसमें गुण अथवा पर्याय आश्रय नहीं पा सकती और गुण पर्याय के अभाव में उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। द्रव्य अवश्य पर्यायात्मक होना चाहिये अन्यथा उसमें अर्थ क्रिया नहीं हो सकती, और अर्थ क्रिया के अभाव में उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। द्रव्य अवश्य गुणात्मक होना चाहिये अन्यथा उसका कुछ भी स्वभाव नहीं हो सकता और स्वभाव के अभाव में उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। इन्हीं चार विकल्पों से उसके द्रव्य क्षेत्र काल व भाव जाने जाते हैं।

२६. द्रव्य गुण व पर्याय में इस चतुष्टय का क्या स्थान है ?
द्रव्य में क्षेत्र प्रधान है, क्योंकि वह आश्रय या आधार है। गुण में भाव प्रधान है, क्योंकि वह उसका स्वभाव है। पर्याय में काल प्रधान है, क्योंकि वह आगे पीछे उत्पन्न व नष्ट होती रहती है।

३०. स्व-चतुष्टय किस लिये बताये जाते हैं।
पदार्थ में सामान्य व विशेष धर्मों की स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये।

३१. स्व चतुष्टय में परस्पर सामान्य विशेष बताओ ?
(क) द्रव्य सामान्य है और क्षेत्र उसका विशेष क्योंकि उसमें क्षेत्रात्मक पर्याय या आकार की प्रधानता है।
(ख) भाव सामान्य है और काल उसका विशेष क्योंकि गुणों में परिणमन रूप पर्यायों की प्रधानता है।

अथवा

(क) द्रव्य की अपेक्षा करने पर क्षेत्र काल व भाव इन तीनों में अर्थात प्रदेशों, गुणों व पर्यायों में 'अनुगत द्रव्य' सामान्य है और ये तीनों उसके विशेष।
(ख) क्षेत्र की अपेक्षा करने पर अनेक प्रदेशों में अनुगत द्रव्य का अखण्ड आकार सामान्य है और प्रदेश उसके विशेष।
(ग) काल की अपेक्षा करने पर अनेक द्रव्य पर्यायों में अनुगत द्रव्य का ध्रुवत्व सामान्य है और उत्पाद व्यय रूप वे द्रव्य पर्याय में उसके विशेष।
(घ) भाव की अपेक्षा करने पर त्रिकाली अनेक अर्थपर्यायों में अनुगत गुण सामान्य है और वे अर्थपर्याय उसके विशेष।

३२. यदि चतुष्टय एकमेक तो इन्हें कहने की क्या आवश्यकता ?
सर्वथा एक ही हो, सो बात नहीं है। इन चारों में अपने अपने स्वरूप की अपेक्षा भेद भी है।

(३ अभाव)

(३३) अभाव किसको कहते हैं ?

एक पदार्थ की (द्रव्य, गुण या पर्याय की) दूसरे पदार्थ में गैर मौजूदगी को अभाव कहते हैं।

३४. एक पदार्थ की दूसरे में गैर मौजूदगी क्या ?

एक पदार्थ का दूसरे रूप न होना, जैसे 'घट' का 'पट' रूप न होना।

(३५) अभाव के कितने भेद हैं ?

चार हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभाव।

(३६) प्रागभाव किसको कहते हैं ?

वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में जो अभाव उसको प्रागभाव कहते हैं।

३७. वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव क्या ?

उत्पन्न होने से प्राक् (पहले) अर्थात पूर्व पर्याय की सत्ता रहते हुए वर्तमान पर्याय की सत्ता का अभाव था, क्योंकि उस समय तक वह उत्पन्न ही नहीं हुई थी। जैसे—दूध की सत्ता के रहते दही की सत्ता का अभाव है।

(३८) प्रध्वंसाभाव किसको कहते हैं ?

आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय के अभाव को प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

३९. आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय का अभाव क्या ?

वर्तमान पर्याय की सत्ता अपने से उत्तरवर्ती पर्याय की सत्ता में ध्वंस (नष्ट) रूप से रहती है। क्योंकि इसका ध्वंस ही उत्तर पर्याय का उत्पाद है, जैसे—दही का ध्वंस हो घी का उत्पाद है।

४०. दही का दूध में अथवा दूध का दही में 'अभाव' दोनों बातें समान सी दीखती है ?

समान नहीं हैं। इनमें 'का' और 'में' के प्रयोग का अन्तर है।

जिस विवक्षित पर्याय की सत्ता खोजनी हो उसके साथ 'का' का प्रयोग करना चाहिये और जिस दूसरी पर्याय के साथ उसकी भिन्नता देखनी है उसके साथ 'में' का प्रयोग करना चाहिये। जैसे – दही की सत्ता अपने से पूर्ववर्ती दूध की सत्ता में प्राग-भाव (अनुत्पन्न) रूप से रहती है और दूध की सत्ता अपने से उत्तरवर्ती दही की सत्ता में ध्वंस (नष्ट) हुई रहती है।

(४१) अन्यान्याभाव किसको कहते हैं ?

पुद्गल द्रव्य की एक वर्तमान पर्याय में दूसरे पुद्गल की वर्त-मान पर्याय के अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं।

४२. एक पुद्गल पर्याय में दूसरी पर्याय का अभाव क्या ?

एक पुद्गल स्कन्ध से दूसरा पुद्गल स्कन्ध भिन्न हैं, जैसे--घटसे पट भिन्न है अथवा एक घट से दूसरा घट भिन्न है।

(४३) अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं ?

एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य के अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं।

४४. एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव क्या ?

लोक में जितने भी सत्ताभूत मौलिक द्रव्यों का अस्तित्व है, वे सब परस्पर भिन्न है, जैसे जीव से पुद्गल भिन्न है अथवा एक जीव से दूसरा जीव भिन्न है।

४५. अत्यन्ताभाव कहने से क्या समझे ?

कोई भी दो द्रव्य मिलकर तीन काल में भी कभी एक नहीं हो सकते, उनकी सत्ता पृथक पृथक ही रहती है। द्रव्य क्षेत्र का फल व भाव चारों, प्रकार से भिन्न रहने को अत्यन्ताभाव कहते हैं।

४६. अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभाव में क्या अन्तर है ?

स्वरूप का सर्वदा पृथक बने रहना अत्यन्ताभाव है. यह बात छहों मूल द्रव्यों में पाई जाती है, पुद्गल की द्रव्य पर्यायों में नहीं, क्योंकि वे मूल द्रव्य नहीं हैं। वे हैं समान जातीय पर्याय रूप स्कन्ध जो अपने स्वरूप को बदल लेते हैं। जो आज घट

है वह कल को पट बन जाता है और जो घट है वही कल को घट बन बैठता है। वर्तमान में तो इनमें परस्पर भिन्नता अवश्य है, परन्तु आगे जाकर वह बनी ही रहे यह निश्चय नहीं। इसलिये पुद्गल स्कन्धों में अत्यन्ताभाव नहीं अन्योन्याभाव है। अथवा यों कहिये कि त्रिकाली द्रव्य न होने से स्कन्धों में अत्यन्त भाव घटित नहीं होता।

४७. **दो परमाणुओं में परस्पर कौन सा अभाव है ?**
त्रिकाल सत्ताधारी मौलिक द्रव्य न होने से उनमें अत्यन्ताभाव है।

४८. **परमाणुओं में अत्यन्ताभाव और स्कन्धों में अन्योन्याभाव ऐसा क्यों ?**
परमाणु त्रिकाली द्रव्य हैं और स्कन्ध द्रव्य पर्याय। स्कन्ध बन जाने पर भी परमाणुओं की स्वाभाविक सत्ता अक्षुण्ण रहती है, परन्तु स्कन्धों की सत्ता स्थायी नहीं। एक परमाणु बदल कर दूसरे परमाणु रूप नहीं हो जाता, परन्तु एक स्कन्ध बदलकर दूसरे स्कन्ध रूप हो जाता है, जैसे लकड़ी जलकर कोयला हो जाती है।

४९. **अन्योन्याभाव केवल पुद्गल स्कन्ध में ही लागू होता है ऐसा क्यों ?**
क्योंकि वे ही बदलकर एक दूसरे रूप हो सकते हैं, अन्य द्रव्य नहीं।

५०. **द्रव्य गुण पर्याय में कौन कौन अभाव घटित होता है ?**
द्रव्य में अत्यन्ताभाव सभी अर्थ पर्यायों में प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव, पुद्गलातिरिक्त द्रव्य पर्यायों में भी प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव, पुद्गल की द्रव्य पर्याय रूप स्कन्ध में अन्योन्याभाव।

५१. **स्कन्ध रूप पर्यायों में प्राग प्रध्वंस अभाव लागू नहीं होते ?**
स्वभाव व्यञ्जन पर्याय में लागू किये जा सकते हैं पर स्कन्धों में नहीं।

५२. समय एक और पदार्थ अनेक; समय अनेक व पदार्थ एक, इनमें कौनसे अभाव घटित होते हैं ?

एक समयवर्ती अनेक पदार्थ मौखिक द्रव्य या स्कन्ध होते हैं, अत: अत्यन्ताभाव व अन्योन्याभाव घटित होते हैं। और अनेक समयवर्ती एक पदार्थ पर्याय रूप होने से वहाँ प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव घटित होते हैं।

५३. द्रव्य गुण में अथवा एक द्रव्य के दो गुणों में परस्पर कौन सा अभाव लागू होता है ?

इन चारों अभावों में से कोई नहीं। तहाँ तदभाव है।

५४. तदभाव किसको कहते हैं ?

स्वरूप से भिन्न हों; अर्थात संज्ञा लक्षण प्रयोजन भिन्न हों पर प्रदेशों से भिन्न न हों वहां तदभाव होता है। जैसे—द्रव्य का स्वरूप द्रव्य रूप ही है गुण रूप नहीं, और गुण का स्वरूप गुण का ही है द्रव्य का नहीं। अथवा रस गुण रस ही है वर्ण नहीं और वर्ण गुण वर्ण ही है रस नहीं। यही तत् तत् अभाव है।

५५. एक द्रव्य के गुण व पर्यायों में तथा दो द्रव्य के गुण व पर्यायों में कौन से अभाव ?

एक द्रव्यगत गुणों में परस्पर तदभाव हैं, पर्यायों में परस्पर प्रागभाव प्रध्वंसाभाव है। दो द्रव्यों में तथा उनके गुणों व पर्यायों में अत्यन्ताभाव है। दो स्कन्ध पर्यायों में अन्योन्याभाव हैं।

५६. निम्न पदार्थों में परस्पर कौन सा अभाव ?—

१. दूध-दही, २. कुम्हार घड़ा, ३. घट पट, ४. सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन, ५. तैजस व कर्माण शरीर, ६. गुरु व शिष्य, ७. पुस्तक व विद्यार्थी, ८. इच्छा व भाषा, ९. चशमा व ज्ञान, १०. शरीर व वस्त्र, ११. शरीर व जीव, १२. ज्ञान व सुख, १३. आम का रूप व रस ?

१. प्राक् व प्रध्वंसाभाव अथवा अन्योन्याभाव, अत्यन्ताभाव, ३. अन्योन्याभाव, ४. प्राग भाव प्रध्वंसाभाव, ५. अन्योन्या

भाव, ६. अत्यन्ताभाव, ७. अत्यन्ताभाव, ८. अत्यन्ताभाव, ९. अत्यन्ताभाव, १०. अन्योन्याभाव, ११. अत्यन्ताभाव, १२. तदभाव, १३. तदभाव।

५७ निम्न पदार्थों में कौनसा अभाव है ? —

१. श्रुतज्ञान का मतिज्ञान में; २. घड़ी का हाथ में; ३. सम्यग्दर्शन का मिथ्यादर्शन में; ४. जीव की मनुष्य गति का देव गति में; ५. आम के हरे पन का पीले पन में; ६. इन्द्रिय सुख का अतिन्द्रिय सुख में; ७. केवल ज्ञान का सम्यग्दर्शन में; ८. जीव की अर्हन्त अवस्था का सिद्ध अवस्था में; ९. सीमन्धर भगवान का महावीर भगवान में; १०. घड़े के एक परमाणु का दूसरे परमाणु में।

१. प्रागभाव; २. अन्योन्याभाव ३. प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव दोनों संभव हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन से मिथ्यादर्शन और मिथ्यादर्शन से सम्यग्दर्शन दोनों होने सम्भव हैं; ४. उपरोक्त नं० ३ की भाँति ही प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव दोनों, क्योंकि मनुष्य से देव व देव से मनुष्य दोनों पक्ष सम्भव हैं; ५. प्रध्वंसाभाव; ६. प्रध्वंसाभाव; ७. तदभाव; ८. प्रध्वंसाभाव; ९. अत्यन्ताभाव; १० अत्यन्ताभाव।

५८. निम्न पदार्थों में प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव बताओ।

१. श्रुत ज्ञान, २. मिथ्यादर्शन, ३. मोक्ष, ४ दही, ५. दूध, ६. मक्खन, ७. घी, ८ जल की उष्णता —१. श्रुत ज्ञान में मति ज्ञान का प्रध्वंसाभाव और केवल ज्ञान का प्रागभाव; २. मिथ्यादर्शन में सम्यग्दर्शन का प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव दोनों; ३. मोक्ष में संसार का प्रध्वंसाभाव प्रागभाव कुछ नहीं; ४. दही में दूध का प्रध्वंसाभाव और छाछ का प्रागभाव; ५. दूध में दही का प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव कुछ नहीं; ६. मक्खन में दही का प्रध्वंसाभाव और घी का प्रागभाव; ७. घी में मक्खन का प्रध्वंसाभाव, प्रागभाव कुछ नहीं; ८. जल की उष्णता में पूर्व शीतलता का प्रध्वंसाभाव और उत्तर शीतलता का प्रागभाव।

५९. चारों अभाव किस-किस द्रव्य में लागू होते हैं ?
केवल पुद्गल में ।

६०. अत्यन्ताभाव को न मानें तो क्या हानि ?
सब द्रव्य मिलकर एकमेक हो जाये ।

६१. अन्योन्याभाव न मानें तो क्या हानि ?
पुद्गल स्कन्धों में भिन्नता की प्रतीति ही न हो, सब एक स्कन्ध बन बैठे ।

६२. प्रागभाव न माने तो क्या हानि ?
द्रव्य की पर्याय अनादि बन जाये ।

६३. प्रध्वंसाभाव न मानें तो क्या हानि ?
द्रव्य की पर्यायों का कभी नाश न हो ।

६४. तदभाव न मानें तो क्या हानि ?
द्रव्य में अनेक गुणों की सिद्धि न हो अथवा सब गुण मिल कर एक हो जायें ।

६५. चारों अभावों को समझने का प्रयोजन क्या ?
द्रव्य, गुण व पर्याय का अपना-अपना पृथक-पृथक अस्तित्व व स्वरूप समझना ।

६६. जगत की दृष्ट चित्रता विचित्रता में कौन सा अभाव कारण हैं ?
अन्योन्याभाव ।

६७. द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्वभाव इन पांचों अभावों को कारणपना दर्शाओ ?
प्रागभाव में उत्पाद कारण है, प्रध्वंसाभाव में व्यय, अन्यन्ताभाव व तदभाव में ध्रौव्य, अन्योन्या भाव में उत्पाद व्यय ।

६८. व्यतिरेकी विशेषों में कौनसा अभाव ?
अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव ।

६९. सहभावी विशेषों में कौनसा अभाव ?
तदभाव ।

७०. **क्रमभावी विशेषों में कौनसा अभाव?**

प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव।

७१. **द्रव्य के स्व चतुष्टय में परस्पर कौनसा अभाव?**

केवल तदभाव, क्योंकि उन सब में प्रदेश भेद नहीं स्वरूप भेद है।

७२. **इन अभावों को जानने से क्या लाभ?**

पादार्थ के सामान्य व विशेष धर्मों का विशद ज्ञान होना।

७३. **पदार्थों के सामान्य विशेष धर्मों की एकता अनेकता कैसे जानी जाती है?**

अनेकान्त तथा नय सिद्धान्त द्वारा।

७/२ अनेकान्ताधिकार

१. अनेकान्त किसको कहते हैं ?

अनेक+अन्त अर्थात अनेक धर्म । वस्तु में वस्तुपने को निपजाने वाली अस्तित्व, वस्तुत्वादि (सामान्य व विशेष आदि) दो विरोधी शक्तियों (धर्मों) का प्रकाशित होना अनेकान्त है ।

२. वस्तुयें विरोधी शक्तियां कौन सी हैं ?

सामान्य व विशेष धर्मों की अपेक्षा करने पर वस्तु में अनन्तों विरोधी शक्तियां देखी जा सकती हैं, परन्तु इनमें से चार प्रधान हैं—सत् व असत्, तत् व अतत्, एक व अनेक, नित्य व अनित्य, ये वस्तु के युग्म चतुष्टय कहलाते हैं ।

३. सत् किसको कहते हैं ?

पदार्थ की 'सत्ता' स्वचतुष्टय ही है; जैसे घट की सत्ता घट रूप ही है ।

४. असत् किसको कहते हैं ?

पदार्थ की 'सत्ता' परचतुष्टय स्वरूप नहीं है, जैसे घट की सत्ता पट आदि अन्य वस्तु स्वरूप बिल्कुल नहीं है । इसे ही पहले अत्यन्ताभाव कहा गया है ।

५. तत् किसको कहते हैं ?

अखण्ड एक द्रव्य में भी द्रव्य का स्वरूप द्रव्यरूप ही है और गुण पर्याय का स्वरूप गुण पर्याय रूप ही ।

६. अतत् किसको कहते हैं ?

द्रव्य का स्वरूप गुण पर्याय रूप बिल्कुल नहीं है और गुण पर्याय का स्वरूप द्रव्य रूप बिल्कुल नहीं है। इसी प्रकार एक गुण का स्वरूप अन्य गुण रूप बिल्कुल नहीं है। इसे ही पहले तद्‍भाव कहा गया है।

७. एक किसको कहते हैं ?

द्रव्य अपने गुण पर्यायों के साथ तन्मय रहने के कारण एक है। अथवा अनेक पर्यायों में अनुस्यूत वह एक है।

८. अनेक किसको कहते हैं ?

'पदार्थ' द्रव्य गुण व पर्याय का भेद करने पर अनेक रूप दीखता है। अथवा द्रव्य की व्यञ्जन पर्यायों की ओर लक्ष्य करने से वह अनेक रूप है।

९. नित्य किसको कहते हैं ?

अनेक पर्यायों में अनुगत ऊर्ध्वता सामान्य रूप द्रव्य नित्य है।

१०. अनित्य किसको कहते हैं ?

पदार्थ में सब तन्मय होने से, पर्याय के उत्पन्न व नष्ट होने पर द्रव्य ही उत्पन्नध्वंसी दीखता है।

११. पदार्थ में ये धर्म किस प्रकार रहते हैं ?

परस्पर में एकमेक होकर रहते हैं; अथवा इनको आदि लेकर पदार्थ अनन्त धर्मों का एक रसात्मक पिंड है।

१२. परस्पर विरोधी होते हुए भी ये धर्म पदार्थ में मैत्री भाव से कैसे रहते हैं ?

क्योंकि सामान्य विशेषात्मक ही पदार्थ का स्वरूप है, अकेले सामान्य या अकेले विशेष रूप नहीं। सामान्य का विशेष के साथ कोई विरोध नहीं।

१३. युग्म चतुष्टय में सामान्य व विशेषपना क्या है ?

(क) 'सत्-असत्' धर्म-युगल तिर्यक सामान्य में व्यतिरेकी विशेष को उत्पन्न करता है।

(ख) 'तत्-अतत्' धर्म-युगल भी तिर्यक सामान्य रूप एक द्रव्य में गुण पर्याय रूप सहभावी विशेष उत्पन्न करता है ।

(ग) 'एक-अनेक' धर्म-युगल ऊर्ध्वता सामान्य में क्रमभावी विशेष उत्पन्न करता है ।

(घ) 'नित्य-अनित्य' धर्म-युगल ऊर्ध्वता सामान्य रूप ध्रुवत्व में उत्पाद व्यय रूप विशेष उत्पन्न करता है ।

१४. **युग्म चतुष्टय में पांचों भाव कैसे घटित होते हैं ?**

अत्यन्ताभाव व अन्योन्याभाव के द्वारा सत्-असत् धर्म उत्पन्न होते हैं । तद्भाव के द्वारा तत्-अतत् व एक अनेक धर्म उत्पन्न होते हैं । प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव के द्वारा एक अनेक तथा नित्य-अनित्य धर्म उत्पन्न होते हैं ।

१५. **पदार्थ के स्वरूप में विरोध भले न हो पर सुनने में तो लगता है ?**

साधारण रूप से कहने सुनने में अवश्य विरोध लगता है, परन्तु स्याद्वाद पद्धति से कहने पर विरोध नहीं लगता ।

१६. **अनेकान्त कितने प्रकार का होता है ?**

दो प्रकार का—सम्यक् व मिथ्या ।

१७. **सम्यक् अनेकान्त किसको कहते हैं ?**

पदार्थ में समस्त धर्मों को एक रूप से अखण्ड देखना सम्यक् अनेकान्त है अथवा एक ही पदार्थ में अपेक्षावश विरोधी शक्तियों को देखना अनेकान्त है; जैसे जो घट 'सत्' धर्म युक्त है वही किसी अन्य अपेक्षा में 'असत्' धर्म युक्त है ।

१८. **मिथ्या अनेकान्त किसको कहते हैं ?**

पदार्थ के समस्त धर्मों को इस प्रकार देखना, मानो वे कोई पृथक पृथक स्वतन्त्र पदार्थ हों, जिनका परस्पर में एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं । जैसे—सत् धर्मयुक्त घट तो कोई और है और असत् धर्म युक्त कोई और ।

७/३ स्याद्वादाधिकार

१. **स्याद्वाद किसको कहते हैं ?**

स्यात् + वाद = स्याद्वाद । अर्थात प्रत्येक बात को 'स्यात्' पद से अलंकृत करके बोलने की पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं ।

२. **अनेकान्त व स्याद्वाद में क्या अन्तर है ?**

अनेक धर्मात्मक पदार्थ का अपना अखण्ड स्वरूप तो अनेकान्त है और उसको कहने की पद्धति का नाम स्याद्वाद है । स्याद्वाद वाचक है और अनेकान्त वाच्य ।

३. **'स्यात्' पद का क्या अर्थ है ?**

स्यात्, कथञ्चित, किसी अपेक्षा से, किसी अभिप्राय से, किसी दृष्टिविशेष से, किसी प्रयोजनवश—ये सभी पद एकार्थवाची हैं ।

४. **अपेक्षा या दृष्टि किसको कहते हैं ?**

वक्ता के अभिप्राय को उसकी अपेक्षा या दृष्टि कहते हैं ।

५. **वक्ता का अभिप्राय किसको कहते हैं ?**

यद्यपि वस्तु में सभी धर्म एक रस रूप से युगपत रहते हैं, परन्तु युगपत कहे जाने सम्भव नहीं, इसलिये वक्ता कभी तो सामान्य की तरफ अपना लक्ष्य ले जाकर उस ओर से उस पदार्थ का कथन करने लगता है, और कभी विशेष की ओर लक्ष्य ले जाकर उस ओर से पदार्थ का कथन करने लगता है । इसे ही वक्ता का अभिप्राय कहते हैं । यह लक्ष्य या अभिप्राय वह

श्रोता की प्रकृति को अथवा परिस्थिति को अथवा अन्य द्रव्य क्षेत्रकाल भाव के विकल्पों को लेकर स्वयं निर्धारण करता है, कोई नियम नहीं कि पहिले अमुक ही धर्म कहे।

६. **'स्यात' का अर्थ तो शायद होता है ?**
ठीक है, परन्तु एक शब्द के कई अर्थ होते हैं। यहां उसका प्रसिद्ध शायद या संशय वाची अर्थ इष्ट नहीं हैं, बल्कि कथंचित वाला अर्थ ही इष्ट है।

७. **स्याद्वाद की कथन पद्धति किस प्रकार है ?**
'स्यात् सत् एव' 'स्यात् असत् एव इत्यादि प्रकार से कहना स्याद्वाद पद्धति है। इसी प्रकार सभी विरोधी धर्मों के साथ समझना।

८. **'स्यात् सत् एव' इसका क्या अर्थ है ?**
स्यात् सत् ही है, अर्थात पदार्थ किसी अपेक्षा से सत् स्वरूप ही है।

९. **किसी अपेक्षा सत् स्वरूप होना क्या ?**
अपने स्वरूप चतुष्टय की अपेक्षा वह सत् ही है। इसे ही सरल भाषा में यों कह लीजिये कि पदार्थ की सत्ता स्वय अपने रूप ही होती है, जैसे घट की सत्ता घट रूप ही होती है।

१०. **'स्यात् असत् एव' इसका क्या अर्थ है ?**
स्यात् असत् ही है अर्थात पदार्थ अपेक्षा से असत् स्वरूप ही है।

११. **किसी अपेक्षा असत् स्वरूप होना क्या ?**
पर चतुष्टय की अपेक्षा पदार्थ असत् ही है, अर्थात सत् नहीं है। इसे ही सरल भाषा में यों कह लीजिये कि पदार्थ की सत्ता अन्य पदार्थों रूप बिल्कुल भी नहीं है। जैसे घट की सत्ता पट आदि अन्य पदार्थों रूप बिल्कुल भी नहीं है।

१२. **क्य प्रत्येक वाक्य के सात 'स्यात्' पद का होना आवश्यक है ?**
हां, स्याद्वाद की समीचीन पद्धति का यही नियम है।

१३. **शास्त्रों में तथा व्यवहार में ऐसा सर्वत्र किया तो नहीं जाता?**
जहां 'स्यात' पद बोला या लिखा नहीं है, वहां भी स्याद्वादी जन उस का उक्त रूप से ग्रहण कर लेते हैं।

१४. **सर्वत्र इस नियम का अनुसरण करने से सभी वाक्यों का एक ही अर्थ हो जायेगा?**
नहीं, क्योंकि 'स्यात्' शब्द सामान्य है, इसलिये वह एक ही शब्द प्रकरणवश भिन्न भिन्न अर्थ का द्योतक बन जाता है।

१५. **एक स्यात् पद भिन्नार्थ द्योतक कैसे हो सकता है?**
जैसा प्रकरण होता है वैसा ही वक्ता का अभिप्राय या अपेक्षा होती है। जैसा वक्ता का अभिप्राय या अपेक्षा होती है, उस समय उस स्थल पर 'स्यात्' पद का भी वही अर्थ समझा जाना स्वाभाविक है। जैसे–'स्यात् सत् एव' इस पहिले वाक्य में इस पद का अर्थ है 'पदार्थ के स्वचतुष्टय या स्व स्वरूप की अपेक्षा' और 'स्यात् असत् एव' इस दूसरे वाक्य में उसी पद का अर्थ है 'पदार्थ से अन्य पर चतुष्टय या पर स्वरूप की अपेक्षा'।

१६. **स्वचतुष्टय व परचतुष्टय की अपेक्षा क्या?**
विवक्षित पदार्थ का निज द्रव्य क्षेत्रकाल भाव उसका स्व चतुष्टय है, वही उसका अपना स्वरूप है। अन्य पदार्थों का द्रव्य क्षेत्र काल व भाव उस विवक्षित पदार्थ के लिये पर-चतुष्टय है, वही उसके लिये परस्वरूप है। जब वह विवक्षित पदार्थ अपने स्वरूप में खोजा जाता है तब तो वह वहां उपलब्ध होता है, इसलिये सत् प्रतीत होता है, परन्तु उसे ही यदि परस्वरूप में खोजने जाते हैं तब वह वहां उपलब्ध नहीं होता, इसलिये असत् प्रतीत होता है। जैसे कि घट की इच्छा वाले के लक्ष्य में पट है ही नहीं।

१७. **सत्ताभूत पदार्थ असत् कैसे प्रतीत हो सकता है?**
जिस समय स्वरूप में खोजा जाता है, उस समय स्वरूप ही दृष्टि में होता है, पर रूप नहीं। और जिस समय पररूप

खोजा जाता है उस समय वही दृष्टि में होता है स्वरूप नहीं। इसलिये स्वरूप की दृष्टि के समय वह असत् और पररूप दृष्टि के समय वह असत् दीखता है। वास्तव में असत् हो जाता हो ऐसा नहीं है क्योंकि स्वरूप तो वह है ही।

१८. **'स्यात्' पद के साथ एवकार या 'ही' का प्रयोग किस लिये?**
निर्धारण अर्थात निर्णय कराने के लिये है। यदि एवकार न हो तो पदार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध में संशय बना रहता है, कि पदार्थ आखिर क्या है—सत् रूप या असत् रूप, नित्य या अनित्य।

१९. **'ही' कहने से तो एकान्त हो जाता है?**
अवश्य हो जाता है, यदि इसके साथ 'स्यात्' पद न हो तो। जैसे 'देवदत्त पिता ही है' ऐसा कहना एकान्त या मिथ्या है; तथा 'देवदत्त स्यात् पिता ही है' ऐसा कहना ठीक है। क्योंकि इसका अर्थ है देवदत्त का किसी अपेक्षा से अर्थात अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता होना और पहले का अर्थ था सर्वथा पिता होना।

२०. **एकान्त किसको कहते हैं?**
वस्तु के अनेक धर्मों को छोड़कर केवल किसी एक धर्म को स्वीकार करना और अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध कर देना एकान्त है; जैसे कि ऊपर के दृष्टान्त में देवदत्त का केवल पितृत्व धर्म स्वीकार किया गया है। पुत्रत्व, भातृत्व आदि धर्मों निरपेक्ष एवकार द्वारा लोप कर दिया गया है।

२१. **एकान्त कितने प्रकार का होता है?**
दो प्रकार का—सम्यक् व मिथ्या।

२२. **एवकार के कारण एकान्त कैसे हो जाता है?**
किसी एक धर्म के साथ निरपेक्ष एवकार लगा देने से स्वतः अन्य धर्मों का निषेध हो जाता है: जैसे, 'पिता ही है' ऐसा कहने से स्वतः यह समझ लिया जाता है कि वह पुत्र या भाई आदि किसी का भी नहीं है।

२३. **सम्यगेकान्त किसको कहते हैं ?**
'स्यात्' पद सहित एवकार का प्रयोग करना सम्यगेकान्त है; जैसे देवदत्त स्यात पिता ही है ।

२४. **मिथ्या एकान्त किसको कहते हैं ?**
'स्यात्' पद रहित एवकार का प्रयोग करना मिथ्या एकान्त है, जैसे देवदत्त पिता ही है ।

२५. **'स्यात' पद में ऐसी कौनसी विशेषता है कि उसके सद्भाव व अभाव से ही एकान्त सम्यक् व मिथ्यापने को प्राप्त हो जाता है ?**
'स्यात्' पद वक्ता की दृष्टि-विशेषका सूचक है । यह बताता है कि वक्ता जो इस समय किसी विवक्षित धर्म की विधि तथा अन्य धर्मों का निषेध कर रहा है, वह वास्तव में विधि निषेध नहीं है, बल्कि मुख्यता गौणता है । स्यात् पद से शून्य होने पर वही एवकार अन्य धर्मों का सर्वथा व्यवच्छेद कर डालता है ।

२६. **मुख्यता और गौणता किसको कहते हैं ?**
वक्ता किसी एक दृष्टि से पदार्थ को जब विवक्षित एक धर्म रूप ही बताता है और एवकार द्वारा उस समय अन्य सर्व धर्मों का निषेध कर देता है, तब वह विधि तो मुख्यता और वह निषेध गौणता कहलाती है, क्योंकि निषेध करते हुए भी अन्तरंग में उन्हें भूल नहीं जाता ।

२७. **निषेध व गौणता में क्या अन्तर है ?**
निषेध द्वारा तो सर्वथा लोप किया जाता है, अर्थात किसी प्रकार कहां भी तथा कभी भी उस धर्म को स्वीकार करने की भावना नहीं रहती । परन्तु गौणता में अन्य दृष्टि से उसे उन्हें भी किसी अन्य स्थल पर किसी अन्य समय स्वीकार कर लिया जाता है । जैसे—'देवदत्त पिता ही है' ऐसा कहने से घोषित होता है कि वक्ता उसको सारे जगत के जीवों का पिता मानता है, पुत्रादि किसी का भी नहीं मानता, यह निषेध

का उदाहरण है। परन्तु 'देवदत्त स्यात् अर्थात अपने पुत्र की अपेक्षा तो पिता ही है' ऐसा कहने से घोषित होता है कि वक्ता उसे केवल उसके अपने पुत्र का ही पिता मानता है, अन्य व्यक्तियों का नहीं।

इससे स्वत: यह अर्थ प्राप्त हो जाता है कि अन्य व्यक्तियों का वह पुत्र आदि भी हो सकता है; यह गौणता का उदाहरण है।

२८. **सुना जाता है कि 'भी' के प्रयोग से अनेकान्त व 'ही' के प्रयोग से एकान्त हो जाता है ?**

ठीक है, परन्तु एकान्त व अनेकान्त दोनों ही सम्यक् व मिथ्या ऐसे दो-दो प्रकार के होते हैं। तहां 'स्यात्' पद सहित किया गया 'भी' का प्रयोग सम्यगनेकान्त है, और 'स्यात्' रहित किया गया उसी का प्रयोग मिथ्या एकान्त है। इसी प्रकार 'स्यात' सहित किया गया 'ही' का प्रयोग सम्यगेकान्त है और 'स्यात' रहित किया गया उसी का प्रयोग मिथ्या एकान्त है।

२९. **सम्यक् व मिथ्या अनेकान्त व एकान्त को दृष्टान्त से समझाओ।**

जैसे – 'देवदत्त पिता भी है, पुत्र भी है, मामा भी है' ऐसा कहने से यह भ्रम होता है कि अवश्य ही ये तीन देवदत्त नामक पृथक पृथक व्यक्ति हैं; क्योंकि एक ही व्यक्ति पिता पुत्र मामा आदि सब कुछ कैसे हो सकता है। अथवा यह भ्रम होता है कि जिस किसी का भी पिता है तथा जिस किसी का भी पुत्र व मामा। दूसरी ओर 'देवदत्त स्यात् या किसी की अपेक्षा पिता भी है और किसी की अपेक्षा पुत्र मामा आदि भी' ऐसा कहने से उपरोक्त भ्रम नहीं होता। इसलिये पहिला मिथ्या अनेकान्त है और दूसरा सम्यक्।

इसी प्रकार 'देवदत्त पिता ही है' ऐसा कहने से पुत्र मामा आदि किसी का भी नहीं है ऐसा भ्रम होता है और 'स्यात पिता ही है' ऐसा कहने से किसी व्यक्ति विशेष का पिता ही है और अन्य किन्हीं का पुत्र आदि भी अवश्य होगा, ऐसा समझ में आता है। इसलिये पहिला मिथ्या एकान्त है और दूसरा सम्यगेकान्त।

३०. 'भी' से अनेकान्त और ही से एकान्त कैसा हो जाता है ?

'भी' पद अपनी शक्ति से स्वयं अन्य धर्मों का संग्रह कर लेने से अनेकान्त या अनेक धर्म सूचक है; तथा 'ही' पद अपनी शक्ति से स्वयं अन्य धर्मों का व्यवच्छेद कर देने से एकान्त या एक धर्म का सूचक है।

३१. स्याद्वाद रूप कथन पद्धति की महत्ता किस बात में है ?

पदार्थ युगपत अनेक धर्मों का एक रसात्मक पिण्ड है, परन्तु कथनक्रम में वे सब के सब धर्म युगपत एक रस रूप में जैसे हैं वैसे कहे नहीं जा सकते। उन्हें पृथक-पृथक एक-एक करके आगे पीछे कहने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं। बिल्कुल मौन रहने से भी तीर्थ प्रकृति व सकल व्यवहार के लोप का प्रसंग आता है। इसलिये स्याद्वाद पद्धति द्वारा कहने का आविष्कार गुरुओं ने किया है। इस पद्धति द्वारा पृथक पृथक भी कहे गए सर्व धर्म अपने एकरसात्म गठन को छोड़ते हुए प्रतीत नहीं होते।

३२. स्याद्वाद को कुछ लोग संशयवाद बताते हैं ?

यह उन लोगों का भ्रम है, वास्तव में स्याद्वाद सिद्धान्त बहुत गहन व गम्भीर है। ठीक-ठीक विवेक हुए बिना इसका ठीक ठीक प्रयोग किया जाना असंभव है। तब अपने अज्ञान के कारण ही अथवा किसी साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण ही यह सिद्धान्त संशयवादवत प्रतीत होता है। वास्तव में यह संशयवाद नहीं बल्कि वस्तु का ठीक-ठीक निर्णय कराने वाला है, तथा एकान्त व दृढ़ या पक्षपात का निराकरण करके व्यापक दृष्टि प्रदान करने वाला है।

३३. स्याद्वाद सिद्धान्त एकान्त का निराकरण कैसे करता है ?

सप्तभंगी सिद्धान्त द्वारा।

७/४ सप्तभंगी अधिकार

१. सप्तभंगी किसको कहते हैं ?

प्रश्नवश एक वस्तु में प्रमाण से अविरुद्ध विधि प्रतिषेध धर्मों की कल्पना सप्तभंगी है ।

२. प्रमाण से अविरुद्ध कहने से क्या समझे ?

अपनी मर्जी से जिस किस प्रकार विधि प्रतिषेध करना सम्यक् सप्तभंगी नहीं है, बल्कि प्रमाण सिद्ध धर्मों का विधि निषेध ही सप्तभंगी है ।

३. विधि प्रतिषेध धर्म क्या ?

पदार्थ के अनेक विरोधी धर्म युगलों में से प्रत्येक को पृथक पृथक स्याद्वाद पद्धति सहित, विस्तार पूर्वक विश्लेषण करके समझाना ही विधि प्रतिषेध कल्पना है । विश्लेषण द्वारा विधि व प्रतिषेध ये दो धर्म सात बन जाते हैं ।

४. वे सात भंग कौन से हैं ?

स्यात् अस्ति एव, स्यात् नास्ति एव, स्यात् अस्ति नास्ति एव, स्यात् अवक्तव्य एव, स्यात् अस्ति अवक्तव्य एव, स्यात् नास्ति अवक्तव्य एव और स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य एव ।

५. क्या सभी भंगों के साथ प्रयुक्त शब्द एक ही अर्थ का प्रकाशक है ?

नहीं, प्रकरण व प्रश्नवश प्रत्येक भंग के साथ उसका अर्थ

बदल जाता है, जैसे—'अस्ति' धर्म के साथ प्रयुक्त करने पर उसका अर्थ 'स्व चतुष्टय की अपेक्षा' ऐसा होता है, और 'नास्ति' धर्म के साथ प्रयुक्त करने पर उसी का अर्थ 'पर चतुष्टय की अपेक्षा' ऐसा हो जाता है।

६. **'स्यात् अस्ति एव' का क्या अर्थ है?**

पदार्थ स्व-चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति ही है, जैसे कि घट अपने स्वरूप की अपेक्षा सत् स्वरूप ही है। यह सैद्धान्तिक भाषा है, सरल भाषा में यों कहा जाता है कि घट की सत्ता घट रूप ही है।

७. **'स्यात् नास्ति एव' का क्या अर्थ है?**

पदार्थ पर-चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति ही है, जैसे कि घट अन्य पट आदि पदार्थों के स्वरूप की अपेक्षा असत् स्वरूप ही है। यह सैद्धान्तिक भाषा है, सरल भाषा में यों कहा जाता है कि घट की सत्ता पट आदि अन्य पदार्थों रूप बिल्कुल नहीं है।

८. **'स्यात् अस्तिनास्ति एव' का क्या अर्थ है?**

पदार्थ को एक ही बार क्रम पूर्वक जब दोनों धर्मों को मुख्य करके कहा जाता है, तब यह संयोगी भंग प्रगट होता है। इसका अर्थ यह है कि स्वचतुष्टय की अपेक्षा पदार्थ अस्ति रूप होता हुआ भी परचतुष्टय की अपेक्षा नास्ति रूप ही है; और परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप होता हुआ भी वह स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति रूप ही है जैसे–घट की सत्ता घट रूप होते हुए भी घट आदि रूप नहीं ही है। और पट आदि रूप न होते हुए भी घट रूप तो है ही।

९. **पहले दो भंगों के रहते इस तीसरे संयोगी भंग की क्या आवश्यकता?**

किसी के हृदय के प्रश्न को रोका नहीं जा सकता। पृथक-पृथक अस्ति व नास्ति धर्मों के सुनने पर कदाचित किसी को पूर्वापर विरोध भासने लगे और वह कहने लगे कि कभी तो 'अस्ति' कहते हो कभी 'नास्ति', कुछ समझ में नहीं आता

है कि घट की सत्ता आखिर है या नहीं। तब उसका संशय दूर करने के लिये यह तीसरा भंग है, जो यह प्रगट करता है कि घट है तो परन्तु पट आदि रूप नहीं है, अपने रूप ही है।

१०. केवल 'अस्ति' धर्म कहने में क्या हानि है ?

केवल अस्ति ही अस्ति कहते जाने से भ्रम वश पदार्थ सर्वरूप समझा जा सकता है। भिन्न भिन्न पदार्थों में जो परस्पर व्यतिरेक है वह दृष्टि से लुप्त हो जाता है। जैसे 'घट है ही' ऐसा कहने से यह ग्रहण होना सम्भव है कि सभी द्रव्यों रूप से, सभी जगह, हर समय, हर प्रकार से वह हो वह है अर्थात् सर्व लोक में जो कुछ भी है सर्व घट रूप है।

११. केवल 'नास्ति' धर्म कहने में क्या हानि है ?

केवल नास्ति ही नास्ति कहते जाने से भ्रम वश पदार्थ का सर्वथा लोप होता प्रतीत होता है। जैसे कि 'घट नहीं ही है' ऐसा कहने से यह प्रतीत होता है कि लोक में घट नाम का कोई पदार्थ ही नहीं है। अथवा दूसरे पदार्थों के अभाव का नाम ही घट है, जैसे कि प्रकाश का अभाव अन्धकार।

१२. 'अस्ति नास्ति' तीसरे भंग को कहने से क्या लाभ है ?

पृथक-पृथक से पदार्थ का अस्तित्व व नास्तित्व कहने में कदाचित श्रोता का विरोध भासने लगे, कि पदार्थ है भी और नहीं भी सो कैसे, तो उसके विरोध को दूर करने के लिये तीसरा भंग प्रवृत्त हुआ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पदार्थ अपने रूप से सत् होते हुए भी सर्व रूप से सत् नहीं है, बल्कि पर रूप से असत् भी है। और पर रूप से असत् होते भी सर्व प्रकार असत् नहीं है, बल्कि अपने रूप से सत् भी है। अथवा इस भंग से घोषित होता है कि दूसरे का अभाव ही पदार्थ का सद्भाव या स्वरूप नहीं है बल्कि वह अपने जुदे स्वतंत्र स्वरूप को धारण करता है। जैसे अन्धकार के अभाव का नाम ही प्रकाश नहीं है, बल्कि उसका स्वरूप अन्धकाराभाव की अपेक्षा कुछ जुदा ही प्रतीति में आता है।

१३. 'अवक्तव्य' भंग का क्या अर्थ है तथा इससे क्या लाभ हैं ?

तीसरे भंग को भी सुनकर श्रोता यह नहीं जान पाया कि सत् और असत् धर्मों का यह क्रम केवल कथन में ही है, पदार्थ के स्वरूप में नहीं। पदार्थ तो दोनों का एक रसात्मक पिण्ड है। वह तो जैसा है वैसा ही है, जो कहा नहीं जा सकता। यही बात स्पष्ट करने के लिये यह चौथा 'अवक्तव्य' नाम वाला भंग है।

१४. पांचवें व छटे भंग से क्या लाभ ?

अवक्तव्य सुनकर कदाचित श्रोता यह सोच बैठे कि पदार्थ तो कहने व सुनने की वस्तु ही नहीं है, इसके सम्बन्ध में पूछना, तर्क करना, विचारना आदि सर्व प्रयास विफल है; तो उसके इस भ्रम को निवारण करने के लिये ये दोनों भंग हैं। इनके द्वारा बताया जाता है कि अवक्तव्य होते हुए भी पदार्थ की सत्ता स्वचतुष्टय अथवा परचतुष्टय के विकल्पों का आश्रय लेकर किंचित बताई अवश्य जा सकती है। जैसे घट को एक रसात्मक रूप से कहने लगें तो उसका अखण्ड रूप किसी भी शब्द द्वारा वक्तव्य नहीं है, फिर भी वह स्वरूप की अपेक्षा है ही और पर रूप से सदा व्यावृत है। इन दोनों धर्मों की युगपत प्रवृति सम्भव न होने से अवक्तव्य है, पर पृथक-पृथक कहने से वक्तव्य हो सकता है।

१५. 'अस्ति नास्ति अवक्तव्य' नाम के सातवें भंग का क्या लाभ ?

स्वरूप का सद्भाव, पररूप का अभाव, 'अखण्ड रूप की अवक्तव्य, इन तीनों धर्मों या विकल्पों की एक साथता दर्शाने के लिये वह सातवां भंग है। इसका यह अर्थ है कि ये सब बातें विधि निषेध के क्रम से कहने के द्वारा अथवा युगपत देखने के द्वारा पदार्थ में प्रत्येक समय पाई जाती हैं, पृथक-पृथक नहीं। जैसे, घट नाम के पदार्थ में घट के स्वरूप का सद्भाव, पट आदि अन्य पदार्थों के स्वरूप का अभाव और उनकी युगपत अव-

क्तव्यता एक साथ पाये जाते हैं ।

१६. इस प्रकार परस्पर के संयोग से तो अन्य भंग भी बन सकते हैं ?

नहीं, क्योंकि सात भंग कह चुकने पर आगे प्रश्न शान्त हो जाते हैं और संशय निवृत्त हो जाता है । सब प्रकार के संशयों का स्पष्टीकरण इन सात भंगों से हो जाता है और सकल विरोध विराम पाता है ।

१७ सत् असत् धर्मों में ही सप्त भंगी लागू होती है या अन्यत्र भी ?

सत् असत् इन दो विरोधी धर्मों की भांति सर्व ही विरोधी युगल धर्मों में नियोजित होती है, तथा विशदता के लिये नियोजित करनी चाहिये । इस प्रकार पदार्थ में जितने भी विरोधी युगल धर्म हैं, उतनी ही सप्तभंगियें समझनी चाहियें ।

१८. तत् अतत् धर्म युगल में सप्तभंगी दर्शाओ ।

पदार्थ में द्रव्य के सत्ता द्रव्य की अपेक्षा तत् है और गुण पर्यायों की अपेक्षा अतत् । दोनों की क्रम से नियोजना करने पर वह तत् होते हुए भी अतत् और अतत् होते हुए भी तत् है । दोनों धर्मों की युगपत अपेक्षा होने पर यद्यपि वह अवक्तव्य है, पर सर्वथा अवक्तव्य नहीं है । युगपत अखण्ड रूप से अवक्तव्य होते हुए भी द्रव्य रूप से तत् है तथा गुण पर्यायों रूप से अतत् है । इस प्रकार क्रम से व युगपत सभी विकल्प विचारने पर वह तत् अतत् अवक्तव्य तीनों रूप है ।

१९. एक अनेक धर्म युगल में सप्त भंगी दर्शाओं ?

तिर्यक् व ऊर्ध्वता सामान्य की अपेक्षा वह सर्वगुणों व पर्यायों में अनुगत होने से एक है तथा उन्हीं के विशेषों की अपेक्षा वह अनेक है । इस प्रकार एक होते हुए भी अनेक तथा अनेक होते हुए भी एक है । सामान्य विशेष दोनों को युगपत कहना अशक्य होने से अवक्तव्य है; पर उन्हें ही क्रम से कहें तो अवक्तव्य होते हुए भी एक अथवा अनेक है । इस प्रकार एक अनेक व अवक्तव्य तीनों धर्मों युक्त है ।

२०. **नित्य अनित्य धर्म युगल में सप्तभंगी दर्शाओ।**
अनेक पर्यायों में समवेत त्रिकाली अखण्ड द्रव्य की अपेक्षा करने पर नित्य है, और उसी की पर्यायों की ओर देखने पर वह अनित्य है। दोनों धर्मों की क्रम से योजना करने पर वह नित्य होते हुए भी अनित्य और अनित्य होते हुए भी नित्य है, पर युगपत कहना सम्भव न होने से वह अवक्तव्य है। अवक्तव्य होते हुए भी नित्य धर्म द्वारा अथवा अनित्य धर्म द्वारा अथवा दोनों धर्मों की क्रम प्रवृत्ति द्वारा वह वक्तव्य है।

२१. **क्या सर्वत्र सातों भंग कहने आवश्यक हैं ?**
नहीं, इन सातों में पहिले दो ही मूल हैं। शेष पाँच इनके संयोग से उत्पन्न होते हैं। सातों के प्रयोग में अभ्यस्त हो जाने के पश्चात उन दो मूल भंगों के प्रयोग से शेष पांच का अनुक्त ग्रहण हो जाता है। अतः व्यवहार में प्रायः 'स्यात् अस्ति' व 'स्यात नास्ति' वाले प्रथम दो भग ही प्रयुक्त होते हैं।

२२. **प्रथम दो मूल भंगों में क्या विशेषता है ?**
प्रथम दो भंग विधि निषेध के सूचक हैं। सर्व विवक्षित अपेक्षा से पदार्थ विधि रूप तथा अविवक्षित अपेक्षा से निषेध रूप है। इन दो के कहने से उसकी स्पष्ट सिद्धि हो जाती है; जैसे अपने पिता की अपेक्षा वह पुत्र ही है पिता नहीं। ऐसा कहने से उसके पुत्रत्व का स्पष्ट निर्णय हो जाता है। अतः सर्वत्र ये दो ही प्रधान हैं।

२३. **क्या सर्वत्र इन दोनों मूल भंगों का कहना भी आवश्यक है ?**
नहीं, विधि या निषेध किसी भी एक भंग के प्रयोग से भी प्रयोजन की सिद्धि हो जाती है, क्योंकि उनके साथ लगा हुआ एवकार स्वतः अपने प्रतिपक्षी धर्म का निषेध कर देता है, जैसे 'अपने पिता की अपेक्षा वह पुत्र ही है' ऐसा कहने पर स्वतः

समझ लिया जाता है कि अपने पिता की अपेक्षा पुत्र नहीं और पुत्र की अपेक्षा पिता नहीं। इसी प्रकार शेष भंगों का भी ग्रहण स्वत: हो जाता है।

२४. सप्तभंगी कितने प्रकार की है ?

दो प्रकार की— नय सप्तभंगी और प्रमाण सप्त भंगी।

२५. नय सप्तभंगी किसको कहते हैं ?

एवकार सहित भंगों का प्रयोग करना नय सप्तभंगी है, क्योंकि इससे एकान्त का ग्रहण होता है, और एकान्त ग्रहण का नाम ही 'नय' है।

२६. एवकार से एकान्त कैसे होता है ?

क्योंकि एवकार के प्रयोग द्वारा स्वत: अपनी विधि के साथ साथ तद्व्यतिरिक्त अन्य धर्मों का निषेध हो जाता है। एक धर्म को स्वीकार करके अन्य धर्मों का निषेध करना ही एकान्त है। परन्तु स्यात पदांकित होने से वह एकान्त सम्यक् है मिथ्या नहीं।

२७. प्रमाण सप्तभंगी किसको कहते हैं ?

प्रत्येक भंग के साथ 'एवकार या ही' के स्थान पर 'भी' का प्रयोग कर देने से वही प्रमाण सप्तभंगी बन जाती है, क्योंकि इस से अनेकान्त का ग्रहण होता है, और अनेकान्त का ग्रहण ही प्रमाण है।

२८. 'भी' के प्रयोग से अनेकान्त कैसे होता है ?

'भी' पद द्वारा विवक्षित धर्म के साथ साथ अन्य धर्मों का भी गौण रूप से ग्रहण हो जाता है, उनका निषेध नहीं होता। जैसे—'किसी अपेक्षा देवदत्त पिता भी है' ऐसा कहने पर स्वत: यह ग्रहण हो जाता है कि अन्य अपेक्षा वह पुत्र भी अवश्य होगा। अनेक धर्मों का युगपत ग्रहण ही अनेकान्त है। परन्तु स्यात् पदांकित होने से यह अनेकान्त सम्यक् होता है मिथ्या नहीं।

२६. 'ही' औ 'भी' के प्रयोग में क्या विवेक है ?

यदि विवक्षा स्पष्ट कह दी गई हो तो 'ही' का प्रयोग करना चाहिये, और यदि न कही गई हो तो 'भी' का प्रयोग करना चाहिये। जैसे 'अपने पिता की अपेक्षा' ऐसा कहने पर तो देवदत्त पुत्र ही है, पिता बिल्कुल नहीं है। अतः यहां 'ही' का प्रयोग आवश्यक है। परन्तु 'अपने पिता की अपेक्षा' ये शब्द न कहने पर देवदत्त को 'पुत्र ही है' ऐसा कहना नहीं बन सकता, क्योंकि ऐसा कहने से तो वह हर व्यक्ति का पुत्र ही बन जायेगा, पिता किसी का भी न हो सकेगा। इसलिये वहां 'देवदत्त' पुत्र भी है, ऐसा कहना ही युक्त है, जिससे कि सुनने वाला भ्रम में न पड़े और स्वयं समझ जाये कि देवदत्त केवल पुत्र ही नहीं किसी का पिता भी अवश्य है।

७/५. अनेकान्त योजना विधि

अनेकान्त का यह विषय क्यों पढ़ाया जा रहा है ?
मोक्षमार्ग विषयक सब विकल्पों में लागू क॰के विवेक उत्पन्न कराने के लिये तथा उनका विशद परिचय देने के लिये।
अनेकान्त किन किन विषयों पर लागू होता है ?
वस्तु स्वरूप, रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन. सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र व्रत, तप आदि सर्व विषयों पर लागू होता है।
प्रत्येक विषय पर अनेकान्त कैसे लागू होता है ?
नय के द्वारा, निक्षेप के द्वारा और प्रमाण के द्वारा।

अष्टम अध्याय

(नय-प्रमाण)

१ प्रमाणाधिकार

(१) प्रमाण किसको कहते हैं ?

(क) सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

(ख) सकलार्थ ग्राही ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

२. सच्चा ज्ञान किसको कहते हैं ?

पदार्थ के अनुरूप यथातथ्य ज्ञान को प्रमाण ज्ञान कहते हैं।

३. पदार्थ के अनुरूप ज्ञान क्या ?

जैसा पदार्थ है बिल्कुल वैसा ही ज्ञान होना अथवा पदार्थ का सांगोपांग ज्ञान में आना पदार्थ के अनुरूप ज्ञान है। क्योंकि पदार्थ अनेकान्त अर्थात अनेक धर्मात्मक है, इसलिये अनेकान्तात्मक ज्ञान ही पदार्थ के अनुरूप होने से सच्चा है।

४. ज्ञान अनेकान्त कैसे होता है ?

अनेक एकान्तों को मिलाने से ज्ञान अनेकान्त हो जाता है। एकान्त का अर्थ है नय। अत: अनेक नयों को मिलाने से ज्ञान अनेकान्त या प्रमाण बन जाता है।

५. अनेक नयों को मिलाने से क्या समझे ?

एक नय से वस्तु के किसी एक धर्म का निर्णय होता है। क्रम पूर्वक पृथक पृथक अनेक नयों के द्वारा पदार्थ के अनेक धर्मों का अपनी योग्यतानुसार धीरे धीरे निर्णय करते जाना चाहिये। इन अनेक धर्मों का ग्रहण यद्यपि ज्ञान में पृथक पृथक आगे पीछे हुआ है, परन्तु पदार्थ में ये सारे धर्म इस

प्रकार पृथक पृथक आगे पीछे नहीं रहते। वहां ये सब मिलकर एक रस बने रहते हैं, जैसे जीरे के पानी में सारे मसालों का स्वाद एक रसात्मक होता है। अतः ज्ञान में भी उन पृथक पृथक निर्णीत धर्मों का बुद्धि द्वारा मिश्रण करके कोई विचित्र एक रसात्मक भाव बनाना चाहिये। यही अनेक नयों का मिलाना है, और वस्तु के अनुरूप होने से सच्चा ज्ञान या प्रमाण है।

६. सकलार्थ ग्राही का क्या अर्थ ?

यथा सम्भव अनेक नयों का परस्पर में एक रस रूप से मिला हुआ ज्ञान ही सकलार्थ ग्राही कहा जाता है, क्योंकि इसमें पदार्थ के सकल अर्थ अर्थात सम्पूर्ण धर्म युगपत आ जाते हैं।

७. एक धर्म बोधक होने से नय ज्ञान सच्चा नहीं है ?

नहीं, क्योंकि नय के साथ ग्रहण किया गया 'स्यात्' या 'कथंचित' पद गौण रूप से अन्य धर्मों के अस्तित्व की सूचना देता रहता है इसलिये नय-ज्ञान भी सच्चा बना रहता है। 'स्यात्-कार' के बिना अवश्य वह नय मिथ्या या कुनयपने को प्राप्त हो जाती है। क्योंकि तब एकान्त से एक धर्म का बोध होगा। सत्ताभूत भी अन्य धर्मों का गौण रूप से ग्रहण होने की बजाये निषेध हो जायेगा। तब वह वस्तु के अनुरूप न रहने से मिथ्या बन जायेगा।

(८) प्रमाणाभास किसको कहते हैं ?

मिथ्या ज्ञान को प्रमाणाभास कहते हैं।

९. मिथ्याज्ञान से क्या समझे ?

पदार्थ के ज्ञान का न होना मिथ्याज्ञान है।

१०. पदार्थ के अनुरूप ज्ञान न होने का क्या तात्पर्य ?

अनेक धर्मों के द्वारा पृथक पृथक निर्णय किए गए अनेक धर्मों का परस्पर में सम्मेल न बैठना और मुंह से कहते रहना कि इसमें यह धर्म भी है और वह भी। वास्तव में उस वक्ता को

या तो नयों के शब्दों का ज्ञान है, या पृथक धर्मों का, परन्तु सर्व धर्मों का एक रसात्मक अखण्ड भाव का ज्ञान नहीं है।

११. **प्रमाणाभास कितने हैं ?**
तीन हैं—संशय, विपर्यय व अनध्यवसाय।

१२. **संशय किसको कहते हैं ?**
विरुद्ध अनेक कोटी स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे यह सीप है या चान्दी।

१३. **प्रमाणाभास में संशय कैसे घटित होता है ?**
नयों का पृथक पृथक बोध हो जाने पर जिसे उनके एक रसात्मक अखण्ड भाव का पता नहीं है, वह यह निर्णय नहीं कर पाता कि आखिर पदार्थ है कैसा—इस नय रूप या उस नय रूप। जैसे—निश्चय नय को सच्ची समझो या व्यवहार नय को, ऐसा ज्ञान।

(१४) **विपर्यय किसको कहते हैं ?**
विपरीत एक कोटि के निश्चय करने वाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं—जैसे सीप को चान्दी कहना।

१५. **प्रमाणाभास में विपर्यय कैसे होता है ?**
नयों का पृथक पृथक बोध हो जाने पर जिसे उनके एक रसात्मक भाव का पता नहीं है, वही अपनी मर्जी या रुचि से किसी एक नय वाले ज्ञान को तो सत्यार्थ या पदार्थ के अनुरूप मान लेता है और दूसरी नयों वाले ज्ञान को अभूतार्थ या अप्रयोजनभूत।

(१६) **अनध्यवसाय किसको कहते हैं ?**
'यह क्या है' ऐसे प्रतिभास को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे—मार्ग में चलते हुए तृणस्पर्श वगैरह का ज्ञान।

१७. **प्रमाणाभास में अनध्यवसाय कैसे होता है ?**
नयों का पृथक पृथक बोध हो जाने पर जिसे उनके एक रसात्मक भाव का ग्रहण नहीं है, वह न तो पदार्थ को एक नय रूप ग्रहण कर पाता है, और न दूसरी नय रूप। केवल कहता

रहता है कि पदार्थ इस नय से ऐसा है और उस नय से ऐसा है। जैसे—निश्चय से ऐसा है व्यवहार से ऐसा है इत्यादि।

१८. प्रमाण में संशय विपर्यय अनध्यवसाय क्यों नहीं होता ?

नयों के एक रसात्मक भाव का ग्रहण हो जाने पर, वह सम्यग्ज्ञानी व्यक्ति जो कुछ भी पढ़ता या सुनता है उसका ठीक ठीक समन्वय कर लेता है, इसलिये उसे संशय आदि नहीं हो पाते। अथवा तब वह न तो इतना मात्र कहकर सन्तुष्टि का अनुभव करता है, कि 'निश्चय नय से ठीक है, या व्यवहार नय से' और न एक नय को सत्यार्थ कहकर दूसरी नय का लोप करने का प्रयत्न करता है। न 'इस नय से ऐसा है इस नय से ऐसा है' इत्यादि प्रकार का वाग्विलास मान करके सन्तुष्ट होता है।

१९. समन्वय करना किसको कहते हैं ?

पदार्थ में जिस प्रकार से उसके वे वे विरोधी धर्म परस्पर मैत्री से यथास्थान जड़े हुए हैं, उसी प्रकार नयों के ज्ञान को अन्तरंग में यथास्थान फिर बैठा लेने को समन्वय करना कहते हैं। जैसे—निश्चय नय से जीव सदा मुक्त है सो ठीक है, क्योंकि स्वभाव से वैसा ही है तथा व्यवहार नय से जीव बद्ध है सो ठीक है, क्योंकि शरीरादि के संयोगवश वैसा ही है।

८/२. निक्षेपाधिकर

(१) निक्षेप किसको कहते हैं ?

युक्ति करके सुयुक्त मार्ग होते हुए कार्य के नाम से नाम स्थापना द्रव्य व भाव में पदार्थ के स्थापन को निक्षेप कहते हैं।

(२) निक्षेप के कितने भेद हैं ?

चार हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य व भाव।

(३) नाम निक्षेप किसको कहते हैं ?

जिस पदार्थ में जो गुण नहीं हैं उनको उस नाम से कहना, जैसे—किसी ने अपने लड़के का नाम 'सिंह' रखा। परन्तु उसमें सिंह जैसा गुण नहीं है।

(४) स्थापना निक्षेप किसको कहते हैं ?

साकार तथा निराकार पदार्थ में 'वह यही है' इस प्रकार का अवधान करके निवेश करने को स्थापना निक्षेप कहते हैं। जैसे पार्श्वनाथ की प्रतिबिम्ब को पार्श्वनाथ भगवान कहना अथवा सतरंज के मोहरे को 'हाथी' कहना।

(५) नाम और स्थापना में क्या भेद है ?

नाम निक्षेप में मूल पदार्थ की तरह सत्कार आदि की प्रवृत्ति नहीं होती, परन्तु स्थापना निक्षेप में होती है। जैसे—किसी ने अपने लड़के का नाम पार्श्वनाथ रख लिया तो उस लड़के का सत्कार पार्श्वनाथ भगवान की तरह नहीं होता, परन्तु पार्श्वनाथ की प्रतिमा का होता है।

(६) द्रव्य निक्षेप किसको कहते हैं ?

जो पदार्थ भूत व भावी परिणाम की योजना की योग्यता रखने वाला हो उसको (उस गुण वाला कहना) द्रव्य निक्षेप कहते हैं। जैसे—राजा के (युवराज) पुत्र को राजा कहना।

(७) भाव निक्षेप किसको कहते हैं ?

वर्तमान पर्याय संयुक्त वस्त्र को भावनिक्षेप कहते हैं। जैसे—राज्य करते पुरुष को राजा कहना।

८. चारों निक्षेपों में द्रव्य पर्याय ग्राहीपने का भेद करो ?

नाम व स्थापना द्रव्य को ग्रहण करते हैं, और द्रव्य व भाव निक्षेप पर्याय को। तथा नाम में द्रव्य की मनमानी कल्पना है और स्थापना में श्रद्धा मान्य कल्पना है। द्रव्य निक्षेप द्रव्य की भूत व भविष्यत की पर्यायों में द्रव्य की कल्पना करता है और भाव निक्षेप उसकी वर्तमान पर्याय में।

९. नय व निक्षेप में क्या अन्तर है ?

निक्षेप केवल कल्पना गत व्यवहार है और नय वस्तु स्वरूप का ज्ञान।

८/३ नय अधिकार

(१. नय सामान्य)

१. नय किसको कहते हैं ?

(क) वक्ता के अभिप्राय को नय कहते हैं ।

(ख) वस्तु के एक धर्म के जानने वाला ज्ञान नय है ।

(ग) श्रुत ज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं ।

(घ) एकान्त ग्रहण को नय कहते हैं ।

२. नय कितने प्रकार के होते हैं ?

दो प्रकार के सम्यक् व मिथ्या ।

३. सम्यक् नय किसको कहते हैं ?

सापेक्ष नय सम्यक् होती है, अर्थात अन्य नय या विवक्षा द्वारा गौण रूप से अविवक्षित धर्मों को भी स्वीकार करने वाली नय सम्यक् है ।

४. मिथ्या नय किसको कहते हैं ?

निरपेक्ष नय मिथ्या होती है, अर्थात अपेक्षा का लोप कर देने के कारण अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध करने वाली नय मिथ्या है ।

५. नय का कथन कितने प्रकार से होता है ?

दो प्रकार से--आगम पद्धति से व अध्यात्म पद्धति से ।

(२. आगम पद्धति)

६. आगम पद्धति किसको कहते हैं ?

जिसमें केवल पदार्थ के सामान्य विशेषात्मक स्वरूप का अथवा

उसकी शुद्धता अशुद्धता का परिचय देना मात्र इष्ट हो, वह आगम पद्धति है। इसमें हेयोपादेय का विवेक नहीं कराया जाता।

७- आगम पद्धति से नय के कितने भेद हैं ?

तीन हैं—ज्ञान नय, अर्थ नय और व्यञ्जन नय।

८- तीन नय मानने की क्या आवश्यकता ?

क्योंकि पदार्थ तीन प्रकार के हैं–ज्ञानात्मक, अर्थात्मक व व्यञ्जनात्मक। इसलिये उन उनको विषय करने वाली नय भी तीन होनी चाहिये।

९- ज्ञानात्मक पदार्थ से क्या तात्पर्य ?

ज्ञान में वस्तु का जो प्रतिभास पड़ता है वह ज्ञानात्मक पदार्थ है। जैसे--ज्ञान में गाय का आकार।

१०- अर्थात्मक पदार्थ से क्या तात्पर्य ?

जिसमें अर्थ क्रिया की प्राप्ति हो उसे अर्थात्मक पदार्थ कहते हैं, जैसे दूध देने वाली असली गाय।

११- व्यञ्जनात्मक पदार्थ से क्या तात्पर्य ?

वस्तु के वाचक शब्द को व्यञ्जनात्मक पदार्थ कहते हैं, जैसे–ब्लैक बोर्ड पर लिखा गया 'गाय' ऐसा शब्द।

१२. ज्ञानात्मक पदार्थ कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—सत् व असत्।

१३. सत् पदार्थ किसे कहते हैं ?

वर्तमान में विद्यमान पदार्थ को सत् कहते हैं, जैसे दृष्ट मनुष्य पशु आदि।

१४. असत् पदार्थ किसे कहते हैं ?

जो पदार्थ वर्तमान में विद्यमान नहीं है। या तो पहले था अब विनष्ट हो गया है, अथवा आगामी काल में उत्पन्न होगा, अभी उत्पन्न नहीं हुआ है। ऐसा पदार्थ असत् कहलाता है।

१५. सत् पदार्थ तो सम्भव है पर अनुत्पन्न व विनष्ट कैसे सम्भव है ?

अर्थक्रियाकारी पदार्थ के रूप में भले उसका बाहर में अस्तित्व न हो, परन्तु ज्ञान में उसका अस्तित्व अवश्य है। जैसे आपके ज्ञान में आपका मृत पिता सत् है।

१६. पदार्थ बड़ा है या ज्ञान ?

पदार्थ की अपेक्षा ज्ञान बड़ा है, क्योंकि पदार्थ तो वर्तमान पर्याय युक्त ही प्रतीति में आता है, पर ज्ञान उसकी त्रिकाली पर्याय युक्त होता है।

१७. ज्ञाननय किसको कहते हैं ?

ज्ञानात्मक पदार्थ के सम्बन्ध में विचार करने अथवा कहने वाली नय 'ज्ञाननय' है।

१८. अर्थनय किसको कहते हैं ?

अर्थात्मक पदार्थ के सम्बन्ध में विचार करने अथवा कहने वाली नय 'अर्थनय' है।

१९. व्यञ्जन नय किसको कहते हैं ?

व्यञ्जनात्मक पदार्थ के सम्बन्ध में विचार करने अथवा कहने वाली नय 'व्यञ्जन नय' है। शब्दात्म होने से इसे 'शब्दनय' भी कह देते हैं।

२०. ज्ञान में जाना गया सो ज्ञान नय और शब्द में बोला या लिखा गया सो शब्द नय; तीसरे अर्थनय की क्या आवश्यकता ?

ऐसा नहीं है, तुम नय के अर्थ को नहीं समझे। नय तो सर्वत्र ज्ञानात्मक ही होता है। ये भेद तो ज्ञेय की अपेक्षा से हैं। ज्ञेय तीन प्रकार के हैं—ज्ञान में ज्ञेय का आकार, असली ज्ञेय पदार्थ और ज्ञेय पदार्थ का वाचक शब्द। यदि ज्ञेयाकार को लक्ष्य करके विचारा या बोला गया हो या लिखा गया हो तो वे सब विचार या शब्द ज्ञान नय कहलायेंगे। यदि असली अर्थात्मक पदार्थ को लक्ष्य करके विचार अथवा बोला या लिखा गया है तो वे सब विचार और शब्द अर्थनय कहलायेंगे। और इसी

प्रकार यदि वाचक शब्द की धातु विभक्ति कारक लिंग आदि के सम्बन्ध में विचारा अथवा बोला या लिखा गया हो तो वे सब विचार या शब्द व्यंजन नय या शब्द नय कहलायेंगे।

२१. ज्ञाननय के कितने भेद हैं ?

केवल एक—नैगम नय।

२२. अर्थनय के कितने भेद हैं ?

दो—द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक।

२३. अर्थनय के दो भेदों का कारण क्या ?

क्योंकि अर्थात्मक पदार्थ द्रव्य गुण पर्याय युक्त होता है।

२४. द्रव्यार्थिक नय किसको कहते हैं ?

पर्याय अर्थात विशेषों को गौण करके जो ज्ञान पदार्थ के द्रव्यांश या सामान्यांश को ग्रहण करे उसे द्रव्यार्थिक नय कहते हैं जैसे पदार्थ को एक व नित्य कहना।

२५. द्रव्यार्थिक नय कितने प्रकार की है ?

तीन प्रकार की---नैगम नय, संग्रह नय, व्यवहार नय।

अथवा दो प्रकार की—शुद्ध द्रव्यार्थिक व अशुद्ध द्रव्यार्थिक।

२६. पर्यायार्थिक नय किसको कहते हैं ?

द्रव्य अर्थात सामान्य को गौण करके जो ज्ञान पदार्थ के पर्यायांश को अर्थात विशेषांश को ग्रहण करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं; जैसे पदार्थ को अनेक व अनित्य कहना।

२७. पर्यायार्थिक नय के कितने भेद हैं ?

केवण एक ऋजुसूत्र नय।

अथवा दो—शुद्ध पर्यायार्थिक व अशुद्ध पर्यायार्थिक।

अथवा चार—ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ व एवंभूत।

२८. द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक के साथ गुणार्थिक क्यों नहीं कही ?

द्रव्यार्थिक नय पदार्थ के सामान्यांश को ग्रहण करता है पर्यायार्थिक नय उसके विशेषांश को। सामान्य व विशेष में सर्व पदार्थ समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार पर्यायार्थिक नय क्रम-

भावी पर्यायों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार सहभावी पर्यायों या गुणों को भी ग्रहण कर लेता है। इसलिये तीसरी गुणार्थिक नय की आवश्यकता नहीं।

२९. व्यञ्जन नय कितने प्रकार की होती है ?

तीन प्रकार की---शब्द नय, समभिरूढ़नय व एवंभूतनय।

३०. शब्दादि तीनों व्यञ्जन नयों को पर्यायार्थिक में क्यों गिना गया ?

क्योंकि व्यञ्जन या शब्द स्वयं एक पर्याय है, द्रव्य नहीं।

३१. आगम पद्धति की अपेक्षा कुल नयों का चार्ट बनाओ।
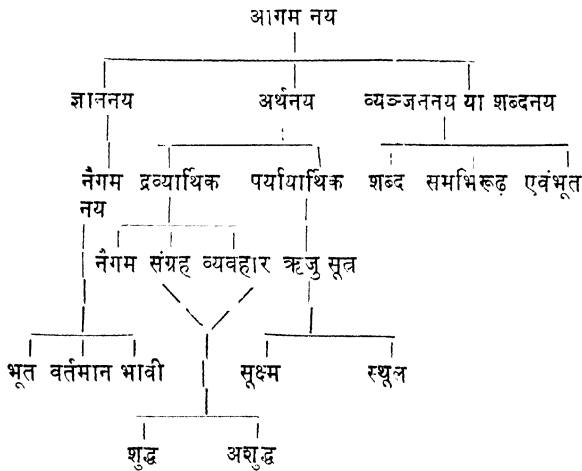
इस प्रकार आगम पद्धति की अपेक्षा मूल नय सात हैं—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ व एवंभूत।

३२. नैगमनय किसको कहते हैं ?

नैगम नय क्योंकि ज्ञाननय व अर्थनय दोनों विकल्पों में गिनी गई है, इसलिये इसके लक्षण भी दो प्रकार से किये जाते हैं—एक ज्ञान नय की ओर से दूसरा अर्थनय की ओर से।

(क) संकल्प मात्र ग्राही नैगमनय है। जैसे—भात पकाने का संकल्प करने पर ही चावलों को 'भात पकाता हूँ' ऐसा कहा जाता है। यह लक्षण ज्ञान नय की ओर से है, क्योंकि 'भात' नामक पदार्थ अनुत्पन्न होने के कारण बाहर में असत् है। उसका ग्रहण ज्ञान में ही हो रहा है।

(ख) जो संग्रह व व्यवहार दोनों नयों के विषय को मुख्य गौण करके युगपत ग्रहण करे वह नैगम नय है। जैसे—जो यह वस्तु समूह संग्रह नय की अपेक्षा एक जाति रूप है वही व्यवहार नय की अपेक्षा जीव अजीवादि अनेक जाति रूप है। यह लक्षण अर्थ नय की तरफ से है, क्योंकि सामान्य विशेष होने से उसी में एकता अनेकता सिद्ध होती हैं।

(ग) जो एक को ग्रहण करके दोनों को अर्थात सामान्यांश व विशेषांश दोनों को मुख्य गौण करके ग्रहण करे उसको नैगम नय कहते हैं। जैसे जो यह द्रव्य गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक भेद रूप कहा गया है वह अखण्ड एक रूप है।

३३. नैगम नय व प्रमाण दोनों ही सामान्य व विशेष को युगपत ग्रहण करते हैं, तब दोनों में क्या अन्तर ?

नैगम नय दोनों अंशों को मुख्य गौण के विकल्प पूर्वक ग्रहण करता है अथवा जानता है; जबकि प्रमाण उन्हें ही निर्विकल्प रूप से जानता है। इसलिये नैगमनय वक्तव्य है और प्रमाण अवक्तव्य।

३४. ज्ञान रूप नैगमनय कितने प्रकार का है ?

तीन प्रकार का–भूत नैगम, वर्तमान नैगम, भावी नैगम।

३५. भूत नैगमनय किसको कहते हैं ?

भतकाल में बीत गए विषय का वर्तमान में संकल्प करना भूत-

नैगमनय है। जैसे—आज दीपावली के दिन भगवान वीर निर्वाण पधारे।

३६. भावी नैगमनय किसको कहते हैं ?

आगामी काल में होने वाले विषय का संकल्प वर्तमान में करना भावी नैगमनय है। जैसे—प्रतिमा बनाने के संकल्प से लाये गये पाषाण खण्ड में 'यह प्रतिमा है' ऐसा व्यवहार करना।

३७. वर्तमान नैगमनय किसको कहते हैं ?

अर्ध निष्पन्न विषय को वर्तमान में निष्पन्न कहना वर्तमान नैगमनय है। जैसे—आग पर रखे अधपके चावलों को भात कहना।

३८. भावी व वर्तमान नैगमनय में क्या अन्तर है ?

भावी नैगमनय का विषय दूर निष्पन्न है अथवा उसकी निष्पत्ति में राम के राज्यभिषेक वत् विघ्न पड़ सकता है; परन्तु वर्तमान नैगमनय का विषय निकट निष्पन्न है। इसकी निष्पत्ति निश्चित है।

३९. अर्थ रूप नैगमनय कितने प्रकार का है ?

तीन प्रकार का—द्रव्य नैगम, पर्याय नैगम तथा द्रव्य पर्याय नैगम।

४०. द्रव्य नैगमनय किसको कहते हैं ?

किसी सामान्य धर्म द्वारा द्रव्य का निर्णय करने वाला अथवा द्रव्य द्वारा सामान्य धर्म का निर्णय करने वाला 'द्रव्य नैगम' है। जैसे—जो सत् है वही द्रव्य है और जो द्रव्य है वही सत् है।

४१. पर्याय नैगमनय किसको कहते हैं ?

किसी एक विशेष धर्म पर से किसी दूसरे विशेष धर्म का निर्णय करने वाला 'पर्याय नैगम' है। जैसे—जो वीतरागता है वही सुख है और जो सुख है वही वीतरागता है।

४२. द्रव्य पर्याय नैगमनय किसको कहते हैं ?

सामान्य धर्म पर से विशेष का और विशेष धर्म पर से सामान्य का निर्णय करने वाला 'द्रव्य पर्याय नैगमनय' है। जैसे—जो जीव है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है वही जीव है।

४३. संग्रहनय किसको कहते हैं ?

अपनी जाति का विरोध न करके अनेक विषयों का एक रूप से जो ग्रहण करे उसको 'संग्रहनय' कहते हैं। जैसे—एक 'सत्' कहने से सभी द्रव्यों का युगपत ग्रहण हो जाता है; अथवा 'जीव' कहने से चारों जाति के सभी जीवों का ग्रहण हो जाता है।

४४. संग्रहनय कितने प्रकार का है ?

दो प्रकार का—शुद्ध संग्रह और अशुद्ध संग्रह।

४५. शुद्ध संग्रहनय किसको कहते हैं ?

जो महा सत्ता को एक रूप से ग्रहण करे। जैसे—लोक में एक 'सत्' है और कुछ नहीं।

४६. अशुद्ध संग्रहनय किसको कहते हैं ?

जो अवान्तर सत्ता को एक रूप से ग्रहण करे। जैसे—जीव एक है, पुद्गल एक है, संसारी जीव एक है, इत्यादि।

(४७) महासत्ता किसको कहते हैं ?

समस्त पदार्थों के अस्तित्व को ग्रहण करने वाली सत्ता को महा सत्ता कहते हैं। (महा सत्ता की अपेक्षा जीव व अजीव सब सन्मात्र स्वरूप हैं)।

(४८) अवान्तर सत्ता किसको कहते हैं ?

किसी विवक्षित पदार्थ के अस्तित्व को अवान्तर सत्ता कहते हैं। जैसे—जीव की सत्ता में केवल जीव द्रव्य ही आते हैं अजीव नहीं।

४९. व्यवहार नय किसको कहते हैं ?

जो संग्रहनय से ग्रहण किये पदार्थ को विधिपूर्वक भेद करे, सो

व्यवहार नय है। जैसे—जीव को त्रस व स्थावर के भेद से दो प्रकार का कहना।

५०. **व्यवहार नय कितने प्रकार का है ?**
दो प्रकार का—शुद्ध व्यवहार व अशुद्ध व्यवहार।

५१. **शुद्ध व्यवहारनय किसको कहते हैं ?**
शुद्ध संग्रह के विषय को भेद करने वाला शुद्ध व्यवहार है। जैसे—जीव अजीव के भेद से 'सत्' दो भागों में विभाजित है।

५२ **अशुद्ध व्यवहारनय किसको कहते हैं ?**
अशुद्ध संग्रह के विषय को भेद करने वाला अशुद्ध व्यवहार है। जैसे—संसारी व मुक्त के भेद से जीव दो प्रकार का है।

५३, **ऋजुसूत्रनय किसको कहते हैं ?**
भूत भविष्यत की अपेक्षा न करके वर्तमान पर्याय मात्र को जो ग्रहण करे वो ऋजुसूत्र है। जैसे—बालक एक स्वतन्त्र पदार्थ है, युवा व वृद्ध कोई और ही हैं।

५४. **ऋजु सूत्रनय कितने प्रकार का है ?**
दो प्रकार का—सूक्ष्म व स्थूल।

५५. **सूक्ष्म ऋजुसूत्र किसको कहते हैं ?**
द्रव्य की षट्गुण हानिवृद्धि रूप अवस्थाओं में से किसी एक सूक्ष्म पर्याय मात्र को स्वतन्त्र द्रव्य रूप से ग्रहण करे सो सूक्ष्म ऋजुसूत्र है। इस नय को उदाहरण नहीं हो सकता क्योंकि सूक्ष्म पर्याय वचन गोचर नहीं है।

५६. **स्थूल ऋजुसूत्र किसे कहते हैं ?**
द्रव्य की स्थूल व्यञ्जन पर्याय में से किसी एक को स्वतन्त्र द्रव्य रूप से ग्रहण करे सो स्थूल ऋजुसूत्रनय है। जैसे—मनुष्य एक द्रव्य है अथवा बालक एक स्वतन्त्र व्यक्ति है जिसका संबंध वृद्धत्व से कुछ नहीं।

५७. **शब्दनय किसको कहते हैं ?**
ऋजु सूत्रनय के द्वारा ग्रहण किये गए एकार्थवाची शब्दों में से

केवल समान लिंग व वचन आदि वाले शब्दों को ही एकार्थवाची मानता है, भिन्न लिंगादि वालों को नहीं ।

५८. समभिरूढ़नय किसको कहते हैं ?

शब्द नय द्वारा ग्रहण किये गये समान लिंगादि वाले शब्दों का भी जो पृथक-पृथक अर्थ ग्रहण करता है, वह समभिरूढ़नय है । इस नय में एकार्थवाची शब्द नहीं होते । परन्तु एक अर्थ के लिये सर्वदा एक ही प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग किया जाता है । जैसे गाय को हर अवस्था में गाय कहना ।

५९. एवंभूतनय किसको कहते हैं ?

समभिरूढ़ नय के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ या पदार्थ को भी क्रिया की अपेक्षा लेकर भिन्न-भिन्न समयों में नाम देता है । जैसे—चलती हुई गाय को 'गाय' कहना बैठी हुई को नहीं ।

६०. जब सभी नय शब्दों द्वारा व्यक्त की जाती है, फिर ऋजुसूत्र को अर्थनय और शब्दादि को व्यंजननय क्यों कहा ?

नयें तो सभी की सभी शब्दों द्वारा ही व्यक्त की जाती हैं, परन्तु इस अपेक्षा नयों का भेद नहीं किया गया है । बल्कि शब्द का लक्ष्य किस ओर है इस अपेक्षा को लेकर किया गया है । ऋजु सूत्र नय तक प्रयोग किये गये शब्दों का लक्ष्य 'वाच्यपदार्थ' के सम्बन्ध में तर्क वितर्क करना है, और तीनों व्यञ्जन नयों में प्रयुक्त शब्दों का लक्ष्य, वाच्य पदार्थ का वाचक जो नाम या शब्द है, उसके सम्बन्ध में तर्क वितर्क करना है । अत: ऋजुसूत्र पर्यन्त की सब नयें अर्थ नयें हैं और आगे की तीन व्यञ्जन नयें ।

६१. इन सातों नयों का क्रम समझाओ ।

यह सात नयें पदार्थ को स्थल से सूक्ष्मतम रूप तक पढ़ना सिखाते हैं । अत: इनका क्रम स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम होता जाता है । नैगमनय का विषय सबसे महान है । संग्रहनय का विषय नैगमनय से अल्प है, परन्तु आगे वाले सभी नयों से महान है । व्यवहार नय का विषय संग्रहनय से भी अल्प है,

परन्तु आगे वाले सभी नयों से महान है। इसी प्रकार आगे भी जानना।

६२. सातों नयों के विषय की अल्पता व महानता दर्शाओ।

नैगमनय ज्ञानमय होने के कारण सबसे महान है, क्योंकि ज्ञान में सत् व असत् सभी सम्भव है। संग्रह व्यवहार व ऋजुसूत्र ये तीनों नयें अर्थ नय होने के कारण व सब मिलकर भी अकेली नैगमनय से अल्प विषयक हैं क्योंकि उनका विषयभूत क्रिया-कारी अर्थ सत् ही होता है असत् नहीं। शब्द, समभिरूढ़ व एवंभूत ये तीनों नयें व्यञ्जन नयें होने के कारण सबसे अल्प विषय वाले हैं, क्योंकि अर्थ की अपेक्षा उनका वाचक शब्द स्वयं उनकी अपेक्षा सूक्ष्म है।

अथवा विशेष रूप से कहने पर—'नैगमनय' ज्ञाननय व अर्थनय दोनों रूप है, इसलिये सब से महान है। तहाँ भी इसका अर्थनय वाला लक्षण ज्ञाननय वाले लक्षण से अल्प विषय वाला है, क्योंकि ज्ञानात्मक संकल्प सत् व असत् दोनों को स्पर्श करता है और अर्थ केवल सत् को ही।

अर्थनयों में भी नैगमनय सबसे महान है, क्योंकि वह संग्रह व व्यवहार दोनों के विषयों को युगपत अकेला ही ग्रहण कर लेता है। संग्रहनय नैगमनय से अल्प है, क्योंकि भेद को छोड़कर केवल अभेद को ग्रहण करता है। भेदग्राही होने के कारण व्यवहारनय संग्रह की अपेक्षा भी अल्प है, क्योंकि अभेद की अपेक्षा भेद छोटा माना गया अथवा सामान्य की अपेक्षा विशेष छोटा होता है। व्यवहार के विषय में से भी त्रिकाली सामान्य अंश को छोड़कर केवल वर्तमान समयवर्ती किसी एक अंश को ग्रहण करने के कारण ऋजुसूत्र उससे भी अल्प विषय वाला है।

शब्दादि तीनों व्यञ्जन नयें मिलकर भी एक ऋजुसूत्र से अल्प विषय वाले हैं, क्योंकि इनका व्यापार अर्थ में न होकर केवल

उसके वाचक शब्द में होता है। तहाँ ऋजुसूत्र नय तो भिन्न लिंग कारक आदि वाले अनेक शब्दों का भी एक ही अर्थ ग्रहण कर लेता है, और उनके वाच्यार्थ में भेद का विकल्प नहीं करता। परन्तु शब्दनय केवल समान लिंग कारक आदि वाले शब्दों की ही एकार्थता स्वीकार करता है, भिन्न लिंग आदि वालों की नहीं। इसलिये शब्दनय ऋजुसूत्र से अल्प विषय वाला है।

समभिरूढ़ नय शब्द नय के विषयभूत समान लिंग कारक आदि वाले एकार्थवाची शब्दों में भेद करके उनका भिन्न भिन्न अर्थ स्वीकार करता है, इसलिये इसका विषय शब्दनय से अल्प है। प्रत्येक शब्द को भिन्नार्थ वाची मानकर भी समभिरूढ़ नय पदार्थ की सर्व अवस्थाओं में उसे एक ही नाम देता है, परन्तु एवंभूत इतना अभेद भी पसन्द नहीं करता। वह पदार्थ की भिन्न समयवर्ती पृथक-पृथक भिन्न क्रियाओं को आश्रय करके, उसे प्रत्येक अवस्था में भिन्न नाम प्रदान करता है। क्रिया या अवस्था बदल जाने पर यहाँ उसका नाम भी बदल जाता है। इसलिये समभिरूढ़ की अपेक्षा भी एवंभूत का विषय अत्यल्प है, जिसके पश्चात शब्द में और सूक्ष्मता लाना संभव नहीं।

६३. शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसको कहते हैं?

अभेदरूप से सामान्य का कथन करने वाला संग्रह नय शुद्ध द्रव्यार्थिक है; अथवा पर्यायों को न देखकर त्रिकाली शुद्ध तत्व का विवेचन करना इसका काम है।

६४. अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसको कहते हैं?

भेद रूप से सामान्य का कथन करने वाला व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक है; अथवा स्थूल द्रव्य पर्यायों का आश्रय करके उसको द्रव्य रूप से विवेचन करना इसका काम है।

६५. शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसको कहते हैं?

शुद्ध अर्थ पर्याय का कथन करने वाला सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय शुद्ध

पर्यायार्थिक है। एक समयवर्ती अर्थपर्याय का द्रव्य रूप से विवेचन करना इसका काम है।

६६. अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसको कहते हैं ?

अशुद्ध या स्थूल व्यंजन पर्याय का कथन करनेवाला स्थूल ऋजु सूत्रनय अशुद्ध पर्यायार्थिक है। वर्तमान काली अवस्था का ही विवेचन करना इसका काम है।

६७. स्थूल व्यञ्जन पर्यायग्राही होने से व्यवहार व ऋजुसूत्र दोनों को ही समान क्यों न कहा ?

नहीं, क्योंकि व्यवहार नय उन भेदों को पृथक-पृथक पदार्थ नहीं मानता उन भेदों द्वारा अथवा विश्लेषण द्वारा संग्रहनय के सामान्य का ही स्पष्टी करता है, जब कि स्थूल ऋजुसूत्र उसके किसी एक भेद को स्वतंत्र द्रव्य या सत् मानकर बात करता है।

(३ अध्यात्म पद्धति)

६८. अध्यात्म पद्धति किसको कहते हैं ?

जिसमें पदार्थों की शुद्धता व अशुद्धता दर्शाकर उनमें हेयोपादेय बुद्धि उत्पन्न कराना इष्ट हो उसे अध्यात्म पद्धति कहते हैं।

६९. अध्यात्म पद्धतिं से नय का क्या लक्षण है ?

जो ज्ञान वस्तु के एक अंश को ग्रहण करे उसको नय कहते हैं।

७०. वस्तु के कितने अंश प्रधान हैं ?

दो सामान्य व विशेष अथवा अभेद व भेद अथवा द्रव्य व पर्याय। सामान्य, अभेद, द्रव्य एकार्थवाची हैं और विशेष भेद व पर्याय एकार्थवाची हैं।

७१. नय के कितने भेद हैं ?

दो भेद हैं—निश्चय व व्यवहार।

७२. निश्चय नय किसको कहते हैं ?

जो समस्त द्रव्य को अभेद रूप से ग्रहण करे, अर्थात उसमें गुण गुणी भेद न करके गुणों व पर्यायों के साथ तादात्म्य भाव

को स्वीकार करे उसे निश्चय नय कहते हैं। जैसे—जीव ज्ञान स्वरूप है या ज्ञानात्मक है ऐसा कहना अभेद व तादात्म्य सूचक होने से निश्चय नय है।

७३. निश्चयनय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—शुद्ध और अशुद्ध।

७४. शुद्ध निश्चय नय किसको कहते हैं ?

शुद्धगुण व शुद्ध पर्याय के साथ द्रव्य को अभेद दर्शाने वाला शुद्ध निश्चयनय है। जैसे-'ज्ञानस्वरूप जीवतत्व है' अथवा 'केवल ज्ञानस्वरूप सिद्ध भगवान हैं' ऐसा कहना।

७५. अशुद्ध निश्चय नय किसको कहते हैं ?

अशुद्ध पर्यायों के साथ द्रव्य का तादात्म्य दर्शानेवाला अशुद्ध निश्चय नय है। जैसे—'मतिज्ञान स्वरूप संसारी जीव है'। (गुण अशुद्ध नहीं होता पर्याय ही होती है, इसलिये गुण के साथ तादात्म्य वाला विकल्प यहां घटित नहीं होता)।

७६. व्यवहार नय किसको कहते हैं ?

अभेद द्रव्य में गुण-गुणी भेद करने वाला अथवा भिन्न प्रदेश-वर्ती अनेक द्रव्यों में निमित्तादि की अपेक्षा अभेद करने वाला उपचार व्यवहार नय कहलाता है।

७७. उपचार किसे कहते हैं ?

प्रयोजन वश, मूल वस्तु के अभाव में, उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने वाली अन्य वस्तु को अन्य वस्तु रूप कहना उपचार है। जैसे सिंह के अभाव में सिंह की पहचान कराने के लिये, शक्ल सूरत में समानता होने के कारण बिल्ली को सिंह कह देना।

७८. उपचार कितने प्रकार का होता है ?

अनेक प्रकार का होता है। जैसे—द्रव्य को गुण का उपचार, द्रव्य में पर्याय का उपचार, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का उपचार; एक गुण में दूसरे गुण का उपचार, गुण में द्रव्य का उपचार,

गुण में पर्याय का उपचार; एक पर्याय में दूसरी पर्याय का उपचार, पर्याय में गुण का उपचार, पर्याय में द्रव्य का उपचार; कारण में कार्य का उपचार, कार्य में कारण का उपचार आदि।

७९. व्यवहार नय के कितने भेद हैं ?

दो हैं—सद्भूत और असद्भूत।

८०. सद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

एक अखण्ड पदार्थ में गुण-गुणी अथवा पर्याय-पर्यायी रूप भेदोपचार करने को सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे—जीव में ज्ञान गुण है, ऐसा कहना भेदोपचार है।

८१. सद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का है ?

दो प्रकार का—शुद्ध सद्भूत व अशुद्ध सद्भूत।

८२. शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

शुद्ध गुण तथा शुद्धगुणी में अथवा शुद्ध पर्याय तथा शुद्ध पर्यायी में भेदोपचार करने को शुद्ध सद्भूत नय कहते हैं। जैसे—'जीव में ज्ञान गुण है' अथवा 'सिद्ध भगवान केवल ज्ञानधारी हैं।'

८३. अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

अशुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्यायी में भेदोपचार करने वाला अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है। जैसे-संसारी जीव रागद्वेष वाला होता है। यहां गुण गुणी भेद सम्भव नहीं क्योंकि गुण अशुद्ध नहीं होता।

८४. असद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

अनेक भिन्न पदार्थों में अभेदोपचार करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे—'घी का घड़ा' ऐसा कहना।

८५. असद्भूत व्यवहारनय कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का–उपचरित असद्भूत और अनुपचरित असद्भूत।

८६. उपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

आकाश क्षेत्र में ही बिल्कुल पृथक पड़े हुए पदार्थों में एकता या अभेदोपचार करने वाला उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

जैसे—घर व धन आदि मेरा है, ऐसा कहना।

८७. अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

संश्लेश सम्बन्ध को प्राप्त भिन्न पदार्थों में एकता या अभेदोपचार करनेवाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय है जैसे—शरीर मेरा है, ऐसा कहना।

८८. निश्चयनय व सद्भूत व्यवहार नय में क्या अन्तर है ?

निश्चय नय तत्स्वरूपता रूप से कथन करता है और सद्भूत व्यवहार नय उस गुणवाला या गुणधारी अथवा इसमें यह गुण है, इस प्रकार से भेदोपचार कथन करता है।

८९. इन सर्व नयों में सप्तभंगी कैसे घटित होती है ?

पदार्थ के सामान्य या विशेष अंगों में से नय किसी एक अंश को मुख्य करके कथन करता है और दूसरे अंश को उस समय गौण कर देता है। उसका यह गौण करना ही अनुक्त रूप से अन्य धर्म का निषेध करना है। इस प्रकार प्रत्येक नय में विधि निषेध की प्रतीति होती है। यह विधि निषेध ही सातों भंगों में प्रथम व द्वितीय प्रधान भंग हैं, जिनके सम्मेल से अगले पांच भंग भी बन जाते हैं जैसे—निश्चय नय से जीव ज्ञानमयी ही है, ज्ञान से पृथक अर्थात व्यवहार रूप नहीं है।

९०. निश्चयनय और व्यवहारनय का समन्वय करो।

निश्चय सामान्यांश ग्राही है, और व्यवहारनय विशेषांशग्राही है। पदार्थ युगपत सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य के बिना विशेष और विशेष के बिना सामान्य आकाश पुष्पवत् असत् हैं। पदार्थ के स्वरूप में इन दोनों अंशों में से कोई भी मुख्य गौण नहीं है। दोनों अंग अपने रूप से सत्य है।

इसी प्रकार इन दोनों अंशों को ग्रहण करने वाले ये दोनों नयें भले ही कथन क्रम के कारण मुख्य व गौण रूप से आगे पीछे वर्तते हों, परन्तु प्रमाण ज्ञान युगपत दोनों त्रयी हैं। निश्चय के बिना व्यवहार और व्यवहार के बिना निश्चय दोनों आकाश

पुष्पवत् असत् हैं। प्रमाण ज्ञान में इन दोनों में से कोई भी मुख्य व गौण नहीं। दोनों नये अपने-अपने रूप से सत्य हैं।

९१. आगम में निश्चयनय को भूतार्थ और व्यवहार नय को अभूतार्थ कहा है।

वहां भूतार्थ अभूतार्थ का अर्थ ठीक-ठीक समझना चाहिये। व्यवहारनय अभूतार्थ है, ऐसा कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि व्यवहार नय कल्पना मात्र है या गधे के सींगवत् असत् है या व्यर्थ बहकाने के लिये कह दिया गया है। वास्तव में अपने-अपने स्थान पर दोनों सत्य हैं।

९२. भूतार्थ व अभूतार्थ का क्या अर्थ है ?

जैसा पदार्थ है वैसा ही कथन करना भूतार्थ है, और जैसा पदार्थ वास्तव में नहीं है वैसा कथन करना अभूतार्थ है।

९३. निश्चयनय भूतार्थ कैसे है ?

पदार्थ वास्तव में अपने गुण-पर्यायों के साथ तन्मय रहने के कारण एक अखण्ड सत्स्वरूप है व तादात्मक है। निश्चय नय उसका ऐसे ही शब्दों में विवेचन करता है, इसलिये भूतार्थ है।

९४. व्यवहारनय अभूतार्थ कैसे है ?

पदार्थ की सत्ता वास्तव में अपने गुण पर्यायों की सत्ता से पृथक नहीं है, फिर भी व्यवहार नय उसका 'द्रव्य गुण पर्याय वाला द्रव्य है' 'द्रव्य में अमुक अमुक गुण हैं' इत्यादि प्रकार से भेद कथन करता है। उसके कथन पर से ऐसा लगता है, मानों द्रव्य-गुण पर्याय तीनों कोई भिन्न पदार्थ हों जो संयोग या समवाय सम्बन्ध द्वारा मिला दिये गए हैं। (एकात्म अभेद द्रव्य को इस प्रकार भेद रूप कहना अभूतार्थ है, गधे के सींगवत् अभूतार्थ नहीं क्योंकि उसके वाच्यभूत गुण पर्यायों की सत्ता अपने स्वरूप से है अवश्य)

अथवा जितने भी दृष्ट पदार्थ हैं वे वास्तव में द्रव्य नहीं उनकी विभाव व्यञ्जन पर्यायें हैं, फिर भी उन्हें द्रव्य कहता है, इस-

लिये अभूतार्थ है। यद्यपि ये सब व्यवहार द्रव्य भी क्षण-क्षण परिणमनशील होने के कारण बदल रहे हैं, फिर भी इन्हें ध्रुव सत्ताधारीवत् कथन करता है, इसलिये अभूतार्थ है।

९५. सद्भूत व्यवहारनय भले सत्य रहा आवे, पर असद्भूत व्यवहार नय तो सर्वथा असत्य है ही।

नहीं; ऐसा नहीं है। असद्भूत व्यवहार को भी सर्वथा असत्य मानना योग्य नहीं; क्योंकि वह नय दो पदार्थों की किसी संयोगी-अवस्था-विशेष का परिचय देता है। यद्यपि सत्ताभूत मूल पदार्थ की ओर लक्ष्य ले जानेपर संयोगी पदार्थों की कोई सत्ता प्रतीत नहीं होती, न ही उनमें कोई सम्बन्ध प्रतीत होता है, परन्तु इस लोक में संयोगी पदार्थों की सत्ता बिल्कुल न हो अथवा उनमें कुछ सम्बन्ध भी देखा न जा रहा हो, ऐसा नहीं है। संयोग का नाम ही वास्तव में लोक है, इसका सर्वथा लोप कर देने पर तो भूतार्थ अभूतार्थ का निर्णय करने वाले आप भी कहां हो। अतः संयोगी दृष्टि से देखने पर वे सब पदार्थ तथा उनके सम्बन्ध भूतार्थ हैं।

दूसरे प्रकार से यों कह लीजिये कि शुद्ध अध्यात्म दृष्टि में सर्वत्र त्रिकाली स्वभाव का ग्रहण होता है उसकी उपाधियों का अथवा औपाधिक भावों का नहीं। अतः उस दृष्टि में संयोगी पदार्थ असत् है और इसलिये उसका प्रतिपादन करने वाला यह नय भी अभूतार्थ है।

(४ नय योजना विधि)

९६. नय का यह विषय क्यों पढ़ाया जा रहा है?

मोक्षमार्ग सम्बन्धी सर्व विषयों में लागू करके विवेक उत्पन्न कराने के लिये अथवा पदार्थ का विशद परिचय देने के लिये।

९७. नय किन-किन विषयों पर लागू होते हैं?

वस्तुस्वरूप, रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, व्रत, तप आदि सर्व विषयों पर लागू होते हैं।

९८. उपरोक्त सर्व विषयों में कौन-कौन सी नय लागू होती हैं ?

मूल नय दो ही हैं—निश्चय व व्यवहार। निश्चय अभेद रूप सामान्य को दर्शाता है और व्यवहार भेद रूप विशेष को अतः इन दोनों को लागू कर देने पर समस्त नय यथायोग्य रूप से स्वतः लागू हो जाती हैं, क्योंकि सामान्य विशेष का समन्वय हो जाने पर अन्य कुछ शेष नहीं रह जाता है।

९९. वस्तुस्वरूप में निश्चय व व्यवहारनय लागू करके बताओ।

'पदार्थ या वस्तु अनेक गुणों व पर्यायों वाली है', ऐसा भेद रूप कथन करना व्यवहार नय है, और 'वही वस्तु उन गुण पर्यायों के साथ तन्मय एक अखण्ड रसस्वरूप है' ऐसा अभेद कथन करना निश्चय नय है।

१०० रत्नत्रय में निश्चय व व्यवहार लागू करो।

'रत्नत्रय सम्दग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इस प्रकार तीन रूप है' ऐसा भेद कथन करना व्यवहार है, और 'वही रत्नत्रय उन तीनों को एक रसरूप अखण्ड आत्म समाधि है' ऐसा अभेद कथन करना निश्चय है।

१०१. सम्यग्दर्शन में निश्चय व्यवहार लागू करो।

'विकल्प रूप से सातों तत्वों की श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है' ऐसा पराश्रित व भेद कथन करना व्यवहार है, और 'वही सम्यग्दर्शन उन्हीं सातों तत्वों में अनुस्यूत एक अखण्ड ज्ञायक भाव का दर्शन करना है' ऐसा स्वाश्रित व अभेद कथन करना निश्चय है।

१०२. सम्यग्ज्ञान में निश्चय व्यवहार लागू करो।

'आगमज्ञान अथवा आगम प्रतिपादित तत्वों का पृथक पृथक वाच्य वाचक ज्ञान सम्यग्ज्ञान है' ऐसा भेद कथन व्यवहार है। 'अन्य तत्वों व पदार्थों से विलक्षण एक अखण्ड निजस्वरूप का स्वसंवेद सम्यग्ज्ञान है' ऐसा स्वाश्रित अभेद कथन निश्चय है।

१०३. सम्यक्चारित्र पर निश्चय व्यवहार लागू करो ।

'अन्य पदार्थों के त्याग रूप व्रत, वचन व काय आदि यथाचारी प्रवृत्ति रूप समिति, तथा मन वचन काय के भावों व कार्यों में अत्यन्त विवेक रूप गुप्ति आदि सम्यक् चारित्र है' ऐसा पराश्रित व भेद रूप कथन व्यवहार है, और पदार्थों से विरक्ति रूप व्रत, अन्तरंग प्रवृत्ति रूप समिति तथा मन वचन काय की क्रियाओं से निवृत्ति रूप गुप्ति आदि सब एकमात्र आत्म-रमणता में स्वयं गर्भित हैं' ऐसा स्वाश्रित अभेद कथन निश्चय है ।

१०४. व्रत पर निश्चय व्यवहार लागू करो ।

'हिंसा आदि पराश्रित पापों व विषयों का त्याग करना व्रत है' ऐसा पराश्रित भेद कथन व्यवहार है, और 'विष आत्म रमणता में तृप्ति के कारण बाह्य विषयों के प्रति स्वाभाविक विरक्ति व्रत है' ऐसा स्वाश्रित अभेद कथन निश्चय है ।

१०५. तप पर निश्चय व्यवहार लागू करो ।

'अनशन व कायक्लेश आदि रूप बाह्य तप अथवा प्रायश्चित्तादि रूप अन्तरंग तप करना तप है' ऐसा पराश्रित भेद कथन व्यवहार है, और 'एकमात्र आत्मस्वरूप में प्रतपन होने से बाह्य के विघ्न बाधायें सब असत् होकर रह जाती हैं, यही तप है' ऐसा स्वाश्रित अभेद कथन निश्चय है ।

१०६. उपरोक्त सर्व विषयों में व्यवहार व निश्चय के लक्षण कैसे घटित होते हैं ?

जिस विषय का कथन भेद करके किया जाता है, वहां सद्भूत व्यवहार नय घटित होता है । जिस विषय का कथन पर का आश्रय लेकर किया जाता है वहां असद्भूत व्यवहार नय घटित होता है । जिस विषय का कथन स्वाश्रित तथा अभेद रूप से किया जाता है, वहां निश्चय नय घटित होता है ।

(५. समन्वय)

१०७ सर्व विषयों में नय लागू करने से क्या लाभ ?

उन विषयों के स्वरूप में अथवा तत्सम्बन्धी कथन में दीखने वाले विरोध प्रतीत होते हैं, उनका समन्वय करके ज्ञान को सरल व व्यापक बनाना ही नय प्रयोग का प्रयोजन है।

१०८ समन्वय किसको कहते हैं ?

कथन क्रम में भ्रान्तिवश भासमान होने वाले विरोधों को दूर करके उनमें मैत्री की स्थापना करना समन्वय है।

१०९. समन्वय कितने प्रकार से किया जाता है ?

दो प्रकार से—आगे पीछे क्रमपूर्वक बर्तने वाले धर्मों में तो साधन साध्य भाव दिखाकर, और युगपत बर्तने वाले धर्मों में परस्पर अविनाभाव दिखाकर।

११०. साधन साध्य भाव क्या ?

कारण पूर्वक कार्य का उत्पन्न होना साधन साध्य भाव है, जैसे कुम्हार द्वारा अथवा मिट्टी के लोष्ट द्वारा घड़ा उत्पन्न होना।

१११. साधन साध्य भाव कितने प्रकार का होता है ?

दो प्रकार का—निमित्त नैमित्तिक और उपादान उपादेय।

११२. निमित्त नैमित्तिक भाव किसको कहते हैं ?

दो भिन्न द्रव्यों में जहां कारण कार्य भाव देखा जाय, वहां कारण को निमित्त कहते हैं और कार्य को नैमित्तिक। जैसे—घड़े की उत्पत्ति में कुम्हार निमित्त है और घट रूप कार्य नैमित्तिक। वहां ऐसा कहने में कि 'कुम्हार ने घड़ा बनाया या उसके निमित्त से घड़ा बना' कुम्हार साधन है और घट साध्य।

११३. उपादान उपादेय भाव किसको कहते हैं ?

एक ही द्रव्य में उसकी पूर्ववर्ती पर्याय कारण है और उत्तर-वर्ती पर्याय कार्य है, जैसे—मिट्टी का पिण्ड उपादान कारण और घड़ा उपादेय कार्य। तहां 'मिट्टी ने घड़ा बनाया अथवा

मिट्टी द्वारा घड़ा बना' ऐसा कहने में मिट्टी साधन और घड़ा साध्य। इसी प्रकार यथा योग्य सर्वत्र लगा लेना।

११४. दोनों प्रकार के साधन साध्य भाव किस किस नय के विषय हैं?

निमित्त नैमित्तिक रूप साधन साध्य भाव पराश्रित होने के कारण असद्भूत व्यवहार नय का विषय है। और उपादान उपादेय रूप साधन साध्य भाव एक ही द्रव्य के क्रमवर्ती विशेष होने के कारण सद्भूत व्यवहार नय का विषय है।

११५. युगपत धर्मों में अविनाभाव किसको कहते हैं?

जहां एक धर्म रहता है वहां दूसरा धर्म भी अवश्य हो और जहां वह धर्म नहीं होता वहां दूसरा भी न रहे, इसे अविनाभाव कहते हैं। जैसे—जहां जहां धुआं है वहां वहां अग्नि अवश्य होती है और जहां जहां अग्नि नहीं होती वहां वहां धुआं भी नहीं होता।

११६. वस्तु स्वरूप में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ।

यद्यपि पदार्थ के स्वरूप में सामान्य विशेष को कोई सत्ताभूत भेद नहीं है, फिर भी भेद किये बिना कहना असम्भव है। इसलिये वक्ता व श्रोता दोनों को सर्वप्रथम उसका स्वरूप समझने या समझाने के लिये भेद ग्राहक व्यवहार का आश्रय लेना पड़ता ही है, क्योंकि ऐसा करने से ही उसका अभेद निश्चय स्वरूप समझ में आता है। अतः तहां व्यवहार द्वारा कथन करना साधन है और निश्चय स्वरूप का समझना साध्य है। यहां सद्भूत व्यवहार वाला साधन साध्य भाव समझना।

११७. रत्नत्रय में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ।

यद्यपि रत्नत्रय का यथार्थ स्वरूप निर्विकल्प समाधि में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूप विकल्प या भेद नहीं है, फिर भी भेद किये बिना उस का समझना समझाना तथा साक्षात ग्रहण करना असम्भव है। इसलिये साधक को अपनी

प्रारम्भिक भूमिकाओं में व्यवहार रूप विकल्पात्मक या भेद रत्नत्रय का आश्रय लेना ही पड़ता है, क्योंकि ऐसा करने से गुणस्थान परिपाटी के अनुसार क्रमपूर्वक ऊपर चढ़ते हुए अन्त में निश्चय रत्नत्रय रूप समाधि प्राप्त हो जाती है। इसलिये वहाँ व्यवहार रत्नत्रय साधन है और निश्चय रत्नत्रय साध्य है। यहां सद्भूत व्यवहार वाला साधन साध्य भाव समझना।

११८. सम्यग्दर्शन में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ।

यद्यपि सम्यग्दर्शन के विषयभूत आत्मा में सातों तत्वों का कोई सत्ताभूत भेद नहीं है, फिर भी भेद किये बिना उसका कथन करना अथवा समझना व समझाना अथवा उसे साक्षात प्राप्त करना अशक्य है। ऐसे साधक को सर्वप्रथम सात तत्वों के यथार्थ स्वरूप का निर्णय पड़ता ही है क्योंकि ऐसा करने से ही उन सात तत्वों में अनुस्यूत एक चेतन अभेद आत्म तत्व का दर्शन होता है। इसलिये तहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन साधन है और निश्चय सम्यग्दर्शन साध्य है। 'तत्व' द्रव्य व भाव दोनों प्रकार से कहे जाने के कारण यहां भी सद्भूत व असद्भूत दोनों प्रकार का साधन साध्य भाव समझना।

११९. सम्यग्ज्ञान में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ।

यद्यपि सम्यग्ज्ञान के विषयभूत स्वसंवेदन प्रत्यक्ष में स्व व पर का कोई सत्ताभूत पार्थक्य दृष्टिगत नहीं होता, फिर भी भेद किये बिना उसका कथन तथा समझना समझाना अथवा साक्षात प्राप्त करना शक्य न होने से साधक को सर्व प्रथम बुद्धिपूर्वक स्व व पर का विकल्प जागृत करना पड़ता ही है, क्योंकि ऐसा करने से ही क्रमपूर्वक वह आगे जाकर उसे स्व-संवेदन उत्पन्न होता है। इसलिये तहां भी व्यवहार सम्यग्ज्ञान साधन है और निश्चय सम्यग्ज्ञान साध्य है। यहां 'पर' से पृथक विचारने या कहने के कारण असद्भूत और अपने अन्दर

में ज्ञान ज्ञेय के विकल्प होने के कारण सद्भूत, ऐसे दोनों प्रकार का साधन साध्य भाव समझना ।

१२०. सम्यक्चारित्र में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ ।

यद्यपि सम्यक्चारित्र के विषयभूत साम्यता या आत्मस्थिरता में व्रतादि के कोई विकल्पात्मक भेद नहीं हैं, फिर भी भेद किये बिना उसका समझना या समझाना अथवा साक्षात प्राप्त करना अशक्य होने से साधक को अपनी प्रारम्भिक भूमिका में वैराग्य वृद्धि तथा वासना क्षति के अर्थ व्रतादि धारण करने पड़ते ही हैं, क्योंकि ऐसा करने से क्रम पूर्वक आगे जाकर सम्पूर्ण विकल्प शान्त हो जाने पर बस वह परम साम्य रूप स्वत: उछलने लगता है । इसलिये तहां भी व्यवहार सम्यक्चारित्र साधन है और निश्चय सम्यक्चारित्र साध्य है । यहां भी यथायोग्य सद्भूत व असद्भूत दोनों प्रकार का साधन साध्य भाव जानना ।

१२१. व्रत में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ ।

यद्यपि व्रत की विषयभूत विरक्ति भाव में पदार्थों के ग्रहण त्याग आदि के कोई विकल्पात्मक भेद नहीं हैं, फिर भी भेद किये बिना उसका कथन करना तथा समझना समझाना अथवा साक्षात ग्रहण करना शक्य न होने से, साधक को अपनी प्रारम्भिक भूमिकाओं में बुद्धिपूर्वक विषयों का त्याग करना पड़ता ही है, क्योंकि ऐसा करने से क्रमपूर्वक आगे जाकर कदाचित वह भीतरी विरक्ति भाव जागृत हो जाता है इसलिये यहां भी व्यवहार व्रत साधन है और निश्चय व्रत साध्य । यहां भी यथायोग्य सद्भूत व असद्भूत दोनों प्रकार का साधन साध्य भाव समझना ।

१६. तप में निश्चय व्यवहार साध्य साधन भाव दिखाओ ।

यद्यपि तप के विषयभूत आत्म प्रतपन में अनशन आदि के विकल्प रूप भेद नहीं हैं फिर भी उसका कथन करना तथा

समझना समझाना अथवा साक्षात प्राप्त करना अशक्य होने से साधक को अपनी प्रारम्भिक भूमिकाओं में जानबूझकर काय-क्लेश आदि उपसर्गों व परीषहों का आव्हानन करना पड़ता ही है; क्योंकि ऐसा करने से ही उसमें आत्मबल जागृत होता है, और क्रमपूर्वक आगे जाकर उसको वह आमप्रताप भी साक्षात हो जाता है। यहां भी व्यवहार तप साधन है और निश्चयतप साध्य है। वहां पूर्ववत यथायोग्य सद्भूत व असद्भूत दोनों प्रकार का साधन साध्य भाव समझना।

१२३. वस्तुस्वरूप में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

सामान्य विशेष के बिना नहीं रहता है और विशेष सामान्य के बिना नहीं रहता। इसलिये अभेद प्रतिपादक निश्चय स्वरूप तथा भेद प्रतिपादक व्यवहार स्वरूप में परस्पर अविनाभाव है।

१२४. रत्नत्रय में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

सम्यग्दर्शन आदिक तीनों में ओतप्रोत आत्मा उन भेदों के बिना नहीं रहता और वे भेद भी अपने आश्रयभूत आत्मा के बिना नहीं रहते। इसलिये अभेद प्रतिपादक निश्चय रत्नत्रय तथा भेद प्रतिपादक व्यवहार रत्नत्रय में परस्पर अविनाभाव है।

१२५. सम्यग्दर्शन में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

सात तत्वों में अनुस्यूत त्रिकाली अखण्ड आत्मा उन सातों के बिना नहीं रहता और वे सातों भी अपने आश्रयभूत उस आत्मा के बिना नहीं रहते। इसलिये अभेद प्रतिपादक निश्चय सम्यग्दर्शन व भेद प्रतिपादक व्यवहार सम्यग्दर्शन में परस्पर अविनाभाव है।

१२६. सम्यग्ज्ञान में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

पर पदार्थों से व्यावृत या पृथक ही आत्मा के स्वरूप का स्व-संवेदन-गम्य लाभ होता है और वह स्वसंवेदन-गम्य लाभ ही

पर पदार्थों से पृथकता है। एक के बिना दूसरा नहीं। जैसे अन्धकार का नाश ही प्रकाश है और प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है। इसलिये स्व के साथ अभेद करने वाले निश्चय सम्यग्ज्ञान और पर से पृथकता दर्शाने वाले व्यवहार सम्यग्ज्ञान में परस्पर अविनाभाव है।

१२७. सम्यक्चारित्र में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

यथार्थ व्रतादि की पूर्णता के बिना आत्म स्वरूप में स्थिरता अथवा साम्यता नहीं होती, और आत्मस्थिरता व साम्यता के बिना यथार्थ व्रतों की पूर्णता नहीं होती। इसलिये अभेद प्रतिपादक निश्चय चारित्र और भेद प्रतिपादक व्यवहार चारित्र दोनों में परस्पर अविनाभाव है।

१२८. व्रत में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

विषयों के त्याग के बिना यथार्थ विरक्ति नहीं होती और यथार्थ विरक्ति के बिना विषयों का यथार्थ त्याग नहीं होता। इसलिये निश्चय व्रत और व्यवहार व्रत में परस्पर अविनाभाव है।

१२९. तप में अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

उपसर्गों व बाधाओं के प्रति निर्भय हुए बिना आत्म वीर्य या आत्म प्रताप नहीं होता और आत्म प्रताप के बिना निर्भयता नहीं होती। इसलिये निश्चय तप व व्यवहार तप दोनों में परस्पर अविनाभाव है।

१३०. मिथ्यादृष्टियों में वस्तु ज्ञान व व्यवहार रत्नत्रयादि होते हैं तहां निश्चय के साथ अविनाभाव कैसे है?

निश्चय के अभाव के कारण ही उसका पदार्थज्ञान, तथा ज्ञान दर्शन चारित्र व्रत आदि सब मिथ्या कहे गये हैं।

निश्चय स्वरूपों के साथ रहने पर ही वे सम्यक् विशेषण को प्राप्त करते हैं।

१३१. किसी व्यक्ति को व्यवहार ज्ञान आदिक न हों और निश्चय ज्ञान आदिक हों वहां अविनाभाव कैसे घटे ?

ऐसा होना असम्भव है कि व्यवहार ज्ञान चारित्र व्रत आदि न हों और निश्चय रूप सब कुछ हो। अतः इस प्रश्न को अवकाश नहीं।

१३२. चौथे से सातवें गुणस्थान तक निश्चय व्रत चारित्रादि रूप समाधि नहीं होती पर व्यवहार व्रतादि व सम्यक् रत्नत्रय तो होता है ?

तहां रत्नत्रय आंशिक रूप से पाया जाता है, पूर्ण रूप से नहीं। कथन सर्वत्र पूर्ण भावों का किया जाता है, आँशिक भावों का नहीं। अतः अपनी बुद्धि से व्यवहार व निश्चय वाले अंशों का ग्रहण करके उनमें परस्पर अविनाभाव समझ लेना।

१३३. आंशिक भावों को समझाने समझने के लिये किस नय का प्रयोग किया जाता है ?

एक देश शुद्ध निश्चय नय का कथन आगममें आता है, वह निश्चय रूप अंश के प्रति ही प्रयुक्त हुआ है। और उपलक्षण से अपनी बुद्धि द्वारा एक देश अशुद्ध निश्चय नयका तथा योग्य व्यवहार नयों का प्रयोग करके ऐसे आंशिक या मिश्रित भावों का निर्णय करना चाहिये।

प्रश्नावली

१. नय किसे कहते हैं ?

२. नय ज्ञान का क्या प्रयोजन है ?

३, नय के कितने भेद प्रभेद हैं ?

४. जो जाना जाय सो ज्ञाननय है और जो लिखा सो शब्द नय ?

५. नैगमादि चार और शब्दादि तीन ये सातों ही शब्द द्वारा व्यक्त की जाती हैं; फिर शब्दादि तीन को ही पृथक से व्यञ्जन नय बताने की क्या आवश्यकता ?

६. **ज्ञान व अर्थ में क्या अन्तर है, तथा इनमें से कौन बड़ा है ?**

७. **नैगमादि सातों नयों की प्रवृत्ति का क्रम दर्शाओ, अर्थात् इनके विषयों में स्थूलता व सूक्ष्मता दर्शाओ।**

८. **क्या ऋजुसूत्रनय में शब्द प्रयोग नहीं होता ? फिर इसे अर्थनय क्यों कहा ?**

९. **शब्द प्रयोग की अपेक्षा ऋजुसूत्र व शब्दनय में क्या अन्तर है ?**

१०. **आगम व अध्यात्म पद्धति में क्या अन्तर है ?**

११. **शब्द, अर्थ व ज्ञान इन तीनों नयों में किस किस अपेक्षा एकता व अनेकता है ?**

१२ **'अमुक वाक्य इस नय का है' ऐसा कहने का क्या तात्पर्य ?**

१३. **द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक की भाँति तीसरी गुणार्थिक नय क्यों नहीं ?**

१४. **निम्न नयों के लक्षण करो—**

द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, ज्ञाननय, अर्थनय, व्यंजननय, नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय, एवंभूतनय, निश्चयनय, व्यवहारनय, शुद्ध निश्चयनय, अशुद्ध निश्चयनय, सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय, शुद्ध सद्भूत, अशुद्ध सद्भूत, उपचरित असद्भूत, अनुपचरित असद्भूत।

१५. **निम्न के भेद व लक्षण करो—**

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, निश्चय, व्यवहार।

१६. **निम्न के उदाहरण देकर उन्हें स्पष्ट करो—**

भूत नैगमनय, भावी नैगमनय, वर्तमान नैगमनय, शुद्ध संग्रह, अशुद्ध संग्रह, शुद्ध व्यवहार, अशुद्ध व्यवहार, शुद्ध निश्चयनय, अशुद्ध निश्चय, शुद्ध सद्भूत, अशुद्ध सद्भूत, उपचरित सद्भूत, अनुपचरित सद्भूत।

१७. **निम्न नयों में अन्तर दर्शाओ।**

महासत्ता-अवान्तरसत्ता; शुद्ध संग्रह-अशुद्ध संग्रह; शुद्ध-संग्रह;

शुद्ध व्यवहार-अशुद्ध व्यवहार; सूक्ष्म ऋजु सूत्र-स्थूल ऋजु सूत्र; ऋजुसूत्र-शब्दनय; शब्दनय-समभिरूढ़नय; समभिरूढ़-एवंभूत; भावी नैगम-वर्तमान नैगम; शुद्ध निश्चय-अशुद्ध निश्चय; निश्चयनय-सद्भूत व्यवहारनय; शुद्ध सद्भूत व्यवहार-अशुद्ध सद्भूत व्यवहार; उपचरित असद्भूत-अनुपचरित असद्भूत; शुद्ध द्रव्यार्थिक-अशुद्ध द्रव्यार्थिक; शुद्ध पर्यायार्थिक-अशुद्ध पर्यायार्थिक।

१८. निम्न वाक्य किस-किस नय के हैं ?

सीमन्धर भगवान सिद्ध हैं; श्रेणिक महाराज सिद्ध हैं; इस बाग में वृक्ष बेलें व फल तीनों चीजें हैं; अरे ! इसे तो मिनिस्टर बना ही समझो; इस सभा में अनेकों प्रकार के व्यक्ति बैठे हैं; कपड़ा एक द्रव्य है; इन्द्र व शक्र इन दो शब्दों का एक अर्थ नहीं हो सकता है; नारी व स्त्री एकार्थवाची हैं; कलत्र नारी व दारा ये सब एकार्थवाची हैं; सिंहासन पर बैठे राजा को वीर नहीं कहा जा सकता है; जीव ज्ञानवान है; जीव ज्ञानस्वरूप है; मनुष्य बहुत दु:खी है; संयमी जीवरागी है; विजयवर्धन में बहुत बल है; जीव को कर्म का फल भोगना पड़ता है; कुम्हार घड़ा बनाता है; सिद्ध भगवान केवल ज्ञानी है; भगवान में अनन्त चतुष्टय हैं; मैं व सिद्ध भगवान समान हैं; ज्ञान ही आत्मा है; एक आत्मरमणता ही रत्नत्रय हैं; इस व्यक्ति के चार पुत्र हैं; वृत्तिचन्द बहुत धनिक है; यह एक बड़ा व्यापारी है।

१९. निश्चय व व्यवहार नय का समन्वय करो।

२०. निश्चयनय को भूतार्थ कहने का क्या तात्पर्य ?

२१. क्या व्यवहारनय सर्वथा अभूतार्थ है, यदि नहीं तो उसे अभूतार्थ क्यों कहा गया ?

२२. वस्तु स्वरूप, रत्नत्रय, समयग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, व्रत व तप इन विषयों पर निश्चय व्यावहारनय लागू करो, दोनों में साध्य साधन भाव दर्शाओ, दोनों का परस्पर अविनाभाव दर्शाकर समन्वय करो।

—इति सम्पूर्णम—

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	प्रवेशिक	प्रवेशिका	११८	६	घर	घट
१	८	विक्षेप	निक्षेप	१२१	६	अचेत	अचेतन
८	१६	पदाथ	पदार्थ	१२७	१६	का	को
१५	२०	जैसे	से	१२८	५	मनोगति	मनोमति
१६	१६	अनेकारी	अनेककोटी	१२८	१८	सूक्ष्म	सूक्ष्म
२७	२६	तान	तीन	१३०	१६	वास्तव	वास्तव में
२८	४	होन	होने	१३४	२८	तदनन्त	तदनन्तर
२८	१५	सक्ष्म	सूक्ष्म	१३६	१३	करना	बोलना
२८	२२	गति	मति	१३७	२	रक्तकाण्ड	रत्नकरण्ड
२६	२३	शुरू	गुरू	१३७	१४	सफल	सकल
३२	१०	समह	समूह	१३७	४०	१०	११
३४	६	और	और न	१३८	२	उतने	उतने समय
३६	३	की	का	१३८	२	जभ्यास	अभ्यास
४४	५	वंसी	ध्वंसी	१३८	१६	साध	साधु
४६	२६	स्वकाल	स्वभाव	१३६	१६	निखशेष	निरवशेष
४६	२७	गैर	और	१३६	२६	मानवा	मानना
५६	२७	कार्य	काय	१४२	३	सम्यग्दर्श	सम्यग्दर्शन
६१	१	जलन	गलन	१४२	१२	भक्ति	मुक्ति
६१	२१	दृष्टि	दृष्ट	१४३	१४	काव्य	काय
७१	१२	अभाव	अभाव में	१५५	८	परिणम	परिणमन
७४	२	दूसरे	दूसरे में	१५५	२०	निमोदिया	निगोदिया
८१	१२	भाषा	भाग	१५६	६	वद्धि	वृद्धि
६३	२५	क्षीर्ण	जीर्ण	१५६	१६	सन्तादि	सान्तादि
६६	१०	में	का	१६१	१७	प्रदेशात्म	प्रदेशात्मक
६६	११	विलय	विषय	१६१	२६	द्रव्यात्म	द्रव्यात्मक
६६	११	शक्तिमें	शक्तियें	१६२	६	क्योंकि	क्योंकि बिना
६६	२१	देते	देते तो	१७१	१८	भेट	भेद
१०१	१४	प्रदेशातम	प्रदेशात्मक	१७२	१४	मृत्रिका	मृत्तिका
११०	१२	अन्तर्चेन	अन्तर्चेतन	१७२	२६	कुशल	कुशूल
११३	२०	प्रति	मति	१७५	३	चुतु:	चतु:
११५	३	किसको	किसीको	१७५	२८	चौको	चौकी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८६	५	पक	एक	२६९	२२	तो ही	तो
१९७	१८	नादर	बादर	२७२	१३	दर्भन	दर्शन
२०८	१	अधिक	अधिकार	२७५	५	शस्त्र	शास्त्र
२१५	२१	स्पर्ध	स्पर्धक	२७५	१४	सप्रतत्व	स्व-परतत्व
२१५	२५	निर्माप	निर्माण	२७६	१२	ज्ञाय	ज्ञायक
२१८	२६	बेढक	वेदक	२७८	११	उपवृहेंण	उपवृहंण
२२५	१८	सा फला	साझला	२७८	१८	अमढ	अमूढ
२२८	१५	अण्डर	अण्डर में	२७९	४	उपवृहेण	उपवृहंण
२३४	२४	अचतरिन्द्रिय	और चतुरिन्द्रिय	२८५	६	यलाचार	यत्नाचार
२३५	१५	गर्भजे	गर्भजों	२९०	१	सफल	सकल
२३५	२५	विघुत्कुमार	विद्युत्कुमार	२९२	१६	मोरसत्व	गोरसत्व
२३६	४	कल्पोपत्र	कल्पोपन्न	२९३	५	अपृथ	अपृथक
२३६	६	,,	,,	२९८	२१	का कल	काल
२३६	९	,,	,,	२९९	२	घट	पट
२३८	२८	हैरि	हरि	३००	९	मौखिक	मौलिक
२४०	५	स्वयम्मू	स्वयम्भू	३०२	१८	हृष्ट	दृष्ट
२४१	२०	वित्रमोक्ष	विप्रमोक्ष	३०८	२७	वय	वया
२४४	१९	क्षयोपशम	क्षयोपशमसे	३१०	२	असत्	सत्
२४४	२०	कर्म	क्रम	३१२	१४	प्रनोग	प्रयोग
२४६	५	विवक्षायें	विवक्षासे	३१३	१	कैसा	कैसे
२४९	१६	यग्रोध	न्यग्रोध	३३२	१९	पयांयांश	पर्यायांश
२५१	२९	चित्रलावरणी	चित्रलाचरणी	३३२	२२	केवण	केवल
२५३	१२	श्रणी	श्रेणी	३३४	१	वैगम	नैगम
२६६	२०	झगड़ा	झड़ना				